नहीं है। आत्मा अव्यक्त है, मन उसही अव्यक्त आत्माका स्वरूप है,* अर्थात् दूसरे चन्द्रमाकी भांति आत्मामेंही कल्पित है, इससे मनका लक्षण भी विस्पष्ट नहीं है; इसलिये यह जानना चाहिये, कि मन कल्पित उत्पत्ति निधन और अव्यक्त है। जैसे अश्वत्थ बीजके अन्तर्गत अत्यन्त छोटे अंशके बीच बृहत् वृक्ष अन्तर्भूत रहता है। फिर कुछ समयके लिये वह व्यक्त रूपसे दीखता है, अव्यक्तसे दृश्य-वस्तु मात्रका सम्भव भी वैसाही है। जैसे अचेतन लोहा अयस्कान्त अर्थात् चुम्बक पत्थरकी ओर दौड़ता है, वैसेही पूर्व्व संस्कारके कारण कर्म्म-जनित धर्म्माधर्म्म तथा अज्ञान आदि भी अभि-व्यक्त शरीरके अनुगत हुआ करते हैं। प्रागुक्त न्यायके अनुसार अविद्याजनित काम कर्म्मवा-सना देह और इन्द्रिय आदि अचेतन पदार्थ सब तरहसे संहत होकर कारण स्वरूप चेतयिता परब्रह्मका कारणत्व लक्ष्य किया करते हैं, और कारण रूप परब्रह्मके निकटसे सत्व, चित्त और आनन्दत्व आदि आत्मधर्म्म सब तरहसे शरीरमें सङ्गत होते अर्थात् देहान्तर प्राप्त होनेपर आत्मानात्म गुणसमूह पहलेकी भांति संहत हुआ करते हैं, भूमि, आकाश, स्वर्ग, भूतगण, सब प्राण, श्रम और काम आदि अथवा इन सबके अतिरिक्त दूसरे कोई पदार्थ जगत्की उत्पत्तिके पहिले कुछ भी न थे, अन्तमें भी अज्ञान उपाधि सहित जीवमें सङ्गत होनेमें समर्थ न होंगे अर्थात् भूमि आदि सब पदार्थ नित्यसिद्ध जीवके सहित कभी सङ्गत नहीं हो सकते। अनादि नित्य सर्व्वगत मनके कारण अनिर्व्वचनीय आत्माकी जो मनुष्य पशु आदि शरीरोंमें तदात्म प्रतीति हुआ करती है, वह माया कार्य्य कहके वेदमें वर्णित है। जीव पूर्व्व वासनाके वशमें होकर कर्म्ममें प्रवृत्त होता है, वासनासे कर्म्म और कर्म्मसे वासना, यह जो सदा प्रवर्त्तमान अनादिनिधन महत् चक्र संप्र-हके जरिये वर्त्तमान है, जीव स्वरूप आत्मा वासना समूहमें संयुक्त होकर उन कार्य्योंको संग्रह कर रहा है। अव्यक्त बुद्धिवासनासमूह जिसकी नाभी अर्थात् नाभीकी भांति अन्तरङ्ग, व्यक्त देहेन्द्रिय आदि जिसके अर अर्थात् नाभी और नेमिके सन्धानकारक काष्ठोंकी तरह बहि-रङ्ग, ज्ञात क्रिया विकार आदि जिसकी नेमि अर्थात् नेमिकी भांति व्यापक, रञ्जनात्मक रजोगुण जिसका अक्ष अर्थात् पहियेकी तरह चलनेवाला है, वही जन्म मरण प्रवाहरूप संघातचक्र चेतनके जरिये अधिष्ठित होकर अविचलित रूपसे वर्त्तमान है। जैसे तिलको पेरनेवाले तेली लोग प्रीतिपूर्व्वक तिलोंको चक्रके बीच आक्रमें दुःख सब भाग रजोगुणके आक्रमण निबन्धनसे दृढ़ संघात चक्रमण करके पेरते हैं, वैसेही अज्ञानसे समस्त जगज्जनोंको निष्पीड़न कर रहा है। वह संघातस्वरूप चक्र फल तृष्णाके कारण अभिमानसे परिगृहीत होकर कर्म्म करता है, कार्य्य और कारण, इन दोनोंके संयोग उपस्थित होनेसे वह कार्य्य ही कारण रूपसे समर्थित होता है। रस्सीमें सर्पभ्रमकी भांति कार्य्यकारणकी विषमसत्तासे कारणमें कार्य्य और कार्य्यमें कारण प्रवेश सङ्घ-टित नहीं होता। कार्य्योंके अभिव्यक्त निमित्त अदृष्टादि सहाययुक्त काल ही हेतु रूपसे समर्थ हुआ करता है। कर्म्मयुक्त पहले कही हुई अष्ट प्रकृति और षोड़श विकार पुरुषके अधि-ष्ठानसे सदा संहत हुए रहते हैं। जैसे वायुके जरिये धूलि उड़ती है, वैसे ही पूर्व्व देहसे विभ्रष्ट जीव, राजस वा तामस संस्कारयुक्त और कर्म्म तथा पूर्व्व प्रज्ञासे संयुक्त होकर चेतनको लक्ष्य करते हुए लोकान्तरमें गमन किया करता है। जैसे निरजस्क वायु सरजस्क नहीं होता, रज, सत, तमोगुणसे देहेन्द्रिय भूत सूक्ष्म भावनिवह पूर्व्वोक्त कर्म्म और पूर्व्व प्रज्ञा आदि आत्माको स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होते। महान् आत्म-

कर्ड कभी उक्त सब भाव स्पष्ट नहीं होते अर्थात् जैसे रजोहीन वायुमें सरजस्कत्वकी भ्रान्ति हुआ करती है, आत्मामें देह आदि सङ्ग भी उसही प्रकार भ्रान्तिके कार्य्य हैं। विद्वान् पुरुष वायु और धूलिके पृथक् भावकी तरह जीव का पृथक् भाव जानकर भी देहादिके आत्माके सहित आत्माके तदात्म ज्ञानके अभ्यासके कारण शुद्ध स्वरूप आत्मको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। आत्मा विभु होकर भी स्वभावमें बद्ध इत्यादि रूपसे उत्पन्न हुए सब सन्देह "पुरुष असङ्ग" इत्यादि मन्त्र वर्णसे विच्छिन्न आत्मा देह तिरिक्त है। इसे जानके भी साम्राज्य कामी राजा जैसे राजसूय यज्ञके जरिये शरीरमें कृत्रिम मूर्द्धाभिषिक्त लक्षणकी अपेक्षा करते हैं, वैसेही मुमुक्षु मनुष्य विद्या साधनके समय कर्त्तृत्वादि विशेषणकी अपेक्षा करते हैं, किन्तु समय पर उसे परित्याग किया करते हैं। जैसे अग्निमें जले हुए बीज फिर नहीं जमते, वैसेही अविद्या आदि क्लेशोंके ज्ञान रूपी अग्निसे जलनेपर आत्मा फिर शरीर ग्रहण नहीं करती।

२११ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, जिस प्रकार कर्म्मनिष्ठ मनुष्योंको प्रवृत्ति लक्षण धर्म्म अभिलषित है, वैसेही विज्ञाननिष्ठ पुरुषोंको विज्ञानके अतिरिक्त दूसरे विषयोंमें रुचि नहीं होती। वेदोक्त अग्निहोत्र आदि कार्य्य और शम, दम आदि विषयोंमें निष्ठावान् वेद विद्याशाली पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं, अत्यन्त बुद्धिमान् पुरुष महत् प्रयोजनके कारण स्वर्ग और मोक्ष, इन दोनोंके बीच श्रेष्ठ मोक्षकीही कामना किया करते हैं। कर्म्मत्यागरूप व्यवहार साधुओंके आचरित रहके गर्हित नहीं है, निवृत्ति लक्षणवाली बुद्धिको अवलम्बन करनेसे मनुष्य मोक्ष पाते हैं। शरीराभिमानी मनुष्य मोहके कारण रजोगुण और तमोगुण जनित क्रोध लोभ आदिके सहित संयुक्त होकर सब विषयोंको ग्रहण किया करता है; इसलिये जो लोग शरीरके सङ्ग सम्बन्धकी अभिलाष करें उन्हें अशुद्ध आचरण करना उचित नहीं है। कर्म्मके जरिये आत्मज्ञानका द्वार बनाते हुए मनुष्य कर्म्म जनित स्वर्ग आदि शुभ लोकोंके सुख सम्भोगको स्वीकार न करे। जैसे लोहमिश्रित पाकहीन सुवर्ण शोभित नहीं होता, वैसेही जिस पुरुषने राग आदि दोषोंको जय नहीं किया, उसमें विज्ञान प्रकाशित नहीं होता। जिस पुरुषने धर्म्मपथको अवलम्बन करके काम क्रोधका अनुसरण करते हुए लोभके वशमें होकर अधर्म्म आचरण करता है, वह मूलके सहित विनष्ट होता है, इसलिये धर्म्मपथको कारण अवलम्बन करनेवाले मनुष्य रागाधिक्यके शब्द स्पर्श आदि विषयोंमें आसक्त न होवें। क्रोध, हर्ष और विषाद, रज, सत और तमोगुणसे उत्पन्न हुआ करते हैं; सत, रज और तमोगुणके कार्य्यभूत पञ्चभूतात्मक शरीरमें जीव किसकी क्या कहके स्तुति करेगा। मूढ़ लोगही स्पर्श, रूप, रस आदि विषयोंमें आसक्त हुआ करते हैं, वे उलटी बुद्धिके कारण देहको पृथ्वीका विकार नहीं समझते। जैसे मट्टीमय गृह मृत्तिकासे लिप्त होता है, वैसेही यह पार्थिव शरीर मट्टीके विकार अन्नादिका उपयोग करके जीवित रहता है। मधु, तेल, दूध, घृत अनेक प्रकारके मांस, नमक, गुड़ अनेक तरहके धान्य और फल मूल सजल मृत्तिकाके विकार मात्र हैं। जैसे कान्तारवासी सन्यासी मिष्टान्नादिके भोजनमें अनुराग न करके देहयात्रा निर्व्वाहके निमित्त अस्वादिष्ट ग्राम्य आहार किया करता है, वैसेही संसार कान्तारवासी मनुष्य परिश्रममें तत्पर होकर वेद आदि अवण निर्व्वाहके निमित्त रोगीके औषध सेवन

अग्निकी तरह आहार करे, इन्द्रियोंकी प्रीतिकारी वस्तुको भोजन करनेमें अनुरक्त न होवे। यथार्थ वचन, अन्तर्बाह्य शौच, सरलता, वैराग्य, अध्ययनजनित तेज, मनको जय करनेमें पराक्रम, सन्तोष, क्षमा, वेद सुननेसे बुद्धि और मनके जरिये क्रियमाण साधु और असाधु आलोचना रूपी तपस्याके सहारे सब विषयमय भावोंको अवलोकन करके उदार चित्त होकर शान्तिकी इच्छा करते हुए इन्द्रियोंको संयत करे। सब जन्तु सत, रज और तमोगुणसे मोहित होके अज्ञानके वशमें होकर चक्रकी तरह भ्रमण किया करते हैं; इसलिये अज्ञान सम्भव दोषोंकी पूर्ण रीतिसे परीक्षा करके अज्ञान प्रभव दुःख अहंकारको परित्याग करे। सब महाभूत, इन्द्रियां, सत, रज, तम, गुण, जीवके सहित तीनो लोक और कर्म्म अहंकारमें प्रतिष्ठित हैं, अर्थात् ये सब अहंकार-कल्पित हैं। जैसे इस लोकमें नियमित काल ऋतुगुणको प्रदर्शित करता है, वैसेही अहंकारको भी भूतगुणमें कर्म्म प्रवर्त्तक जानो। अहंकारकी तरह अप्रकाश अज्ञान सम्भव तमोगुण सम्मोहजनक, सत्वगुण प्रीति जनक और रजोगुण दुःखजनक है, इसी प्रकार तीनों गुणोंको जानना योग्य है। सत, रज और तमोगुणके कार्य्यभूत विशेष गुणोंको सुनो। प्रमाद, हर्षजनित प्रीति, निःसन्देह, धृति और स्मृत, इन सबको सतोगुण जाने; और काम, क्रोध, प्रमाद, लोभ, मोह भय, क्लम, विषाद, शोक अनुराग, अभिमान, दर्प, अनार्य्यता, इन्हें राजस और तामस गुण जानना चाहिये। इसही प्रकार दोषोंके गौरव और लाघवकी परीक्षा करके अपनेमें इनके बीच कौन कौनसे दोष हैं, कौन कौन दोष नष्ट हुए हैं और कौनकौनसे दोष बाकी हैं, उन्हें एक एक करके सदा आलोचना करे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! प्राचीन मुमुक्षु मनुष्योंने किन किन दोषोंको मनसे परित्याग किया था, किन किन दोषोंको बुद्धिबलसे शिथिल किया था; कौन कौनसे दोष अपरिहार्य्य हैं, कौन कौनसे दोष उपस्थित होकर भी निष्फल होते हैं, और विद्वान् पुरुष किन किन दोषोंके बलाबलको बुद्धि और युक्तिके सहारे आलोचना करें? इस विषयमें मुझे सन्देह उत्पन्न हुआ है, इसलिये आप मेरे समीप उस विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, शुद्ध चित्तवाले मनुष्य मूलच्छेदनके सहित दोषोंका नाश करें। जैसे वाणधारा लोहनिगड़को काटके स्वयं विनष्ट होती है, वैसेही ध्यान संस्कृता बुद्धि सहज तामस दोषोंसे उत्पन्न हुई वस्तु मात्रकाही विनाश करते हुए स्वयं नष्ट हुआ करती है। राजस, तामस और कामरहित शुद्धात्मक, सत्व, ये सब गुण शरीरधारियोंके देह-प्राप्ति विषयमें बीज स्वरूप हैं; परन्तु जितचित्त लोगोंको ब्रह्मप्राप्तिका उपाय सत्वमात्र है; इसलिये चित्त विजयी मनुष्योंको रजोगुण और तमोगुण त्यागना उचित है। रजोगुण और तमोगुणसे निर्मुक्त बुद्धिही निर्म्मलताको प्राप्त होती है अथवा बुद्धि वशीकरण निमित्त विहित मन्त्रयुक्त यज्ञादि कर्म्मोंको कोई कोई दुष्कृति कहा करते हैं, अर्थात् यज्ञादि कर्म्मोंमें जीवहिंसा रहनेसे वह दुरदृष्ट विधायक कहके किसी किसी मतावलम्बी मनुष्योंने उसे निन्दित कार्य्य रूपसे गिना है, यथार्थमें वे मन्त्रयुक्त कार्य्यही वैराग्यके निमित्त हुआ करते हैं और शुद्ध धर्म्म स्वरूप शम दम आदिकी रक्षाके विषयमें यज्ञादिही धर्म्म रूपसे विहित हैं; यज्ञादिके अतिरिक्त पशुहिंसाही अनर्थका कारण हुआ करती है, विधि विहित हिंसामें वैसी अनर्थ हेतुता न रहनेपर भी यदि हिंसासे कुछ बुराई उत्पन्न हो, तो वह सामान्य प्रायश्चित्तसे दूर की जाती है। जिसका यज्ञ आदिकोंसे बहुतसा पुण्य सञ्चय हुआ है, उसका थोड़ा पाप

प्राय:सतसे दूर हो सकता है। सुखसमुद्रमें मग्न मनुष्य अल्पदुःख सहनेमें अवश्यही समर्थ हुआ करते हैं। हिंसाविहारमें सदा अनुरक्त तन्द्रा और निद्रायुक्त मनुष्य रजोगुणके जरिये अर्थ-युक्त कार्य्योंको प्राप्त करते और समस्त कामोंको सेवा करते तथा तमोगुणके सहारे लोभयुक्त क्रोधज कार्य्योंको सेवन किया करते हैं। सतो-गुण अवलम्बी श्रद्धा और विद्यायुक्त पवित्रचि-त्तवाले श्रीमान् मनुष्य बुद्धिसे सात्विक भावकी आलोचना किया करते हैं, इसलिये वैदिक कर्म्मोंमें काम, क्रोध आदिके हेतुभूत राजस और तामस भाव त्याग हैं, और सात्विक भाव अवश्य सेवन करने योग्य हैं।

२१२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! रज और मा-गुणसे आत्मासे भिन्न आत्मज्ञान स्वरूप मोह उत्पन्न होता है, मोहसे क्रोध, लोभ, भय और दर्प प्रकट होते हैं, इन सबको नष्ट करतेही मनुष्योंका अन्तःकरण शुद्ध होता है। प्राचीन लोग अविनाशी हासहीन सर्व्वाश्रय देवसत्तम पञ्चकोशातीत अव्यक्त विभु परमात्माको विष्णु कहके जानते थे, अब भी शुद्धचित्तवाले पुरुष उसे वैसाही जानते हैं। उसही विष्णुको मायासे जिनकी इन्द्रिया विकृत हुई हैं, वे सब मनुष्य ज्ञान भ्रष्ट हैं; इसलिये कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेकसे रहित होकर बुद्धिको विपरीततासे विक्षिप्त चित्त होते हैं, विक्षिप्तचित्तता क्रोधका धर्म्म है; क्रोधसे काम उत्पन्न होता है, कामसे धीरे धीरे लोभ, मोह अभिमान, उच्छृङ्खलता और अहंकार प्राप्त होता है अहंकारसे जन-नादि सब कार्य्य स्वीकार किये जाते हैं, जन-नादि क्रियासे स्नेह सम्बन्ध उत्पन्न होता है, स्नेह होनेसे ही अन्तमें शोक उत्पन्न हुआ करता है और जन्म मरण लक्षण सुख दुःख कार्य्यका आरम्भ होता है। जन्मके कारण शुक्र शोणितसे उत्पन्न पुरीष, मूत्र, क्लेदयुक्त शोणित समूहमें आविल गर्भवास हुआ करता है। उस समय जीव तृष्णामें फंसके और क्रोध आदिसे बद्ध होकर उससे पार होनेके लिये योषितगणको संसार पटका कारण समझता है।

स्त्रियां स्वाभाविक ही सन्तानोत्पत्तिके क्षेत्रभूत हैं पुरुष क्षेत्रज्ञ हैं, इससे मनुष्य यत्न-पूर्व्वक स्त्रियोंका संसर्ग परित्याग करे। शत्रुको मारनेके लिये मन्त्रमयी शक्तिको तरह घोर-रूपिणी ये स्त्रियें ही मूर्ख लोगोंको मोहित करती हैं, इन्द्रियोंके जरिये कल्पित यह सना-तनी मूर्त्ति मृत्तिकाके बीच घड़ेकी भांति सूक्ष्म-रूपसे रजोगुणमें अन्तर्हित होरही है, इस लिये तृष्णात्मक रागरूप बीजसे सब जन्तु उत्पन्न होते हैं। जैसे पुरुष स्वदेज, मनुष्य सम्बन्धरहित अनात्मपृथकजातीय कीटोंको परि-त्याग किया करते हैं, वैसे ही मनुष्य नामधारी अनात्म, सुतसंज्ञक कीड़ोंका परित्याग करे। रत और स्वेदरूप स्नेह हेतुसे स्वभाव वा कर्म्म योग निबन्धनसे जन्तुगण देहसे उत्पन्न होते हैं, बुद्धिमान पुरुष उनको उपेक्षा करे। प्रवृत्ति और प्रकाशात्मक रजोगुण सतोगुण अज्ञाना-त्मक तमोगुणमें लीन हुआ करते हैं, उसही अज्ञानका निवासस्थल ज्ञानमें अज्ञान अध्यस्त होकर बुद्धि और अहङ्कारका व्यापक होता है। बुद्धिमान लोग ज्ञानमें अध्यस्त उस अज्ञानको ही देहधारियोंका बीज कहा करते हैं और उस बीजका ही नाम देही है वह देही कालके अनुसार कर्म्मसे इस सन्सारमें सब प्रकारसे वर्त्त-मान है।

जैसे जीव सपनमें देहधारीकी भांति मनही मन क्रीड़ा करता है, वैसेही कर्म्म गर्भगुणके जरिये जननीके जठरमें क्रीड़ा करता है। मांस-पिण्डमय शरीरमें जीव प्रकट होके पूर्व्ववासनासे जिन जिन विषयोंको स्मरण करता है, रागयुक्त

जिससे अहङ्कारके जरिये उनको उन्हीं विषयोंको ग्रहण करनेवाली इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। भावरूपसे उत्पन्न हुए जीवके शब्दवासनाके कारण श्रवणेन्द्रियरूप वासनासे दर्शन इन्द्रिय, गन्धग्रहणकी इच्छासे घ्राणेन्द्रिय और स्पर्श वासनासे त्वगिन्द्रिय उत्पन्न होती है, और जीवकी देहयात्रा निर्व्वाहके निमित्त प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, ये पञ्चवायु शरीरको आश्रय करती हैं। मनुष्य शरीर और मानस दुःखके आदि, मध्य और अन्तके सहित पूरी तरहसे निष्पन्न श्रोत्रादि युक्त शरीरसे पूरित होकर जन्म ग्रहण किया करता है। गर्भमें देह और इन्द्रिय आदिका अङ्गीकार तथा उत्पन्न होनेके अनन्तर अभिमानसे देहकी तरह दुःखकी वृद्धि होती है, और मरनेके अनन्तर भी दुःखवर्द्धित हुआ करता है। इन सब कारणोंसे दुःखका निरोध करना उचित है जो दुःखको रोकना जानते हैं, वे मुक्त होते हैं।

रजोगुणसे ही इन्द्रियोंकी उत्पत्ति और प्रलय हुआ करती है अर्थात् रजोरूप प्रवृत्ति निरोधके जरिये इन्द्रिय-निरोधके कारण दुःखकी शान्ति होती है। विद्वान् पुरुष शास्त्र दृष्टिसे विधिपूर्व्वक इसकी परीक्षा करके सन्सारमें विचरें। ज्ञान इन्द्रिय सब इन्द्रियोंके विषयोंको प्राप्त होनेपर भी तृष्णारहित पुरुषके निकट नहीं जा सकती। इन्द्रियोंके क्षीण होनेपर जीव फिर देह सन्सर्ग ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होता।

२१३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे राजन्! मैं शास्त्र दर्शनके सहारे यथा क्रमसे इन्द्रिय जय विषयका उपाय कहूंगा, उसे जानके मनुष्य दम आदिका अनुष्ठान करनेसे परम गति पावेंगे। सब जीवोंके बीच मनुष्यको श्रेष्ठ कहा जाता है, मनुष्योंके बीच ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, द्विजोंके बीच मन्त्र जाननेवाले ब्राह्मणको श्रेष्ठ कहते हैं, वेदशास्त्र जाननेवाले ब्राह्मणोंने सर्व्व भूतोंके आत्मभूत सर्व्वज्ञ सर्व्वदर्शी और यथार्थ वस्तुके निश्चयको जाना है, इसीसे वे सबसे श्रेष्ठ हैं। जैसे नेत्रहीन मनुष्य अकेले अत्यन्त क्लेश पाता है, वैसेही ज्ञानहीन मनुष्य भी इस सन्सारमें अनेक दुःख पाते हैं। इसलिये ब्रह्मवित् पुरुष ही सबसे श्रेष्ठ हैं। धर्म्मकी इच्छा करनेवाले मनुष्य शास्त्रके अनुसार इष्टपूर्त्त आदि धर्म्मोंकी उपासना किया करते हैं, परन्तु ये लोग इन सब धर्म्मोंके फलस्वरूप मोक्षाख्या निरतिशय धर्म्मके अतिरिक्त पीछे कहे हुए गुणोंकी उपासना नहीं करते, धर्म्मज्ञ लोग प्रवृत्ति निवृत्ति स्वरूप सब धर्म्मोंमेंही वाह्य शरीर और मनकी पवित्रता, क्षमा, सत्य, धृति और स्मृति, इन सबको शुभ गुण कहा करते हैं। ब्रह्मचर्य्य जोकि ब्रह्मका रूप कहके स्मृत हुआ है, वही सब धर्म्मोंसे श्रेष्ठ है; क्योंकि मनुष्य उससे परम गति पाता है। जो पञ्चप्राण मन, बुद्धि और दशों इन्द्रिय इस सत्तरह अवयवात्मक लिङ्ग शरीरके संयोगसे रहित है, जो शब्द और स्पर्शहीन है, जिसे कानसे सुना नहीं जाता, और नेत्रसे देखा नहीं जाता, वही शुद्ध अनुभव स्वरूप परब्रह्म है; निर्व्विकल्प अवस्थाके सहारे उस परब्रह्मको जान सकते हैं। और वाक्शक्ति जिसे कहनेमें समर्थ नहीं है, जो विषयेन्द्रियोंसे रहित होकर केवल मनमें निवास करता है, वह पाप स्पर्शसे रहित सविकल्पक अवस्थाके सहारे जानने योग्य ब्रह्मको श्रवण मनन युक्त बुद्धिसे निश्चय करे। जो पूर्ण रीतिसे ब्रह्मचर्य्य कर सकते हैं, वे मोक्ष लाभ करते हैं, मध्यम भावसे ब्रह्मचर्य्य करनेवाले मनुष्य सत्य लोकमें गमन करते हैं और जो लोग कनीयसी वृत्ति अवलम्बन करते हैं, वे ब्राह्मण विद्वान् होते हैं। ब्रह्मचर्य्य अत्यन्त दुष्कर व्रत है, इसलिये उस विषयमें जो उपाय

है वह मेरे समीप सुनो। ब्रह्मचारी ब्राह्मण उत्पन्न और सम्वर्द्धित काम, क्रोध आदिको निग्रह करे; योषित सम्बन्धीय कथाको न सुने, वस्त्रहीन स्त्रियोंकी ओर न देखे, स्त्रियोंके तनिक भी दृष्टि पथकी अतिथि होनेपर अजितेन्द्रिय मनुष्योंके अन्तःकरणमें राग उत्पन्न हुआ करता है। स्त्रियोंके विषयमें अनुराग उत्पन्न होनेपर कृच्छ्रव्रतका आचरण करे अर्थात् तीन दिन सबेरे, तीन दिन सामको और तीन दिन अयाचित भोजन करे; फिर तीन दिन तक, अनाहारी रहे, तीन दिन जलके बीच प्रवेश करे। सपनेमें यदि वीर्य्य स्खलित हो, तो जलमें डूबके मनही मन तीन बार अघमर्षण मन्त्रका जप करे। बुद्धिमान् ब्रह्मचारी इसी प्रकार ज्ञानयुक्त श्रेष्ठ मनके जरिये अन्तर्भूत रजोमय पापोंको एकबारही जला दे। जैसे शरीरके भीतर मलवाहिनी नाडी दृढरूपसे बन्धी है, वैसेही शरीरके बीच आत्माको देहबन्धनसे दृढबद्ध जाने। सब रस नाड़ियोंके जरिये मनुष्योंके वात पित्त, कफ, रक्त, त्वचा, मांस, नसें, हड्डी और मज्जायुक्त देहको तृप्ति करते हैं इस शरीरमें पञ्चइन्द्रियोंके निज निज विषयोंको ग्रहण करनेवाली दश नाड़ी हैं, उनसे दूसरी सहस्रों नाडियोंका सम्बन्ध है। जैसे वर्षाकालमे नदियां समुद्रको पूर्ण करती हैं, वैसे ही ये सब रसरूपी जलसे युक्त नाड़ीरूपी नदियां देह समुद्रको तृप्त किया करती हैं। हृदयके बीच एक मनोवहा नाड़ी है, वह नाड़ी मनुष्योंके सर्व्वशरीरसे संकल्पजनित शुक्रको चलाकर उपस्थकी ओर लाती है। सब शरीरको सन्तापित करनेवाली नाड़ियां उस मनोवहा नाड़ीके अनुगत होकर तैजस गुणको ढोती हुई दोनों नेत्रोंके निकटवर्त्ती होती है। जैसे दूधके बीच स्थित मक्खन मथानीसे मथा जाता है, वैसेही देहके सङ्कल्प और इन्द्रिय जनित स्त्रियोंके दर्शन तथा स्पर्शनसे शुक्र मथित हुआ करता है। सपनेमें योषित-संग न रहनेपर भी जब मन स्त्री विषयक संकल्पसे अनुराग लाभ करता है, तब मनोवहा नाड़ीके जरिये देहसे संकल्पके कारण शुक्र झरने लगता है। महर्षि अत्रि भगवान् उस शुक्रके उत्पत्ति विषयको विशेषरूपसे जानते हैं; अन्न रस, मनोवहा नाड़ी और संकल्प, ये तीनों शुक्रके बीज हैं, और इन्द्र इनका अधिष्ठाता है, इसही निमित्त इन्हें इन्द्रिय कहते हैं। जो लोग जीवोंके शुक्रके उद्रेकके कारण अनुलोम और प्रतिलोम गमनसे सङ्करकारिणी गतिका विषय विचार करते हैं, वे विचारपूर्व्वक विराग और वासना हीन होकर पुनर्ज्जन्म नहीं पाते। जो लोग शरीरके निर्व्वाहके लिये कर्म्म किया करते हैं, वे मनके सहारेही सुषुम्ना नाड़ी मार्गसे योगबलसे तीनों गुणोंकी समता लाभ करके अन्तकालमें जीवन परित्याग करके मुक्त होते हैं। विश्वासमय मनका ज्ञान होगा क्यों कि मनही सब विषयाकारसे जन्म ग्रहण करता है। महात्माओंके प्रणव मन्त्रके उपासना-सिद्ध मन नित्य रजोगुण रहित और ज्योतिष्मान् है; इसलिये उस मनके विनाशके लिये पाप रहित निवृत्त लक्षण कर्म्मका अनुष्ठान करना उचित है। इस लोकमें रजोगुण और तमोगुणको परित्याग करनेसे मनुष्य इच्छानुसार गति लाभ किया करते हैं, तरुण अवस्थामें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह जरा अवस्थामें निर्बल होजाता है, जो कच्चबुद्धिवाले मनुष्य कालक्रमसे संकल्पको संहार करते हैं, वे दुर्गम मार्गकी भांति देहेन्द्रिय बन्धनको अतिक्रम करके दोष दर्शनके अनुसार उसे परित्याग कर अमृत भोग किया करते हैं।

२१४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, दुःख दायक इन्द्रिय विषयोंमें अनुरक्त मनुष्य अवसन्न हुआ करते हैं, और जो

सब महात्मा उस विषयमें अनासक्त रहते हैं, वे परम गति पाते हैं; बुद्धिमान् मनुष्य सब जीवोंको जन्म, मृत्यु, जरा, दुःख और आधि-व्याधिसे युक्त देखकर मोक्ष साधनमें यत्नवान होवें। ज्ञानवान् मनुष्य मन, वचन और शरीरसे पवित्र रहके अहंकार रहित, प्रशान्त और निरपेक्ष होकर भिक्षा करते हुए अनायाससे विचरे। जीवोंके ऊपर दयाके कारण यदि मनके बन्धनको देखें, तो जगत्को कर्म्मफल भोगका निमित्त जानके उस विषयमें भी उपेक्षा करें।

जो कुछ पुण्य वा पापकर्म्म किया जाता है, उसकाही फल भोग करना पड़ता है; इसलिये मन, वचन और कर्म्मसे शुभ कर्म्मोंको सिद्ध करे। अहिंसा, सत्य वचन, सर्व्व भूतोंके विषयमें सरल व्यवहार क्षमा और सावधानता, ये सब जिनमें विद्यमान हैं, वेही सुखी होते हैं, इससे शास्त्रालोचनासे पवित्र बुद्धिके जरिये मन स्थिर करके सर्व्वभूतोंमें धारणा करे। जो सब प्राणियोंके सुखदायक इस अहिंसा आदि परम धर्म्मको दुःख रहित जानते हैं, वे सर्व्वज्ञ पुरुषही सुखी होते हैं; इसलिये शास्त्रसे शुद्ध हुई बुद्धिके जरिये मनको स्थिर करके सर्व्वभूतोंमें धारणा करे; दूसरेके अनिष्टका विचार न करे, अपने अयोग्य राज्य आदिकी अभिलाषा न करे, नष्ट वा भावी स्त्री पुत्रादिके लिये चिन्ता न करे; अव्यर्थ प्रयत्नके सहित मनको ध्यान साधन और श्रवण मनन आदि विषयोंमें लगावे। वेदान्त वाक्य सुनने और अमोघ परिश्रमके सहारे वही मन उस समय आत्मस्वरूपके निकटवर्त्ती होगा। सत्य वचन कहनेकी अभिलाषा करनेवाले सूक्ष्मदर्शी पुरुष हिंसा रहित अपवादहीन सत्य वचन कहें। अविक्षिप्त चित्तवाले पुरुषोंको शठता और निठुरता त्यागके नृशंस वा पिशुनतारहित अल्प वचन कहना भी उचित है। सब ऐहिक विषय अपनसेही बद्ध हैं, वैराग्यके कारण यदि कुछ कहना पड़े, तो प्रसन्न मन और बुद्धिके जरिये अपने हिंसादिक तामस कर्म्मोंको प्रकाश करे, क्यों कि पुण्य वा पाप निज मुखसे प्रकाशित करनेसे नष्ट हुआ करते हैं। मनुष्य प्रवृत्ति परतन्त्र इन्द्रियोंके जरिये कर्म्ममें प्रवृत्त होनेपर इस लोकमें महा दुःख पाकर अन्त समय नरकमें गमन करते हैं; इसलिये मन, वचन और शरीरसे जिस प्रकार आत्माकी धीरज हो वैसा ही आचरण करे। जैसे चुराये हुए मांसभार ढोनेवाले चोर जानेके मार्गोंको राजपुरुषोंके जरिये रुकनेकी आशङ्कासे मांसके बोझेको त्यागके प्रतिकूल दिशामें गमन करके अन्तमें अपनी रक्षा करते हैं, वैसेही मूर्ख मनुष्य कर्म्मभार ढोते हुए कामादिके सम्मुख होकर संसार भयसे कामादिको त्यागनेपर बन्धनसे छूटते हैं। जैसे चोर लोग चोरीकी वस्तुओंको परित्याग करके आधाररहित दिशामें गमन करते हैं, वैसेही मनुष्य रजोगुण और तमोगुणके सब कार्य्योंको त्यागके सुखलाभ किया करते हैं। जो चेष्टारहित, सर्व्वसङ्ग विमुक्त, निर्ज्जन स्थानमें वास करनेवाले, थोड़ा भोजन करनेवाले, तपस्वी और संयतेन्द्रिय हैं, ज्ञानसे जिनके सब क्लेश भस्म होगये हैं, जो योगाङ्गोंके अनुष्ठान विषयमें अनुरक्त हैं, वेही बुद्धिमान् मनुष्य चित्त वृत्ति निरोधके जरिये अवश्यही परम पद पाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। धैर्य्यशाली बुद्धिमान् मनुष्य "मैं ब्रह्म हूं" इस वचनके निमित्त बुद्धिवृत्तको निःसन्देह रूपसे निग्रह करे, बुद्धिके जरिये संकल्पात्मक मन और मनसे मनरूपी शब्दादि विषयोंको निग्रह करनेमें यत्नवान होवे; और जो इन्द्रियोंको निरहीत तथा मनको वशमें करता है, इन्द्रियां उसके समीप प्रकाशित होतीं और आनन्दित होके उस योगीश्वरमें प्रवेश करती हैं। इन सब इन्द्रियोंके सङ्ग जिसका मन संयुक्त हुआ है,

उसके समीप वह परब्रह्म प्रकाशित होता है और उन सब इन्द्रियोंके अपगत होनेपर सत्व-मात्रमें स्थित आत्मा ब्रह्मरूपसे कल्पित हुआ करता है। अथवा योगी यदि योग ऐश्वर्य्यसे आत्माको न जान सके, तो चित्तवृत्ति-निरोध आदि मुख्य योगतन्त्रोंके सहारे उसे जाननेका उपाय करे, योगका अनुष्ठान करते करते जिस प्रकार चित्तवृत्ति शुद्ध होवे, उसका ही आचरण करना उचित है। योगी पुरुष केवल योग ऐश्वर्य्यको ही उपजीव्य न करके पर्य्यायक्रमसे भिक्षासे प्राप्त हुए चावलोंके किनके कुलथ्य माष, तिलकल्क, अनेक तरहके शाक, उष्णोदकस्वर चूर्ण, सत्तू और फलमूल आदि भोजन करके जीवन धारण करें; देशकालके अनुसार उसमें भी जैसे नियमकी प्रवृत्ति हो, परीक्षा करके उसमें अनुवर्त्तन करना योग्य है। प्रारब्ध कर्म्मोंको अन्तरायके जरिये उपरोध करना उचित नहीं, अग्निकी भांति धीरे धीरे ज्ञानको उद्दीपन करना चाहिये ज्ञानसे प्रदीप्त ज्ञानस्वरूप पर-ब्रह्म सूर्य्यकी तरह प्रकाशित होता है ज्ञाना-धिष्ठान अज्ञान जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों कालोंमें स्थित रहता है, और बुद्धिके अनुगत ज्ञान अज्ञानसे अर्थात् आत्मभिन्न आत्मरूप विपर्य्ययसे आकृष्ट हुआ करता है। आत्मा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीनों अवस्था-ओंसे अतीत होनेपर भी असूय पुरुष पृथकत्व और संप्रयुक्तत्व निबन्धनसे आत्माको दूषित करते हुए उसे जाननेमें समर्थ नहीं होते, वे लोग पृथकत्वको अपृथकत्व सोमा जानके रागरहित होनेसे मुक्त होसकते हैं। कालविजयी मनुष्य जरा मृत्युको जीतके अ ्य अविनाशी अमृत-स्वरूप सनातन ब्रह्मको जान सकते हैं।

२१५ अध्याय समाप्त।

——— ———

भीष्म बोले, जो निष्काम ब्रह्मचर्य्य आचरण करनेकी सदा अभिलाष किया करते हैं, उन स्वप्नदोषदर्शी योगियोंको सब प्रकारकी निद्रा परित्याग करना योग्य है, क्यों कि जीव स्वप्न-कालमें रजोगुण और तमोगुणसे युक्त होता है, तथा निःस्पृह होकर देहान्तर प्राप्त होनेकी तरह आचरण किया करता है। ज्ञानाभ्यास निबन्धन जाननेके लिये पहले वह स्मरण हुआ करता है। अनन्तर विज्ञानमें अभिनिवेशके कारण योगी पुरुष सदा जाग्रत रहते हैं। इस विषयमें कोई कोई यह वितर्क किया करते हैं, कि स्वप्नकालमें जीव यथार्थमें विषययुक्त न होकर भी जो विषय विशिष्टकी तरह दीखता है, और प्रलीन इन्द्रियोंके रहित देहवानकी भांति वर्त्तमान रहता है, इसका क्या भाव है? इस विषयके सिद्धान्त पक्षमें प्राचीन लोग कहा करते हैं, योगेश्वर हरिही स्वप्नके यथार्थ तत्वको जानते हैं, और वह जिस प्रकार जानते हैं, उसेही युक्ति संगत मानके महर्षि लोग वर्णन किया करते है। पण्डित लोग कहते हैं, इन्द्रियोंके श्रमसे सर्व्वप्राणि प्रसिद्ध स्वप्न हुआ करता है; स्वप्नकालमें इन्द्रियोंकी उपरति होने पर भी संकल्पस्वभाव मनका विश्राम नहीं होता, इसलिये स्वप्न विषयमें वही प्रसिद्ध प्रमाण है, यह फिर प्रकाशित होता है।

जाग्रत अवस्थामें कार्य्योंमें आसक्त चित्तवाले मनुष्योंका जैसा सङ्कल्प होता है, वैसाही स्वप्न-कालमें मनोगत मनोरथ ऐश्वर्य्य भोग हुआ करता है, इसलिये मनोरथवृत्तिकी तरह स्वप्न-वृत्ति भी शरीरका सङ्कल्पमात्र है, तब जाग्रत अवस्थामें इन्द्रियोंके जरिये विक्षेपके कारण पूर्ण रूपसे विषयज्ञान नहीं होता, स्वप्नमें उसके अभाव विशेष रूपसे विषय ज्ञान हुआ करता है, इसमें इतनाही प्रभेद है। पूर्व्वके अनन्त जन्मोंके संस्कारोंसे विषयासक्त चित्तवाला पुरुष उन स्वप्न आदि ऐश्वर्य्योंको भोग करता और वह उत्तम पुरुष मनमें अन्तर्हित सब विषयोंको प्रकाशित किया करता है। सत, रज और

तमोगुणमेंसे जो गुण पूर्व्व कर्म्मके जरिये उपस्थित होते हैं, वही गुण कर्म्मसे संस्कृत मनको योगियोंके आकार आदि स्वप्नमें नियुक्त करता है; फिर स्वप्न दर्शनके अनन्तरही जिस प्रकार सुख आदिके अनुभव होते हैं, उसहीके अनुसार राजस, तामस और समस्त सात्विकभाव उस पुरुषके निकट उपस्थित हुआ करते हैं। अनन्तर पुरुष अज्ञानसे राजस और तामस भावके जरिये वात, पित्त और कफ प्रधान शरीरका दर्शन करता है, पूर्व्व वासनाकी प्रबलताके कारण, वह देह दर्शन पुरुषके विषयमें योगके अतिरिक्त अपरिहार्य्य है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। मन प्रसन्न इन्द्रियोंके सहित जिन जिन विषयोंका सङ्कल्प करता है, स्वप्न समय उपस्थित होने पर मनोदृष्टि होकर उन्हीं विषयोंको देखा करता है। मन उपादानके कारण सर्व्वभूतोंमें व्यापक और प्रतिघात रहित होकर वर्त्तमान है, वह अपने प्रभावसेही आत्माको जान सकता है, आत्मामेंही आकाश आदि सब भूत प्रतिष्ठित हैं। स्वप्न दर्शनका द्वारभूत स्थूल देह मनमें अन्तर्हित होता है, सदसदात्मक साक्षी स्वरूप मन उसही शरीरको अवलम्बन करके उसहीमें सोता है, और आत्मामें जाके प्रवेश करता है, सर्व्वभूतोंका आत्मभूत अहङ्कार आत्मामें प्रतिबिम्ब रूपसे निवास करता है, इसलिये पण्डित लोग आत्माको अहंकार गुणसे अस्पृष्ट समझते हैं; परन्तु सुषुप्तिकालमें साक्षी चैतन्यके शुद्ध अवस्थामें निवास करनेसे अहंकार आदि सब लयको प्राप्त होते हैं। मनके सहारे सङ्कल्पसे जो लोग ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य्य आदि ऐहिक गुणोंके अन्यतमकी अभिलाषा करते हैं, वे चित्तप्रसाद जनित शुद्ध मनको वैसाही जानें, मनमेंही आकाश आदि निवास करते हैं। इसही प्रकार विषय आदिकी आलोचनारूपी तपयुक्त मन अर्कको तरह अज्ञान अन्धकारके पारमें निवास किया करता है। देहधारी जीव तैजो व प्रकृतिका कारण ब्रह्मरूप और वह जीव ही कारणीभूत अज्ञानके नष्ट होनेपर महेश्वर अर्थात् शुद्ध ब्रह्म भूत है। देवता लोग अग्निहोत्र आदि तपस्याके अधिष्ठान और असुर लोग तपोघ्न अन्धकार अर्थात् दम्भ दर्प आदिके अवलम्बन हैं। रज और तमोमय देवासुरोंके निमित्त प्रजापतिने इस ज्ञानस्वरूप परब्रह्मको गुप्त कर रखा है। पण्डित लोग कहा करते हैं, सत, रज और तमोगुण देवता तथा असुरोंमें विद्यमान हैं, उनमेंसे सत्वको देवगुण और रज तमको असुरगुण जानना चाहिये। जो सब पवित्र चित्तवाले मनुष्य सात्विक और असात्विक भावोंसे श्रेष्ठ, ज्ञानस्वरूप अमृतस्वरूप, स्वप्रकाश और सर्व्वव्यापी परब्रह्मको जानते हैं; वे परमगति पाते हैं। तत्वदर्शी पुरुष ईश्वर सगुण वा निर्गुण है, इसे ही युक्तियुक्त रूपसे कह सकते हैं और सब विषयोंसे इन्द्रियोंको खींचकर अक्षर ब्रह्मको जाननेमें समर्थ होते हैं।

२१६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, परम ऋषि नारायणके जरिये व्यक्त और अव्यक्त भावसे जिसका तत्व वर्णित हुआ है, जो लोग स्वप्न, सुषुप्ति और सगुण निर्गुण ब्रह्मभावको नहीं जानते, वे उस परब्रह्मको नहीं जान सकते। जन्म ग्रहण करके मृत्युके मुखमें पड़नाही व्यक्त है और मोक्षपदको अव्यक्त जानना चाहिये; परम ऋषि नारायणने यह कहा है, कि देहेन्द्रिय अहङ्कारादिका निवृत्तिलक्षण धर्म्म ही अव्यक्त शाश्वत ब्रह्म है। उस ब्रह्ममें स्थावर जङ्गमात्मक सब जगत् स्थित है, प्रजापतिने प्रवृत्तिलक्षण धर्म्मका विषय कहा है, पुनरावृत्तिका नाम प्रवृत्ति और परम गतिको निवृत्ति कहते हैं; निवृत्ति परायण मननशील मनुष्य उसही परम

गतिको पाते हैं; जो लोग मुक्ति और संसारको निश्चय रूपसे देखनेकी अभिलाषा करते हैं, वे सदा आत्मतत्त्व विचारमें अनुरक्त होवें; वक्ष्यमाण रीतिसे प्रकृति और पुरुष इन दोनोंको जो जानना उचित है, प्रकृति और पुरुषसे भिन्न महत् ईश्वर है, बुद्धिमान पुरुष विशेष रूपसे क्लेशादिकोंसे अपरामृष्ट उस परमात्माको देखें इस प्रकृति और पुरुषको आदि और अन्त नहीं है, तथा इन दोनोंको प्रमाणान्तरोंके जरिये नहीं जाना जा सकता। ये दोनों ही नित्य अविचलित और महत्से भी महत् हैं, दोनोंके इस ही प्रकार सामर्थ्य कहे गये, अब इनका वैधर्म्म विषय कहता हूं। सृष्टिकार्य्यसे व्याप्त त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे पुरुषका विपरीत लक्षण जानने अर्थात् पुरुष सृष्टिकार्य्यमें निर्लिप्त और निर्गुण है, वह निर्गुण होनेसे प्रकृति तथा महदादि विकारोंके कार्य्योंको देखता है, पर स्वयं दृश्य नहीं है। क्षेत्रज्ञ अर्थात् पुरुष और ईश्वर दोनोंही चिद्रूप हैं; इसलिये व्यापक गुणादि विहित और अत्यन्त विविक्त होनेसे उसे नहीं जाना जा सकता। जो अविद्याके जरिये कर्म्म जनित बुद्धि गृहीत होती है, वह अविद्या ही ज्ञान ज्ञेय सम्बन्धमें व्यापक आविर्भाव लाभ करके कर्त्तव्य रूपसे इन्द्रिय आदिके जरिये जिन जिन कार्य्योंको करती है, उसही योनिप्रद कर्म्मोंके सहित संयुक्त हुआ करती है और यह कर्त्ता व्यवहारमें तृतीय होनेपर भी परमार्थ ज्ञान स्वरूप होता है, अहं प्रत्ययसे कौन हूं, ये कौन हैं इत्यादि व्यवहार मात्र होते हैं। जैसे कर्णने अपनेको कौन्तेय न जानकर सूर्य्यसे पूछा, कि कौन्तेय कौन है? शेषमें सूर्य्यके कहनेसे अपनेको ही कौन्तेय जाना था, वैसेही अज्ञानी लोग "ब्रह्म कौन है?" ऐसाही पूंछा करते हैं, ज्ञानवान् पुरुष "मैंही ब्रह्म हूं" ऐसा ही जानते हैं। जैसे उष्णीषयुक्त पुरुष तीनों वस्त्रोंसे परिपूरित होता है, वैसे ही यह देही सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भावोंसे परिपूरित हुआ करता है; इसलिये पहिले कहे हुए अनादि अनन्तत्व, चिज्जड़ता असंहतत्व और कर्त्तृत्व इन चारों कारणोंसे प्रकृति पुरुषके साधर्म्य वैधर्म्म, और जीव तथा ईश्वरके साधर्म्म, वैधर्म्म, इन चारोंको जानना उचित है। जो लोग उक्त विध ज्ञानको अतिक्रम नहीं करते, वे सिद्धान्तके समयमें मोहित नहीं होते। जो लोग हृदयाकाशमें स्थित ब्राह्मी श्रीकी कामना करते हैं, वे अन्तर्बाह्यमे पवित्र होकर शौच, सन्तोष, तपस्या, वेदाध्ययन और ईश्वर प्रणिधान आदिक शारीरिक तथा मानस नियमोंके जरिये निष्काम योगका आचरण करें। प्रकाशयुक्त अन्तर्भूत योगबलके सहारे तीनों-लोक व्याप्त हो रहे हैं, योगबलके जरिये हृदयाकाशमें सूर्य्य और चन्द्रमा प्रकाशित हुआ करते हैं, योगका विकाशही ज्ञानका कारण है, यह लोकमें विख्यात है, कि योगी लोग सनातन भगवान्का दर्शन करते हैं। जो कर्म्म रज और तमोगुणका नाशक है, वही योगका असाधारण लक्षण है। ब्रह्मचर्य्य और अहिंसाको शारीरिक योग कहा जाता है, और वचन तथा मनको पूर्ण रीतिसे निग्रह करना मानस योग कहके वर्णित हुआ करता है। विधि जाननेवाले द्विजातियोंके समीपसे अन्न ग्रहण करनाही योगियोंके विषयमें श्रेष्ठ है, आहारनियमके जरिये राजस पाप शान्त हो जाते हैं। युक्त अन्न खानेवालोंकी इन्द्रियें शब्द आदि विषयोंमे वैमनस्य अर्थात् वैराग्य लाभ करती हैं, इसलिये जब तक आहारका प्रयोजन हो, तबतक अन्न ग्रहण करना चाहिये। इसही प्रकार योगयुक्त मनके जरिये धीरे धीरे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, अन्तकालमें पुण्यक्षेत्रमें वास करते हुए अत्यन्त यत्नके सहित उसही ज्ञानको सिद्ध करे।

यह जीव वागिन्द्रिय-प्रवृत्तिसे रहित और

समाधि समयमें स्थूल शरीरको परित्याग करके भी देहवान् होके शब्दादिविशिष्ट सूक्ष्म शरीरसे विचरता है, अनन्तर कार्य्योंके जरिये अव्याहतचित्त और वैराग्यके कारण सूक्ष्म भोग भी निस्पृह होकर प्रकृतिमेंही लय होजाते हैं। देह त्यागके समयसेही असावधानता आदिके अभाव निबन्धनसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरकी बाधाके सबब जीव तत्क्षणही मुक्त होता है, मूल अज्ञानका नाश न होनेसे जीवोंके जन्म मृत्यु हुआ करते हैं। शुद्ध ब्रह्मके साक्षात्कार विषयमें धर्म्माधर्म्म अनुसरण नहीं करते; जो लोग आत्मासे भिन्न आत्मज्ञान किया करते हैं, उनकी बुद्धि महदादि पदार्थोंके नाश और दोषोंकी आलोचना करती है, वे मोक्ष साधनमें समर्थ नहीं होते। योगी लोग आसन आदिके स्खलनके सहारे देह धारण करते हुए बुद्धिके जरिये मनको सब विषयोंसे हटाके नेत्र आदि इन्द्रिय-गोलकोंसे प्रच्युत प्राण और इन्द्रिय आदिकी सूक्ष्मताके कारण उनकी आत्मस्वरूपसे उपासना करते हैं। योग शोधित बुद्धिवाले कोई मनुष्य आगमोंके अनुसार अर्थात् इन्द्रियोंसे विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन श्रेष्ठ है, इत्यादि वेद वचनके अनुसार चरम सीमामें निज महिमासे प्रतिष्ठित परब्रह्मको बुद्धिके जरिये जानके शास्त्र और आचार्य्यके उपदेशसे उसमे एकाग्रचित्त हुआ करते हैं। कोई कोई धारणाके विषय मूर्त्तब्रह्म कृष्ण, विष्णु, आदिके सहित तदात्म-सम्बन्धसे अथवा सेव्य सेवक-भावसे निबद्ध आत्माकी उपासना करते हैं। दूसरे लोग उपनिषत् प्रसिद्ध बिजलीके प्रकाशकी तरह सकलिभात परिणामहीन निर्गुण परब्रह्मका बार बार अनुभव किया करते हैं। अविमुक्त उपासनासे जिनके पाप जल गये हैं, वे अन्तकालमें ब्रह्मत्व लाभ करते हैं, और वेही सब महानुभाव उपासक लोग परम गति पाते हैं। औपाधिक ब्रह्मके व्यावर्त्तक विशेषणको शास्त्रदृष्टिके सहारे हेयरूपसे देखे। अव्यक्तही ब्रह्मका चरम विशेषण है, उसे स्थूल देहके अध्यासरहित और अपरिग्रह अर्थात् सर्व्व आसक्तिसे विमुक्त जाने। धारणा वश मानस योगीके हृदयाकारसे आरम्भ करके उससे पृथक् सूत्रात्मा रूपसे मालूम करे। जिन लोगोंका चित्त स्वरूप परब्रह्ममें संयुक्त हुआ है वे मर्त्यलोकसे विमुक्त होते और ब्रह्मस्वरूप होकर परम गति पाते हैं।

वेद जाननेवाले पुरुष इसी प्रकार धर्म्मको ब्रह्मप्राप्तिका एकमात्र उपाय कहा करते हैं। चाहे कोई किसी प्रकारसे जानके ईश्वरकी उपासना क्यों न करें, सभी परम गति प्राप्त किया करते हैं। जिन्हें, रागादिरहित अचल अर्थात् दृढ़ शास्त्रीय और परोक्ष ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वे श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करते और वैराग्यके अनुसार मुक्त होते हैं। आशाहीन ज्ञानतृप्त और पवित्रचित्तवाले योगी लोग सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त, जन्मरहित, अव्यक्तसंज्ञक, दिव्यधाम-स्थित, सर्व्वव्यापी ब्रह्मके निकटवर्त्ती हुआ करते हैं। वे अविनाशी महानुभाव पुरुष हरिको शरीरस्थ पञ्चकोशके अन्तर्गत जानके फिर दूसरी बार उससे निवृत्त नहीं होते; वे लोग उस अव्यय अविनश्वर परमधाम पाके निरवच्छिन्न आनन्द अनुभव करते हैं। रस्सीमें सर्पभ्रमकी तरह यह जगत् है वा नहीं इत्यादि रूपसे अनिर्व्वचनीय जगत्का मिथ्यापन जानना उचित है; परन्तु समस्त जगत् तृष्णामें बद्ध होकर चक्रकी तरह परिवर्त्तित होता है। जैसे मृणालसूत्र कमलके डांडीके बीच सर्व्वत्र वर्त्तमान रहता है, वैसेही आदि और अन्तरहित तृष्णाके तागे सदा देहमें विद्यमान हैं। जैसे सीनेवाला सूईके सहारे वस्त्रोंमें तागा चलाता है, वैसेही तृष्णासूचीसे संसारसूत्र निबद्ध होरहा है। जो लोग महदादि विकार-रूप कार्य्यमें हीमत कारण प्रकृति और आत्म-

शिक्षित सनातन पुरुषको विधिपूर्व्वक जानते हैं, वैसे ही तृष्णारहित पुरुष मुक्त होते हैं। जगत्‌की गति भगवान् नारायण ऋषिने जीवोंके ऊपर कृपा करके इस मोक्ष साधन विषयको स्पष्ट करके कहा है।

२१७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे व्यवहार दर्शिन्! मिथिलापति जनकवंशीय मोक्षवित् जनदेवने किस प्रकारके व्यवहारोंके जरिये मनुष्योंके भोगने योग्य भोगोंको परित्याग करके मुक्तिलाभ की थी?

भीष्म बोले, व्यवहारदर्शी जनदेवने जिस प्रकार व्यवहारके सहारे मोक्षलाभकी थी, उस विषयमें प्राचीन लोग यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। मिथिलानगरीमें प्रजानाथ जनदेव शरीर त्यागनेके अनन्तर जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म प्राप्ति होती है, उस ही प्रकार धर्म्म विषयोंकी चिन्तामें तत्पर थे। उनके स्थानमें अनेक प्रकारके उपासनामार्ग-प्रदर्शक और लोकायत पाषण्डियोंके तिरस्कार करनेवाले सैकड़ों आचार्य्य सदा निवास करते थे। उन सब पाषण्डियोंके बीच कोई कोई देह नाश निबन्धनसे आत्माका नाश स्वीकार करते थे, कोई शरीरको ही अविनाशी कहके स्थिर करते थे, इसही प्रकार विविध विषयोंमें ऐक्यमत न रहने तथा परलोक, पुनर्जन्म और आत्मतत्त्व विषयमें विशेष निश्चय न होनेसे वह शास्त्रदर्शी राजा उन लोगोंके विषयोंमें विशेष रूपसे सन्तुष्ट नहीं था। अनन्तर कपिलापुत्र पञ्चशिख नाम महामुनि समस्त पृथ्वी पर्य्यटन कर एकत्र वास न करके उस मिथिला नगरीमें उपस्थित हुए। वह समस्त सन्न्यासधर्म्मके तत्त्वज्ञान निश्चय विषयके जो सब प्रयोजन हैं, उन्हें पूर्ण रीतिसे निर्णय कर सकते थे; उन्हें सुख दुःख आदि कुछ न था और सब संशय नष्ट हुए थे। पण्डित लोग उन्हें ऋषियोंमें अद्वितीय कहते थे; वे यदृच्छाक्रमसे मनुष्योंके बीच निवास करते और अत्यन्त दुर्लभ नित्यसुखकी खोजमें तत्पर रहते थे। सांख्य मतावलम्बी दार्शनिक पण्डित लोग जिसे परम ऋषि प्रजापति कपिल कहा करते हैं, बोध होता है, वही पञ्चशिख रूपसे लोगोंको विस्मययुक्त करते थे। प्राचीन लोग जिसे आसुरीके प्रथम पुत्र और चिरजीवी कहते हैं; जिन्होंने हजार वर्ष सम्पाद्य मानसयज्ञका अनुष्ठान किया था, जिन्होंने आसुरीके निकट समासीन कपिलमतावलम्बी मुनिमण्डलीके समीप उपस्थित होकर अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय पञ्चपुरुष जिसमें निवास करता है और जिन्होंने स्वयं हाथ और मस्तक आदि अवयवोंसे रहित कहके अव्यक्त और अवाध्यत्व निबन्धन परमार्थ स्वरूप उस परब्रह्म विषयक ज्ञानका विस्तार किया था। जिन्होंने आत्मज्ञानके निमित्त आसुरीके निकट बार बार प्रश्न किया था, उससे आसुरीने शरीर और जीवकी स्पष्टता समझके दिव्यदृष्टि लाभ की थी; वेद और लोकमें प्रसिद्ध जो एक मात्र अविनाशी ब्रह्म अनेक रूपसे दीखता है, आसुरीने उस ही मुनिमण्डलीके बीच उस अव्यय पुरुषको जाना था। पञ्चशिख उस ही आसुरीके शिष्य थे वह किसी मानुषीका दूध पीकर वर्द्धित हुए थे कपिलानामी कोई कुटम्बिनी ब्राह्मणी थी, वह उसहीका पुत्रत्व स्वीकार करके उसके स्तनका दूध पीते थे, उसहीसे उनका कापिलेय नाम हुआ और उन्होंने नैष्ठिकी बुद्धि लाभकी। भगवान् मारकण्डेयने इसही प्रकार मेरे समीप उनकी उत्पत्ति, कापिलेय नामका कारण और असाधारण सर्व्वज्ञत्वका विषय कहा था। धर्म्मज्ञ पञ्चशिखने परमश्रेष्ठ ज्ञानलाभ करके मिथिलाधिपतिके आचार्य्योंकी समबुद्धि जानके

युक्तिधाराकी वर्षासे सहारे सैकड़ों आचार्य्योंको मोहित किया। राजा कापिलेयको देखनेसे ही उनपर भक्तिके कारण अनुरक्त होकर पूर्व्वोक्त आचार्य्योंको परित्याग करके उनहीके अनुगामी हुए, कपिलापुत्र पञ्च इन्द्रियोंके प्रत्याहारयुक्त मनोनिग्रहमें निष्ठावान थे; पञ्चरात्रनाम विष्णुप्रापक यज्ञ विषयके जाननेवाले थे अर्थात समस्त कर्म्मोंका अनुष्ठान किया था। अन्नमय प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पञ्चकोषके विषयको विशेष रूपसे जानते थे, अन्नमय आदि पञ्चकोषोंके आश्रय आत्माकी उपासना करते थे; शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और सावधान होकर आत्मासे ही आत्माका दर्शन करते थे; इसीसे शान्त आदि पञ्चगुणोंसे युक्त थे, इसहीसे वह पञ्चशिख नामसे प्रसिद्ध हुए।

जनक बोले, हे द्विजश्रेष्ठ! लोक और वेदमें प्रसिद्ध जो अद्वितीय अविनाशी ब्रह्म अनेक रूपसे दीखता है, आप मेरे समीप उसका विषय वर्णन करिये, आपने ही उसे यथार्थ रूपसे जाना है।

भीष्म बोले, महर्षि पञ्चशिख धर्म्मपूर्व्वक विनययुक्त और तत्त्व ज्ञानके उपदेश धारण करनेमें अत्यन्त समर्थ उस मिथिलापतिसे सांख्य शास्त्रमें कहे हुए परम मोक्षका विषय कहने लगे; उन्होंने पहिले उनके समीप जन्म विषयक सब दोषोंको प्रदर्शित करके यागादि कर्म्मोंके दोष कहे और यागादि कर्म्मोंके दोष कहके ब्रह्मलोक पर्य्यन्त सब लोकोंके दोष वर्णन किये। जिसके लिये कर्म्मकी सृष्टि और सब कर्म्मोंके फलकी आकांक्षा होती है, वह अविश्वसनीय मोह विनाशी अस्थिर और सत्य वा असत् रूपसे निश्चित नहीं है, यह भी कहा।

लोकायत नास्तिकोंका यह मत है, कि सर्व्वलोकसाक्षी देहरूपी आत्माका नाश प्रत्यक्ष दीखने पर भी शास्त्र प्रमाणके कारण देहसे पृथक् आत्मा है, ऐसा जो वादी कहा करता है, वह पराजित होता है। आत्माका मृत्यु स्वरूप नाश और दुःख-जरा रोग आदिसे आंशिक नाश है; जैसे गृहके निर्व्वल अवयवोंके धीरे धीरे नष्ट होनेपर गृह नष्ट होता है, वैसेही इन्द्रिय आदिके विनाशके जरिये शरीरकाही नाश हुआ करता है। ऐसा होने पर भी जो लोग मोहके वशमें होकर आत्माको देहसे पृथक् अन्य पदार्थ समझते हैं, उन लोगोंका मत समीचीन नहीं है। 'लोकमें जो नहीं है' यह यदि सिद्ध हो, तो बन्दीगण जो राजाको अजर अमर कहके स्तुति किया करते हैं, वह भी सिद्ध हो सकता है। असत् पदार्थ है, वा नहीं, ऐसा संशय उपस्थित होनेपर मनुष्य कौनसा कारण अवलम्बन करके लोकयात्राका निश्चय करेगा? अनुमान और शास्त्र-प्रमाणका मूल प्रत्यक्ष है, उस प्रत्यक्षके जरिये शास्त्र बाधित हुआ करता है और अनुमान तुच्छ प्रमाण है; देहसे पृथक् स्वतन्त्र आत्मा नहीं है; इस विषयकी चिन्ता करनी वृथा है, नास्तिकोंके मतमें जीव शरीरसे स्वतन्त्र नहीं है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु, इन चारों भूतोंका संयोग होने पर जैसे वट बीजके क्षुद्र भागके बीच पत्ते, फूल, फल, छाल, रूप और रस आदि अन्तर्हित रहते हैं, वैसेही रेत "वीर्य्य" के बीच मन, बुद्धि, अहंकार चित्त, शरीरका रूप और गुण आदि अन्तर्हित रहके उत्पन्न होते हैं, अथवा जैसे एक मात्र गोभुक्त तृणोदकसे विभिन्न स्वभाव दूध और घी उत्पन्न होता है, अथवा अनेक वस्तुओंसे मिला हुआ कल्कके दो तीन रात्रि पकने पर जैसे उसमेंसे मदशक्ति उत्पन्न हुआ करती है, वैसेही पहिले कहे हुए चारों तत्त्वोंके संयोगसे रेतसे चैतन्य उत्पन्न होता है। जैसे दो काष्ठोंके घिसनेसे अग्नि प्रकट होती है, वैसेही चारों भूतोंके संयोगसे उसका प्रकाशक चैतन्य जन्म ग्रहण किया

करता है। जड़ पदार्थोंसे चैतन्यकी उत्पत्ति असम्भव नहीं है, तान्त्रिक मतसे आत्मा और मन जड़ होने पर भी दोनोंके संयोगके कारण जैसे स्मरणादि रूप ज्ञान उत्पन्न होता है, इस विषयमें भी वही प्रमाण है। जैसे अयस्कान्त-मणि लोहेको आकर्षण करती है, वैसेही उक्त रूपसे उत्पन्न हुआ चैतन्य इन्द्रियोंको चलाया करता है। जैसे सूर्य्यकान्तके संयोगद्वारा सूर्य्य किरणसे अग्नि प्रकट होती है, वैसेही भोक्तृत्व और अग्निका जलशोषकत्व संघातके जरियेही सिद्ध होता है; इसलिये देहसे पृथक जीव नहीं है, यह युक्तिसङ्गत है। लोकायत नास्तिकोंका जो युक्तियुक्त मत वर्णित हुआ, वह अत्यन्त दूषित है, क्योंकि शरीरके मृत होने पर भी आत्माका विनाश नहीं होता; देहसे अतिरिक्त आत्माके अस्तित्वमें यही प्रमाण है, कि यदि देह चेतन हो, तो मृत शरीरमें भी चैतन्यकी प्राप्ति हो सकती है, जब कि ऐसा नहीं दीखता है, तब चैतन्य अवश्यही देह धर्म्म नहीं है। जिसके वर्त्तमान रहनेसे शरीर नष्ट नहीं होता और जिसके न रहने पर देह नष्ट होता है, वह अवश्यही शरीरसे स्वतन्त्र है; और लोकायत नास्तिक लोग शीत, ज्वरकी निवृत्तिके लिये मन्त्रप्रतिपाद्य देवताके निकट प्रार्थना किया करते हैं, वह देवता यदि भूतमयी हो, तो घट पट आदिकी तरह दृष्टिगोचर होसके, परन्तु लोकान्तर गमन करने योग्य सूक्ष्म शरीरको स्वीकार न करनेसे उनके मतमें देवताकी सिद्धिही सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त जिस समय जो शरीर भूतान्तरमें आविष्ट होता है, उस समय उस शरीरकी पीड़ासे देहका मुख्य अधिष्ठाता पीड़ित नहीं होता; परन्तु जो आविष्ट हुआ है, उसीको उस देहके अभिमान निबन्धनसे पीड़ा हुआ करती है; अविष्टके अपगमसे मुख्य शरीरही बाधित होता है; इसलिये इष्ट-विरोधके कारण देहको आत्मा नहीं कहा जाता; मृत होनेपर कर्म्मोंकी निवृत्ति होती है, इससे कृत कर्म्मोंका नाश और अकृत कर्म्मोंके आगमरूप दोषको विशिष्ट रूपसे स्वीकार करना होता है, अर्थात् जिस शरीरसे जो देह करता है उस देहके नष्ट होनेपर उसके किये हुए कर्म्म भी नष्ट होते हैं, और नवीन शरीर उत्पन्न होनेपर अकृत कर्म्मोंका फल भोग हुआ करता है, इससे लोकायतिक मत अत्यन्तही युक्तिविगर्हित है। मूर्त्त पदार्थसे अमूर्त्त ज्ञानकी उत्पत्ति होनेसे पृथ्वी आदि चारों भूतोंसे आकाशकी उत्पत्ति होसकती है; इसलिये अमूर्त्तके सहित मूर्त्तकी सदृशता कभी सम्भव नहीं है।

सौगत-मतावलम्बी नास्तिक लोग अविद्या, कर्म्म, वासना, लोभ, मोह और दोषनिसेवणको पुनर्जन्मका कारण कहा करते हैं। वे लोग लोकायत नास्तिकोंके अभिमत चारों भूतोंके बाह्यसङ्घातसे आध्यात्मिक सङ्घातरूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा संस्काराख्य पञ्चस्कन्धात्मक ऐहिक और पारलौकिक व्यवहारास्पद जीव स्वीकार करते हैं; इसलिये उनके मतमें देहके नाशसेही आत्म विनाशरूप दोषकी सम्भावना नहीं है। यद्यपि ये लोग दूसरेकी तरह स्थिर भोक्ता वा प्रशासिता चेतन स्वीकार नहीं करते हैं, तौभी अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम, रूप, षड़ायतन अर्थात चित्तका आश्रय शरीर, स्पर्श, पीड़ा, तृष्णा, उपादान, जन्म, जाति, जरा, मृत्यु, शोक, परिदेवना, दुःख और मनस्ताप, इन अठारहों दोषोंको कभी कभी संक्षेपसे कभी विस्तारके सहित वर्णन किया करते हैं। ये लोग घटायन्त्रकी भांति आवर्त्तमान होकर सङ्घातकी साम्य यत्न रूपसे अभिक्षेप करते हैं; उसही सङ्घातोत्पत्तिके कारण लोकयात्रा निर्व्वाह होनेसे स्थिर आत्माकी सत्ताको स्वीकार नहीं करते। उनके मतमें पूर्व्वकृत कर्म्म और तृष्णाजनकही, अविद्या क्षेत्र शरीरके बार बार उत्पत्तिका

बीज और कारण रूपसे वर्णित हुआ है। उस अविद्या आदि कलापके सुषुप्ति प्रलयके संस्कार-स्वरूपसे निमित्तभूत होके स्थिति करने और एकमात्र मरण धर्म्मयुक्त देहके जलने वा नष्ट होनेपर अविद्या आदिसे दूसरा शरीर उत्पन्न होता है, सौगत लोग इसेही सत्वसंक्षय अर्थात् मोक्ष कहा करते हैं।

इस विषयमें यही आपत्ति है, कि मुक्ति होनेपर भी क्षणिक विज्ञान आदिके स्वरूप, जाति, पाप-पुण्य और बन्ध मोक्षसे जबकि पृथकत्व होता है, तब किस प्रकार इस विज्ञानसे वह विज्ञान प्रत्यभिज्ञान होसकता है। एक पुरुष मुमुक्षु, दूसरा साधनाविष्ट है और अन्यपुरुष मुक्त हुआ, यह अत्यन्त ही असंगत वचन है। ऐसा होनेसे दान, विद्या, तपस्या और बलके निमित्त लोगोंकी प्रवृत्ति न होती; क्यों कि एक पुरुषके दानादि कर्म्मोंका अनुष्ठान करनेपर फल भोगके समय उसके अभावमें दूसरे फल भोग करने लगे यह कभी सम्भव नहीं है। यह सम्भव होनेसे एकके पुण्यसे दूसरे सुखी और दूसरेके पापसे अन्य पुरुष दुःखी हो सकते हैं; इसलिये ऐसे दृश्य विषयोंके जरिये अदृश्य विषयोंका निर्णय करना युक्तिसंगत नहीं होता है। एकका ज्ञान दूसरेके ज्ञानके समान नहीं होता; इसलिये जिसमें वैराग्यके जरिये ये सब दोष उत्पन्न न हों, उसके लिये यदि क्षणिक विज्ञानवादी नास्तिक लोग ज्ञानधाराकी स्वजातीयता कहनेकी इच्छा करें, तब उत्पाद्यमान सदृश ज्ञानका उपादान क्या है? इस प्रश्नका उत्तर देनेके पहिले ज्ञानका वे लोग सिद्धान्त पक्षमें निक्षेप करनेमें समर्थ नहीं हैं, क्यों कि उन लोगोंके मतसे ज्ञानका क्षणिकत्व निबन्धन उत्तर ज्ञानके उत्पादन विषयमें समर्थ नहीं है। यदि उस ज्ञानकाही नाश हो, तो मूषलके जरिये नष्ट हुए शरीरसे दूसरा शरीर उत्पन्न होसके। ऋतु, सम्वत्सर, युग सर्दी, गर्म्मी प्रिय और अप्रिय आदि जैसे अतीत होके फिर उत्पन्न होते देखे जाते हैं, वैसेही ज्ञानधाराकी अनन्तताके कारण ऋतु आदिकी भांति मोक्ष बार बार आगत और निवृत्त होती है, इसलिये क्षणिक-विज्ञानवाद अनेक दोषोंसे ग्रस्त होनेसे युक्तिसंगत नहीं है। जरा और मृत्युके जरिये आक्रान्त अनित्य धर्म्माश्रय दुर्ब्बल शरीर गृहकी भांति नष्ट होता है।

इन्द्रियां, मन, प्राण, मांस, रुधिर, हड्डी आदि आनुपूर्व्विक नष्ट और असम्मिलित हुआ करती हैं, लोकयात्रामें व्याघात और दानधर्म्मादि फलकी अप्राप्ति होनेपर उसही कारणसे आत्म-सुखार्थ सब लौकिक और वैदिक व्यवहार भी नष्ट होते हैं। मनमें अनेक प्रकारके तर्क उत्पन्न हुआ करते हैं; तर्क उत्पन्न होनेपर युक्तिके सहारे देहसे पृथक् दूसरा कौन आत्मरूपसे निर्द्धारण किया जासकता है। जो लोग अभिनिवेश-पूर्व्वक विचार करते हैं, उनकी बुद्धि किसी अनिर्व्वचनीय वस्तुमें निविष्ट होती है, निविष्ट होनेपर उसमें ही वृक्षकी तरह जीर्ण हुआ करती है। इसही प्रकार इष्ट और अनिष्टके जरिये सब जन्तु ही दुःखित होरहे हैं। जैसे हाथीवान हाथियोंको आकर्षण करता है, वैसे ही दुःखोपहत जीवसमूह शास्त्रके जरिये वशीभूत हुआ करते हैं। बहुतेर मनुष्य अत्यन्त सुखयुक्त विषयोंकी अभिलाष करके शुष्क होते हैं; अन्तमें महत् दुःख भोगते हुए विषय परित्याग करके मृत्युके वशमें हुआ करते हैं। जिसका अवश्य ही विनाश होगा और जीवनका निश्चय नहीं है, उसे बन्धु बान्धव और विभिन्न परिवार समूहका क्या प्रयोजन है। जो सबको परित्याग करके गमन करते हैं, वे क्षणकालके बीच लोकान्तरमें पहुंचके फिर दूसरी बार नहीं लौटते। पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु, ये पञ्चभूत सदा शरीरका प्रतिपालन करते हैं, इसलिये इस पञ्चभूतात्मक शरीरके तत्वकी

आनवेसे किसमें अनुराग होगा ? इस विनाशी शरीरमें तनिक भी सुख नहीं है। राजा जनदेवने यह भ्रम प्रमादसे रहित अकपट आत्मसाक्षी वचन सुनके विस्मययुक्त होकर फिर पूर्व्वपक्ष करनेकी इच्छा की।

२१८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, जनकवंशीय जनदेवने पञ्चशिखका वचन सुनके मरनेके अनन्तर फिर जन्म और मोक्ष होती है वा नहीं। फिर उस विषयमें प्रश्न किया।

जनकदेव बोले, हे भगवन्! यदि मरनेके बाद किसीको सुषुप्ति वा मूर्च्छावस्थाकी तरह विशेष विज्ञान न रहे, तो ज्ञान वा अज्ञानमें कुछ विशेष नहीं रह सकता। हे द्विजोत्तम! इसलिये यम और नियम आदि सभी आत्मनाश पर्य्यवशायी अर्थात् आत्मनाश होनेसेही सब नियमादि नष्ट हुआ करते हैं; इसलिये चाहे मनुष्य प्रमत्त हो वा अप्रमत्त हो हो, उसमें विशेष क्या है। मोक्ष होनेसे यदि दिव्याङ्गना आदिका असंसर्ग होनेपर भी वह स्वर्गादिकी तरह विनाशी हो, तब किस निमित्त कर्म्म करे और क्रियमाण कार्य्यकी घटना ही किस प्रकार होगी, इस विषयमें यथार्थ रूपसे क्या निश्चय है।

भीष्म बोले, अतिक्रान्तदर्शी महर्षि पञ्चशिखने अज्ञानाच्छन्न विभ्रान्त आतुरकी भांति राजाको फिर वचनसे धीरज देके कहने लगे। इस सन्सारमें देह नाश होनेसेही पर्य्यवसान नहीं होता और देह विशेषके नाश होनेसे जो शेष हुआ, वह भी नहीं है; परन्तु अविद्याके सहारे आत्मामें आरोपित बुद्धि और इन्द्रिय आदि केवल रस्सीमें सर्पभ्रमकी तरह मालूम होती है, ऐसे अनर्थकी निवृत्ति और कण्ठमें पड़े हुए विस्मृत कण्ठहारकी भांति स्वरूपानन्दकी प्राप्ति होनेसे ही इत कृतता हुआ करती है। वह प्रत्यक्ष दृश्यमान देह इन्द्रियों और चित्तके मिलनजनित सङ्घातसे एक दूसरेका आश्रय करके कार्य्यमें वर्त्तमान रहता है। जिसमें सब कार्य्य लीन होते हैं, उसे उपादान कहते हैं, वह उपादान पांच प्रकारका है; जल, आकाश, अग्नि, वायु और पृथ्वी; सांख्य मतके अनुसार ये पांचो उपादान स्वभावसे ही स्थिति करते हैं और स्वभावसे ही पृथक् हो जाते हैं। ये आकाश आदि पांचो उपादान संयुक्त होकर शरीराकारसे परिणत हुआ करते हैं, अर्थात् शरीरके अन्तर्गत जो आकाशका भाग है वही आकाश है; जो प्राण है, वही वायु है; जो उष्मा है, वही अग्नि है, जो रक्तरस आदि स्निग्धवत् पदार्थ हैं, वही जल और जो अस्थि आदि कठोर पदार्थ हैं, वही पार्थिव अंश हैं; यह शरीर जरायुज आदि भेदोंसे अनेक प्रकारका है। ज्ञान, जठराग्नि और प्राण ये त्रिविध-पदार्थ सर्व्वकर्म्म सङ्ग्राहक है; इन्द्रिय और इन्द्रियोंके शब्द स्पर्श आदि विषय प्रकाशक स्वभाव-विशिष्ट हैं, घटाकार वृत्ति चेतनाही संकल्पादि रूप मन है, यही ज्ञानके कार्य्य हैं, वायुके कार्य्य प्राण आदि पञ्चवायु है, खाने और पीनेकी वस्तुओंको परिपाकके जरिये इन्द्रियादिका उपचय करना जठराग्निका कार्य्य है। इससे ज्ञान, अग्नि और वायुसे इन्द्रिय आदि प्रकट हुई हैं। कान, त्वचा, जीभ, नेत्र और नासिका, ये पांचो इन्द्रिय चित्तगत गुण ज्ञान क्रिया करती हैं। सुख, दुःख, सुखाभाव और दुःखाभाव स्वरूपीविज्ञानयुक्त चेतनावृत्ति विषयोंकी उपादेयत्व, हेयत्व और उपेक्षणीयत्व भेदसे तीन प्रकारकी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पांचो विषय मूर्त्तिके सहित संयुक्त होकर मृत्युकाल पर्य्यन्त ज्ञान सिद्धिके निमित्त षड्-विषय कहके प्रसिद्ध हुआ करते हैं। कान आदि इन्द्रियोंसे सन्ताप निवन्धनसे जिन सब विषयोंमें अर्थ निश्चय होता है, उसीको पण्डित

लोग मोक्षका बीज और मोक्षप्रद हेतु अव्यय अहत् बुद्धि कहा करते हैं। इन आत्मातिरिक्त विषयोंको जो लोग आत्मभावसे देखते हैं, उनका असम्यक्दर्शनसे अनन्त दुःख शान्त नहीं होता "यही" इत्यादि रूपसे जो दीखता है, वह आत्मा नहीं है, क्यों कि दृश्य वस्तु कभी द्रष्टाकी आत्मा नहीं होसकती। इस कारण 'मैं और मेरा' इत्यादि वचन भी सिद्ध नहीं होते; तब अहंकार देहेन्द्रिय आदि जो आत्मामें अभेद रूपसे मालूम होती हैं, वह सीपमें रौप्यबुद्धिके समान भ्रम मात्र है। "यही मैं अन्धा हूं, मैं गौर वर्ण हूं" इत्यादि वचनमें जब आत्माका सम्बन्ध नहीं है, तुम "मेरे पुत्र, मेरी स्त्री।," ये सब वचन भी मिथ्या हैं; इसलिये जो दुःखसन्तति मालूम होरही है, उसका अवलम्ब क्या है, क्यों कि आत्मा असङ्ग और अहंकार मिथ्या है, इससे रस्सीमें सर्पभ्रमकी भांति निरधिष्ठान दुःखसन्तति भी अवश्यही अहङ्कारकी तरह सत्य नहीं है; अब जो वक्ष्यमाण त्याग प्रधान शास्त्र तुम्हारे मुक्ति विषयके निमित्त होगा, वह परमश्रेष्ठ सत्यशास्त्र सुनो। मुक्तिके लिये सदा उद्यत पुरुषोंको सब कर्म्म और विभव आदिको परित्याग करनाही नित्यकर्म्म है, और जो लोग त्यागको स्वीकार न करके शान्तिपरायण होते हैं, पण्डित लोग उन लोगोंके अविद्या आदि क्लेशोंका दुःखदायक समझते हैं। सुखकी सामग्रियोंको परित्याग करनेसे सब कर्म्म सिद्ध होते हैं, भोग त्याग करनेसे व्रतकी सिद्धि हुआ करती है, सुख त्याग करनेसे तपस्या और योग उपदेश प्राप्त हो सकता है, और समस्त परित्याग करनेसे त्यागकी पराकाष्ठा हुई। दुःखोंको नाश करनेके लिये उस सर्व्वत्यागका ईश्वरचित मार्ग प्रदर्शित होता है। त्याग स्वीकार न करनेसे दुर्गति हुआ करती है। बुद्धिमें विद्यमान मनके सहित पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंका विषय कहके प्राणके सहित पञ्च कर्म्मेन्द्रियोंका विषय कहता हूं।

दोनों हाथ कर्म्मेन्द्रिय, दोनों पांव गमनेन्द्रिय और शिश्न सन्तानोत्पादन तथा आनन्द जननेन्द्रिय, वायु पुरीष (मल) परित्याग आदिकी इन्द्रिय और वाक्य शब्दविशेष उच्चारणकी इन्द्रिय है, मन इन पांचो कर्म्मेन्द्रियोंमें संयुक्त है। इसही प्रकार मनके सहित कर्म्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां इन ग्यारहोंको बुद्धिके सहारे शीघ्रही परित्याग करे; मनको परित्याग कर सकनेसे ही विषययुक्त कर्म्मेन्द्रियां परित्यक्त होती हैं; और बुद्धिको परित्याग करनेसे ही मनके सहित ज्ञानेन्द्रियोंका परित्याग सिद्ध हुआ करता है। शब्द क्रियाको सिद्ध करनेके लिये दोनों कान कण्ठ, शब्द विषय और चित्त कर्त्ता रूपसे कहा जाता है; स्पर्श, रूप, रस और गन्धका विषय भी इसही प्रकार है। इसी भांति शब्दादि विषयोंकी अभिव्यक्तिके लिये सत्व आदि तीनों गुण, सब विषय और कारणको समनस्क करें, जो अनुभवको अभिव्यक्तिके निमित्त सात्विक राजसिक और तामसिक भाव पर्य्यायक्रमसे उपस्थित होते हैं, वह अनुभव ही प्रहर्ष आदि सब सात्विक प्रभृति कार्य्योंका साधन किया करता है। प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और शान्त-चित्तता, ये सब सात्विक गुण वैराग्यके कारण वा स्वाभाविक ही चित्तसे उत्पन्न होते हैं। असन्तोष, परिताप, शोक, लोभ और क्षमाहीनता, ये सब रजोगुणके चिन्ह हैं, कभी कारणसे और कभी विना कारणके ही दिखाई देते हैं। अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न और तन्द्रा आदि विविध तामसगुण कारण वा विना कारणके ही वर्त्तमान रहते हैं। जो शरीर और मनको प्रीतियुक्त करे, उसेही सात्विक गुण समझना चाहिये। जो विषय आत्माको असन्तोष और अप्रीतिकर हैं, उन्हें ही रजोगुणसे उत्पन्न हुए समझना चाहिये, और शरीर वा मनसे जो मोहयुक्त होके मालूम होता है, उसेही अवितर्क्य और अविज्ञेय तमोगुणका

कार्य्य निश्चय करे। आकाशके आश्रित श्रोत्र आकाशसे भिन्न नहीं हैं और श्रोत्राश्रित शब्द भी परस्परके सम्बन्धसे आकाशसे स्वतन्त्र नहीं होसकता, जब ऐसा हुआ, तब शब्दज्ञान होनेपर आकाश और श्रोत्र ये दोनों ही विज्ञानके विषय नहीं होते, क्योंकि जिसे शब्दज्ञान होता है, उसे शब्दज्ञानके समयमेंही श्रोत्र और आकाश विषयका ज्ञान समान नहीं होसकता, इससे ऐसा निश्चय नहीं है, कि श्रोत्र और आकाश अज्ञात ही रहे। एकका विज्ञान होनेसे दूसरेका ज्ञान नहीं होता, यह वचन कभी भी युक्तिसङ्गत नहीं है। श्रोत्र और आकाशसे शब्द कभी स्वतन्त्र नहीं होसकता। इसलिये श्रोत्रादिके प्रविलापनसे शब्द और आकाश आदिका प्रविलापन युक्तियुक्त है; शब्द और आकाशादि स्मरणात्मक चित्त स्वरूप है; चित्त भी अध्यवसायात्मक मनसे भिन्न नहीं, इसलिये मनके लय होनेसे सभी लीन होते हैं। इसी प्रकार त्वचा, नेत्र, जिह्वा नासिका, स्पर्श, रूप, रस और गन्धके सहित अभिन्न होकर चित्तभी मनःस्वरूप होता है; मनके लय होनेसे ये सब लीन होते हैं। इन्द्रियोंके विषय सुनना, छूना, देखना आदि कार्य्य एक समयमें ही सिद्ध होनेसे पञ्चज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्म्मेन्द्रिय, इन दशोंके अनुगत मन ग्यारहवा होकर स्थिति करता है और बुद्धि ऊपर कही हुई दशों इन्द्रिय तथा ग्यारहवें मनका अनुगत होकर बारहवें रूपसे निवास किया करती है, जो लोग यह अङ्गीकार करते हैं, कि एक समयमें अनेक ज्ञान नहीं होता, उनका अनुभव युक्तिविरुद्ध है; क्योंकि गङ्गाजलमें शरीरका अर्द्ध भाग डूबनेपर आधेहिस्सेमें सूर्य्यकिरणकी गर्मी और आधे भागमें शीतता दोनों ही स्पष्ट मालूम होती हैं। प्रागुक्त पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्म्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि इन बारहोंको युगपद्भाव न होनेपर भी निन्द्रा रूप तमोमय सुषुप्ति-कालमें भी आत्माका नाश नहीं है, आत्माका अयोगपद्यही वास्तव है, युगपद्भाव केवल सपनेकी भाति ज्ञानकृत है; इसलिये आत्माका जो युगपद्भाव है, वह लौकिक व्यवहार मात्र है। पारलौकिक नहीं है, स्वप्नदर्शी पुरुष पूर्व्वानुभव वासनासे सूक्ष्म इन्द्रियोंके विषय सङ्कल्पकी चिन्ता करते हुए सत, रज और तमोगुणसे युक्त होकर कामनाके अनुसार निज शरीरमें विचरते हैं। जो तमोगुणसे अभिभूत और जो प्रवृत्ति प्रकाशात्मक आत्माको शीघ्र ही संहार करके पहले कहे हुए युगपद्भावको अनिश्चित नाश करता है, पण्डित लोग उसेही तामससुख कहा करते हैं। वह अज्ञान प्रधान तामससुख इस शरीरमेंही सुषुप्तिकालमें मालूम हुआ करता है; जो सुख आनन्द स्वरूप परब्रह्म इत्यादि वेदबोधित रूपसे विख्यात् है उसमें तनिक भी द्वैत सुख न दाख पड़न और अव्यक्त अनृत तमोगुणकी सत्ता न रहनपर भी उसका अस्तित्व उपपन्न होता है। इन अहङ्कार आदिकाकी घटपट पर्य्यन्त दृश्यमान भाग्य वस्तुओंके निज कर्म्मके कारण उत्पत्ति प्रख्यात् हुआ करती है। कोई कोई अविद्यायुक्त पुरुषोंका अज्ञान वज्रपञ्जरकी तरह वर्द्धित होता है, और कोई कोई विद्वान् पुरुषोंके समीप वह अज्ञान तीनों कालमें भी आगमन करनेमें समर्थ नहीं होता। अध्यात्म विचारमें तत्पर पण्डित लोग संघात बीजभूत मनके बीच जो सत्ता है, उसे ही शैवश कहा करते हैं। अनादि अविद्या कर्म्मसे सत्य और मिथ्याका आत्म और आत्मभिन्न एकत्रीकरण निबन्धन व्यवहारमें वर्त्तमान चतुर्व्विध भूतोंके बीच शाश्वत आत्मा किस प्रकार नाशयुक्त होसकता है। आत्मा सर्व्वव्यापी नित्य पदार्थ है, उसका कभी नाश नहीं हो सकता; इसलिये पहिले जो आत्माके नाश विषयमें शङ्का हुई थी उसका कोई अवलम्बन नहीं है। जैसे

नद और नदियें समुद्रमें मिलकर अपने नाम और रूपको त्यागके सागर जलमें लीन होती हैं, वैसेही महदादि घटपट पर्य्यन्त वाह्य वस्तु रूपी सब स्थूल पदार्थ उत्पत्तिकी विपरीतताके अनुसार सूक्ष्मभूतोंमें लयको प्राप्त हुआ करते हैं, और सूक्ष्मभूत विशुद्ध कारण स्वरूपमें लीन होते हैं, इसीको सत्वसंचय कहा जाता है। इसही प्रकार देहरूप उपाधियुक्त जीव सब तरहसे आइनेके सुखकी भांति गम्यमाण होने पर और उपाधिके नष्ट होनेपर उसका किसी प्रकार भी ज्ञान नहीं होसकता, और ज्ञान न होने पर भी जैसे दर्पणके अभावसे सुखका नाश नहीं होता, वैसेही उपाधिके न रहनेपर भी आत्माके नाशकी शङ्का करनी किसी प्रकार भी सम्भावित नहीं है। जो अप्रमत्त होकर इसी प्रकार मुक्तिका उपाय अवलम्बन करके आत्मध्यानमें तत्पर होते हैं, वे जलसे भींगे हुए कमलपत्रके समान अनिष्टकारी कर्म्म फलोंसे लिप्त नहीं होते। जो अपत्य स्नेह और दैवीकर्म्म निमित्त अनेक प्रकारके दृढ़ पाशोंसे मुक्त हुए हैं, वे जिस समय सुख दुःख परित्याग करते हैं, उस समय पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दशों इन्द्रिय इन सत्तरह अवयवात्मक लिङ्ग शरीरसे रहित होते तथा मुक्त होकर परम गति पाते हैं। मनुष्य श्रुति प्रमाण "तत्त्वमसि" वाक्य और वेद शास्त्रोंमें कहे हुए मङ्गल साधन समदम आदिके सहारे जरा मृत्युके भयसे रहित होकर निवास करते हैं। पुण्य और पाप तथा मोहका कारण सुख दुःख नष्ट होनेपर आसक्ति रहित साधक लोग हृदयाकाशमें स्थित सगुण ब्रह्मको अवलम्बन करके अन्तमें निरवयव निर्लिप्त आत्माको अचिन्तामात्र बुद्धि तलसे देखते हैं। जैसे ऊर्णनाभि कीट तन्तुमय गृहमें वर्त्तमान रहके निवास करता है, वैसेही अविद्याके वशीभूत जीव कर्म्म तन्तुमय गृहमें वास किया करते हैं। जैसे पांशुपिण्ड वेगपूर्व्वक पत्थरपर गिरनेसे चूर होजाता है, उसही प्रकार जीव मुक्त होके दुःखोंको परित्याग किया करता है। जैसे रुरु नाम हरिन विशेष पुराने सींगोंको त्यागके और सर्प निज केंचुली परित्याग करके अनपेक्षित भावसे गमन करते हैं, वैसेही जीव मुक्त होकर दुःखोंको परित्याग किया करता है। जैसे जलमें गिरे हुए वृक्षको परित्याग करके पक्षी असक्त होके उड़ जाते हैं, वैसेही जीव सुख दुःखको परित्याग करते हुए लिङ्ग शरीरसे रहित और विमुक्त होकर परम गति लाभ कियाकरता है, मिथिलाधिपति जनकने सारे नगरको जलते हुए देखकर कहा था, कि इस अग्निदाहसे मेरा कुछ भी नहीं जलता है। राजा जनदेवने पञ्चशिख आचार्य्यके कहे हुए अमृत समान वचनको सुनकर सबकी पर्य्यालोचना करके अर्थ निश्चय करते हुए परम सुखी और शोकरहित होकर विहार किया था। हे महाराज! जो लोग इस मोक्ष निश्चय विषयका सदा पाठ और अर्थके अनुसार पर्य्यालोचना करते हैं वह दुःखसे रहित होते और किसी उपद्रवको अनुभव नहीं करते और जैसे जनकवंशीय जनदेव पञ्चशिख आचार्य्यके शरणागत होकर मुक्त हुए थे, इस मोक्ष निश्चय विषयकी पर्य्यालोचना करनेवाले पुरुष भी उस ही प्रकार मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होते हैं।

२१८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! इस लोकमें मनुष्य किन कर्म्मोंके करनेसे सुखलाभ करता है। किन कर्म्मोंको करनेसे दुःखभागी होता और किस प्रकारके कर्म्मोंको करते हुए सिद्ध पुरुषोंकी तरह निर्भय होकर विचरता है?

भीष्म बोले, वेददर्शी वृद्ध लोग वाह्येन्द्रिय निग्रहरूपी दमगुणकी ही प्रशंसा किया करते

है, सब वर्णों विशेष करके ब्राह्मणके पक्षमें दम गुण ही परम श्रेष्ठ है। अदान्त पुरुषोंको यथा रीतिसे क्रियासिद्धि पूर्ण नहीं होती। तपस्या और सत्य कहनेका नाम क्रिया है, वे सब क्रिया ही दमगुणमें प्रतिष्ठित होरही हैं; दमगुण तेजकी वृद्धि करता है, दमकोही पण्डित लोग पवित्र कहा करते हैं; पापरहित निर्भय दान्त पुरुष महत् सुखभोग करते हैं। दान्त पुरुष ही परम सुखसे सोते हैं, परम सुखसे जाग्रत हुआ करते हैं और अनायास ही जनसमाजमें विचरते हैं, उनका मन भी सदा प्रसन्न रहता है। दमगुणके जरिये तेज बढता है, तामस प्रकृतिवाले पुरुष उसमें अधिकार नहीं कर सकते। दान्त पुरुष काम आदि शत्रुओंको शरीरमें सदा पृथक् देखते हैं, जैसे बाघ आदि हिंसक जन्तुओंसे जीवोंको सदा भय हुआ करता है, वैसेही अदान्त पुरुषोंसे मनुष्योंको सदा ही भय होता है। उन अदान्तोंको शासन करनेके लिये विधाताने राजाको उत्पन्न किया है। सब आश्रमोंके बीच दमगुण ही श्रेष्ठ है, सब आश्रमोंमें धर्म्मोपार्ज्जनसे जो फल हुआ करता है, दान्त पुरुषोंमें उससे भी अधिक फल दीखता है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। अब जिसे दम कहते हैं, उसका स्वरूप कहता हूं।

अदीनता, अभिनिवेश, सन्तोष, सर्द्धानता, अक्रोध, सरलता, सदा अलौकिक अर्थ कहना, राज आदिकी वार्त्ता कहनी, गुरुपूजा, अनसूया सब भूतोंमें दया और अखलता, लोकापवाद, मिथ्या वचन तथा स्तुति निन्दाका परित्याग ही दमगुणका लक्षण है। जो मोक्षार्थी होकर सुख दुःख आदिके अनुभव विषयमें उत्तर कालमें स्पृहा नहीं करते, जो वैर करनेवाले नहीं हैं और शठतारहित होकर समादर किया करते हैं; निन्दा और प्रशंसामें जिन्हें समज्ञान है वे सच्चरित्र, सदाचार युक्त, प्रसन्नचित्त बुद्धिमान् मनुष्य इस लोकमें सत्कार लाभ करके अन्तकालमें स्वर्गमें जाते हैं और सर्व्वभूतोंसे दुर्लभ अन्नादि लाभ करते हुए सुखी और आनन्दित होते हैं। जो सब भूतोंके हितकर विषयमें रत होकर किसीसे भी द्वेष नहीं करते, महाह्रदकी भांति अक्षोभ्य वे प्रज्ञातृप्त मनुष्य प्रसन्न होते हैं। सब प्राणियोंसे जिसे भय नहीं है और जिससे सब भूतोंको भी भयकी सम्भावना नहीं रहती वेही बुद्धिमान् दान्त पुरुष सब प्राणियोंके नमस्य होते हैं। जो बहुतसे धन पानेपर भी हर्षित नहीं होते और विपद उपस्थित होनेपर भी शोक नहीं करते, उन्हीं परिमित प्राज्ञ दान्त पुरुषोंको ब्राह्मण कहा जाता है। जो शास्त्र ज्ञानसे युक्त होकर भी कर्म्मानुष्ठान करते हैं, साधुओंके आचरित पथमें निवास करते हुए पवित्र हुआ करते हैं, और सदाही बाह्यइन्द्रिय निग्रहमें रत रहते हैं, उन्हें महत् फलका भोग प्राप्त होता है। अनसूया क्षमा, शान्ति, सन्तोष, प्रियवादिता, सत्य, दान और अनायस दुरात्माओंकी पदवी नहीं है। काम, क्रोध, लोभ, दूसरेके विषयमें ईर्षा और अपनी बड़ाई करनीही दुरात्माओंकी स्पृहणीय है। ब्रह्मचारी मनुष्य काम और क्रोधको वशमें करके जितेन्द्रिय होवें। संशितव्रती ब्राह्मण घोर तपस्याचरण रूपी विक्रम प्रकाश करके कालकी आकांक्षा करते हुए अपाय विरहित और सन्तोष युक्त होकर सब लोकोंमें विचरण किया करते हैं।

२२० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यज्ञदीक्षित और मन्त्रदीक्षित ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग देवताओंको बलिसे बचे हुए भक्षणीय मांस और मद्य आदिको जो स्वर्ग वा पुत्रादिकी कामनासे भक्षण किया करते हैं, वह उचित है, वा नहीं?

भीष्म बोले, हे धर्मराज ! जो लोग वेदविहित व्रताचरण न करके अभक्ष्य मांस आदि भोजन करते हैं, वे इस लोकमेंही पतित होते हैं, और जो लोग दीक्षा लेके फलानुरागी होकर वैध मांस आदि भक्षण करते हैं, वे यज्ञ आदिसे स्वर्ग फल भोग करके भोगके समाप्त होनेपर पतित हुआ करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! साधारण लोग जो देह पीड़ाकर उपवासको तपस्या कहा करते हैं, क्या यही तपस्या है, अथवा दूसरे प्रकारकी कोई तपस्या है ?

भीष्म बोले, साधारण लोग जो ऐसा समझते हैं, कि एक महीना वा एक पक्ष उपवास करनेसे तपस्या होती है, आत्मविद्याकी विघ्न स्वरूप वह तपस्या साधुसम्मत नहीं है। भूत भयङ्कर कर्म्म सन्न्यास और भूताराधनही श्रेष्ठ तपस्या है, जो लोग इसी प्रकार तपस्या किया करते हैं, परिवार समूहके सहित सदा वर्त्तमान रहने पर भी उन्हें उपवासी और ब्रह्मचारी कहा जाता है। हे भारत ! कुटुम्बयुक्त ब्राह्मण धर्म्मकाम होने पर सदा मुनि वा देव तुल्य हो सकते हैं, और वे स्वप्न रहित अमांसाशी सदा पवित्र अमृताशी, देवता और अतिथियोंकी पूजा करनेवाले, विघसाशी, अतिथिव्रती, श्रद्धावान् और सदा देवताकीभांति अतिथि पूजक होते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! ब्राह्मण किस प्रकार सदा उपवासी होते हैं, किस प्रकार ब्रह्मचारी हो सकते हैं, किस प्रकार भोजन करनेसे विघसाशी होते हैं ?

भीष्म बोले, दिन और रात्रिकालमें भोजनके विहित समयमें भोजनसे भिन्न जो लोग भोजन नहीं करते वेही सदा उपवासी होते हैं ; जो ब्राह्मण केवल ऋतुकालमेंही भार्य्यासङ्ग करते हैं, उन्हेंही ब्रह्मचारी कहा जाता है ; जो सदा ध्यानमें रत रहते वेही सत्यवादी होते हैं। देवता और पितरोंके भोगसे बचे हुए मांसके अतिरिक्त जो वृथा मांस भक्षण नहीं करते, उन्हें अमांसाशी कहा जाता है। जो सदा दानमें रत रहते, वेही पवित्र होते हैं ; जो दिनमें नहीं सोते ; उन्हें अस्वप्न कहा जाता है। हे धर्म्मराज ! प्रतिदिन सेवकों और अतिथियोंके भोजन करनेके अनन्तर जो लोग भोजन करते हैं, उन्हेंही केवल अमृताशी जानो। अतिथि आदिके भूखे रहनेपर सदा जो भूखे रहते हैं, उनका उसही अनशन व्रतसे स्वर्गलोक जय होता है। देवता, पितर, अतिथि और सेवकोंसे बचे हुए अन्नको जो लोग भोजन करते हैं। उन्हेंही पण्डित लोग विघसाशी कहा करते हैं। इन सब ब्राह्मणोंके शुभ लोकोंकी सीमा नहीं है, इनके गृहमें ब्रह्मा और अप्सराओंके सहित देवता लोग उपस्थित हुआ करते हैं। जो देवताओं और पितरोंके सहित अन्नादि उपभोग करते हैं, वे पुत्र पौत्रोंके सहित आनन्दित होते हैं और उन लोगोंको सबसे श्रेष्ठ उत्तम गति हुआ करती है।

२२१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम पितामह ! इसलोकमें शुभ वा अशुभ कर्म्म जो कि अवश्यही पुरुषोंको फलभागी करते हैं, पुरुष उन शुभाशुभ कर्म्मोंका कर्त्ता होता है, वा नहीं ; उस विषयमें मुझे सन्देह है, इसलिये आपके समीप इस विषयको यथार्थरूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज ! इस विषयमें प्राचीन लोग प्रह्लाद और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। किसी समय फलकी अभिलाषासे रहित पापहीन, बहुशास्त्रदर्शी, निरालसी, निरहङ्कारी, सत्त्वगुणावलम्बी, निज योग्य शम दम आदि गुणोंमें अनुरक्त स्तुति निन्दामें तुल्यबुद्धि दान्त, सूने

गृहमें बैठे हुए जिन्होंने स्थावर जङ्गम सब जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण परमात्माको जाना है ; जो अप्रिय विषयसे क्रुद्ध और प्रिय विषयलाभमें हर्षित नहीं होते, सुवर्ण और मट्टीके ढेलेमें जिसकी समदृष्टि है, जिन्होंने आनन्दरूप चिन्मात्र आत्मविषयका कुतकनमि- भूत होकर निश्चय किया है और जीवोंके बीच श्रेष्ठ हिरण्यगर्भ अपकृष्ट कीट आदि पर्यन्त जाना है ; जो सर्वज्ञ समदर्शी और संयतेन्द्रिय हैं, उस एकान्तमें बैठे हुए प्रह्लादके समीप इन्द्र उपस्थित होके उनके बुद्धिकी परीक्षा करनेको इच्छासे यह वचन बोले, हे प्रह्लाद। इस लोकमें जिन गुणोंके रहनेसे लोगोंके बीच पुरुष सबसे ही सम्मत होता है, वे सब स्थिर गुण तुममें दीखते हैं और तुम्हारी बुद्धि बालककी भांति राग द्वेषसे रहित दीख पड़ती है। तुम आत्माको मनन करते हुए आत्मज्ञानका श्रेष्ठ साधन क्या समझते हो ? हे प्रह्लाद ! तुम पाशबद्ध स्थानच्युत और श्रीहीन होने पर भी शोचनीय विषयमें शोक नहीं करते हो। हे दैत्यवंशप्रसूत प्रह्लाद। तुम बुद्धिलाभ वा सन्तोषसेही अपनी विपद देखकर भी स्वस्थचित्त हो रहे हो, निश्चितबुद्धि धैर्य्यशाली प्रह्लाद देवराजका ऐसा वचन सुनके निज प्रज्ञा वर्णन करते हुए मनोहर वचनसे कहने लगे।

प्रह्लाद बोले, जो जीवोंको प्रवृत्ति और निवृत्ति गतिको नहीं जानते अर्थात् पुरुषोंके भोग और अपवर्ग साधनके निमित्त अनुलोम प्रतिलोम परिणामवती मूलप्रकृतिमें जिन्हें आत्म भिन्न ज्ञान नहीं है, आत्मामें बुद्धि धर्म्म कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व आदि आरोपित करनेवाले उन पुरुषोंकी बुद्धि मूढ़ताके कारण स्तम्भित होती है, और जिसे जीव ब्रह्ममें ऐक्य ज्ञान है ; उसकी बुद्धि स्तब्ध नहीं होती। भाव और अभाव सब पदार्थोंमें स्वभावसेही प्रवृत्त और निवृत्त होता है अर्थात् जैसे बछड़ा उत्पन्न होनेके पहलेही गौओंके रुधिरपूरित स्तनमें दूध उत्पन्न होता है, उस समय उसके प्रवर्त्तक वात्सल्य न रहने पर भी जैसे स्वाभाविक क्षीरोत्पत्ति होती है, वैसे ही सब पदार्थ स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं, उनमें प्रवर्त्तककी अपेक्षा नहीं है ; इसलिये पुरुषार्थका भी प्रयोजन नहीं है। यदि पुरुषार्थ अथवा भोग और अपवर्ग न रहे, तब कोई जगत्कर्त्ताकी आवश्यकता नहीं होती है ; इसलिये आत्मा यदि अकर्त्ता हो, तो इस शरीरमें "मैं" यह अभिमान अविद्यासे स्वयं उत्पन्न हो सकता है। जो पुरुष साधु वा असाधु, होते आत्माको कर्त्ता समझे मुझे बोध होता है, उसकी दोषवती बुद्धि तत्त्वपथको नहीं जान सकती। हे देवेश ! यदि पुरुषही कर्त्ता हो, तो उसके आत्म कल्याणके निमित्त अवश्यही सब कार्य्य सिद्ध हों, और पुरुष कदापि पराभूत न होवे। जब कि हितके वास्ते यत्नवान् मनुष्योंको अनिष्ट सिद्ध और अर्थनिरोध दीखता है, तब किस लिये पुरुषार्थ स्वीकार किया जा सकता है। अदृष्टकी अनुकूलता न रहने पर यदि कार्य्यमें व्याघात हो, तब आत्महितमें यत्नवान् मनुष्योंके अनिष्ट अदृष्टकी उत्पत्ति युक्तिसङ्गत नहीं है, क्योंकि भोक्ताके समान नियत कर्त्ता न रहने पर भोक्ता भी नहीं रहता। ईश्वर और काल स्वभावकाही नामान्तर है, क्योंकि कोई कोई पुरुषके प्रयत्न न रहने पर भी स्वाभाविक अनिष्ट सिद्धि और इष्ट तिरोधान होते दीख पड़ता है। कोई कोई केवल स्वरूप बनाके कोई कोई अत्यन्त बुद्धियुक्त होकर अल्पबुद्धि कुरूप लोगोंसे धनागम लाभकी इच्छा करते हुए दिखाई देते हैं। जब कि सुख दुःख आदि सब शुभाशुभ गुण स्वभाव प्रेरित होकर पुरुषोंमें निविष्ट होते हैं, तब मैं सुखी हूं, मैं कर्त्ता हूं, मैं भोक्ता हूं, इत्यादि अभिमानके कारण कुछ भी नहीं हैं। सुख दुःख आदि सब विषय

स्वाभाविक हुआ करते हैं, ऐसा मेरे मनमें निश्चय है और क्या कहूं, मेरे मतमें युक्ति और आत्मज्ञान स्वभावसे स्वतन्त्र नहीं है इस लोकमें कर्म्म जनित शुभाशुभ फल भोग प्राप्त हुआ करता है, इसे सब कोई स्वीकार करते हैं, इसलिये अब मैं सब कर्म्मोंका विशेष विवरण कहता हूं सुनो। जैसे अन्न भोजी वायस उसे प्रकाश करना जानता है, वैसेही सब कर्म्म स्वभावकेही असाधारण धर्म्म हैं, अर्थात् सब कर्म्मही स्वभावको प्रकाश करते हैं। जैसे तागे पाटके कारण होनेसे तन्तुनिष्ठ शुक्लादि गुण पटगत विचित्रतामें कारण होते हैं, वैसेही स्वभावही जन्मादि मात्रका हेतु है। जो पुरुष धर्म्माधर्म्म आदि सब विकारोंको जानते हैं, और त्रिगुणमयी प्रकृतिसे श्रेष्ठ उपादान प्रकृति अर्थात् ब्रह्मको नहीं जानते, उन कर्म्म और प्रकृतिके भेददर्शी पुरुषोंमें मूढ़तासे जड़ता हुआ करती है, और जो दोनोंकी ऐक्यता अवलोकन करते हैं, उनमें जड़ता नहीं होती स्वभावसे उत्पन्न हुए सब पदार्थोंको जिन्होंने निश्चय रूपसे जाना है दर्प वा अभिमान उनका क्या करेगा। हे देवराज! मैं सब धर्म्म, विधि और सब भूतोंकी अनित्यता विशेष रूपसे जानता हूं, सब वस्तुही अनित्य हैं, इसही निमित्त शोक नहीं करता। मैं ममता हीन, निरहङ्कार, वासना रहित, बन्धनसे मुक्त, स्वरूप और देह आदिमें अनभिमानके कारण स्वरूपसे अप्रच्युत होकर जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण परब्रह्मको अवलोकन करता हूं। हे शक्र! जो लोग शुद्धबुद्धि जितेन्द्रिय, परितृप्त और वासना रहित होकर आत्मविद्याके सहारे सब विषयोंको देखते हैं, उन्हें कुछ क्लेश नहीं है। विश्वकर्त्री प्रकृति वा धर्म्माधर्म्मके फल सुख दुःखमें मुझे प्रीति वा द्वेष नहीं है; मैं इस समय किसीको भी द्वेष्टा नहीं देखता हूं और पुत्र, मित्र आदिकी भांति ममता करनेवाले किसी पुरुषको भी अवलोकन नहीं करता हूं। हे इन्द्र! मैं कभी स्वर्ग पाताल अथवा मर्त्त्यलोकको कामना नहीं करता। ऐसा नहीं कह सकते, ज्ञानके विषय विज्ञान अर्थात् बुद्धि तत्त्वमें और आत्मा स्वरूप चिदात्मामें कुछ सुख नहीं है, आत्मा धर्म्माधर्म्म और उसके फल सुख दुःखका आश्रय नहीं है, इसही लिये मैं कुछ कामना नहीं करता, केवल ज्ञानसे तृप्त होकर निवास करता हूं।

इन्द्र बोले, हे प्रह्लाद! मैं पूछता हूं, कि जिस उपायसे ऐसा ज्ञान और शान्ति लाभ हो उसे तुम यथार्थ रीतिसे मेरे समीप वर्णन करो।

प्रह्लाद बोले, हे सुरराज! सरलता, सावधानता, प्रसन्नता, जितेन्द्रियता और वृद्धोंकी सेवासे पुरुष मोक्ष लाभ करनेमें समर्थ होता है। पुरुष स्वभावसेही ज्ञान लाभ करता है, और स्वभावसेही शान्ति प्राप्त होती है; आप जो कुछ देखते हैं, वे सब स्वभाविकही सिद्ध होते हैं। हे महाराज! दैत्यपति प्रह्लादने जब ऐसा कहा, तब त्रिलोकेश्वर देवराज विस्मययुक्त हुए और उस समय वह प्रसन्न होकर प्रह्लादके वचनका समादर करके उनका सत्कार और आमन्त्रण करके निज स्थानपर चले गये।

२२२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! राजा जैसी बुद्धिके सहारे विपदग्रस्त और श्रीभ्रष्ट होकर महीमण्डलमें विचरते हैं; आप मेरे समीप उस विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें विरोचनपुत्र बलि और देवराज इन्द्रके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासकी कथा कहते हैं। देवराज इन्द्रने सब असुरोंको जीतके सर्व्व लोक पितामह ब्रह्माके पास जाके प्रणाम करनेके अनन्तर हाथ जोड़के बलिका विषय पूछा।

इन्द्र बोले, हे ब्रह्मन्! सदा धन दान करनेपर भी जिसका धन कभी नहीं घटता, मैं उस बलिको नहीं जानता; इसलिये आप उस बलिका विषय वर्णन करिये। वह बलिही वायु, बलिही वरुण, बलिही सूर्य्य, बलिही चन्द्रमा और बलिही अग्नि होकर सब जीवोंको ताप देता है, तथा वह बलिही जल स्वरूप हुआ करता है, मैं उस बलिको नहीं जानता। हे ब्रह्मन्! इसलिये आप मेरे समीप उस बलिका विषय वर्णन करिये। वह बलिही अस्तमय होता है, बलिही सब दिशाओंको प्रकाशित करता है, बलिही अतन्द्रित होकर यथाकालमें जलकी वर्षा किया करता है। हे ब्रह्मन्! मैं उस बलिको नहीं जानता इसलिये आप मेरे समीप उसका विषय वर्णन करिये।

ब्रह्मा बोले, हे इन्द्र! तुम जो बलिका विषय पूछते हो, वह तुम्हारे पक्षमें कल्याणकारी नहीं है, तब पूछनेपर झूठ न कहना चाहिये, इसही लिये मैं तुम्हारे निकट बलिका विषय वर्णन करता हूं। हे शचीश्वर! ऊंट, बैल, गधे और घोड़ोंमेंसे कोई एक रूपधरके सूने स्थानमें जा वरिष्ठ होकर वास करे, वही बलि है।

इन्द्र बोले, हे ब्रह्मन्! यदि मैं सूने स्थानमें बलिके साथ मिलूं, तो उसे मारूंगा, वा नहीं? उस विषयमें आप मुझे आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, हे इन्द्र! तुम बलिकी हिंसा न करना, बलि बध्य नहीं है। हे देवराज! तुम इच्छानुसार बलिके निकट नीति पूछना।

भीष्म बोले, जब भगवान् ब्रह्माने महेन्द्रसे ऐसा कहा, तब वह उसही समय ऐरावतपर चढ़के शोभायुक्त होकर पृथ्वीमण्डलपर विचरने लगे, अनन्तर भगवान् पितामहने जिस प्रकार कहा था, उसके अनुसार ही उन्होंने सूने स्थानमें स्थित खर वेषधारी बलिको अवलोकन किया। इन्द्र उसे देखकर बोले, हे दानव! तुम खरयोनिमें प्राप्त होकर तुष भक्षण कर रहे हो, इस अधम योनिमें प्राप्त होनेसे तुम्हें दुःख होता है, वा नहीं? मैं देखता हूं, तुम्हारा अदृष्ट शत्रुओंके वशीभूत, श्रीहीन, मित्ररहित, भ्रष्टवीर्य्य और नष्ट पराक्रम हुआ है। तुम जो स्वजनोंमें घिरकर सब लोकोंको परितापित करते हुए हम लोगोंको अग्राह्य करके सहस्रों भांतिके यानोंके जरिये गमन करते थे दैत्यलोग तुम्हारे सुखापेक्षी होकर तुम्हारे ही शासनमें निवास करते थे पृथ्वीमें तुम्हारे ही ऐश्वर्यसे बिना जोते ही शस्य उत्पन्न होते थे, अब तुम समुद्रके पूरब किनारे बिलमें वास करते हो इससे तुम्हें जो दुःख होता है, उसके लिये तुम शोक करते हो, वा नहीं? पहिले जब तुम स्वजनोंको धन बांटके देते थे, उस समय तुम्हारा मन कैसा हुआ था। अनेक वर्ष पर्य्यन्त, श्रीयुक्त रहके जब तुम विहार करते थे, उस समय पद्माकर मालिनी सुवर्णके समान रूपवाली सहस्रों सुरकामिनी तुम्हारे समीप उपस्थित होकर नृत्य करती थीं। हे दानवेश्वर! तुम्हारा मन उस समयमें कैसा था और इस समयमें ही किस प्रकार है? पहिले तुम्हारा महारत्नोंसे भूषित सुवर्णमय छत्र था, उस समय तुम्हारे समीप छः हजार गन्धर्व सात प्रकार नृत्य करते थे। तुमने जब यज्ञ किये थे उस समय तुम्हारे सब यज्ञयूप सुवर्णमय थे; जिस यज्ञमें तुमने पहिले दश अयुत अनन्तर दश हजार और उसके बाद सहस्र गोदान किया था, हे दैत्यराज! उस समय तुम्हारी बुद्धि किस प्रकार थी। जब तुमने यज्ञ करनेमें रत होकर सब पृथ्वी मण्डलको यज्ञकार्य्यमें अपर्य्याप्त समझके उसे परित्याग करके गमन किया था; उस समय तुम्हारे अन्तःकरणमें कैसे भाव उदय हुए थे? हे असुरेश्वर! अब तुम्हारे सुवर्णमय जलपात्र, छत्र और दोनों चमर नहीं दीखते हैं तथा ब्रह्माने तुम्हें जो माला प्रदान की थी, उसे भी नहीं देखता हूं।

बलि बोले, हे इन्द्र ! तुम मेरे छत्र, चमर और सुवर्णमय अलङ्कार नहीं देखते हो; मेरे सब रत्न मूलप्रकृतिके बीच अन्तर्हित होरहे हैं, इसहीसे तुम उस विषयको पूछते हो ; जब मेरा समय होगा, तब तुम मेरे उन रत्नोंको देखोगे। इस समय तुम समृद्धियुक्त और मैं असमृद्ध हूं, इसलिये तुम जो मेरे समीप बड़ाई करते हो, वह तुम्हारी कीर्त्ति और कुलके अनुरूप नहीं है। बुद्धिमान, ज्ञानतृप्त, क्षमाशील, साधु मनीषिपुरुष दुःखके समय शोक नहीं करते और समृद्धिकालमें भी हर्षित नहीं होते। हे पुरन्दर ! तुम तुच्छबुद्धिके कारण ऐसा वचन कहते हो। जब तुम मेरे समान होगे, तब ऐसा न कह सकोगे।

२२३ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे भरतकुल प्रदीप ! बलि जब प्रत्युत्तर देनेके लिये सर्पकी तरह गर्जने लगा, तब देवराज हंसके फिर उससे यह वचन बोले।

इन्द्र बोले, हे बलिराज ! तुम जो स्वजनोंके बीच घिरके सब लोकोंको परितापित और हम लोगोंकी अवज्ञा करते हुए सहस्र प्रकारके यानोंसे गमन करते थे, इस समय उन स्वजनोंसे और मित्रोंसे परित्यक्त होकर अपनी यह अत्यन्त दीनदशा देखकर शोक करते हो, वा नहीं ? पहले अतुलप्रीति लाभ करके तथा सब लोकोंको अपने वशमें रखके इस समय यह बाह्य विनिपात लाभ करके दुःखित होते हो, वा नहीं ?

बलि बोले, हे देवराज ! इस जगत्में कालक्रमसे सब वस्तु अनित्य होती हैं, उसे देखकर मैं किसी विषयमें शोक नहीं करता ; क्यों कि जगत्में जो कुछ है, वह सभी विनश्वर है। हे सुरराज ! जीवोंके इन सब शरीरोंका अन्त होगा, इसहीसे मैं किसी विषयमें शोक नहीं करता ; मैं यह नहीं कहता, कि मेरी यह दशा मेरे अपराधसे ही हुई है। जीवन और शरीर एक ही समयमें उत्पन्न होते हैं, दोनों एकत्र बढ़ित और एकत्र ही विनष्ट हुआ करते हैं। मैं ऐसा शरीर पाके केवल अवश हुआ हूं, सो मत समझो ; मैं इस विषयके तत्वोंको जानता हूं और जाननेसे ही मुझे किसी विषयमें क्लेश नहीं है। जैसे प्रवाह समुद्रमें जाके लीन होता है, वैसे ही जीवोंकी मृत्यु होनेसे ही निष्पत्ति हुई। हे वज्रधर ! जो लोग इसे पूरी रीतिसे जानते हैं, वे सब मनुष्य शोक नहीं करते और जो लोग रजोगुणसे ग्रस्त और मोहयुक्त होकर इस विषयमें मूर्ख रहते हैं, और जिनकी बुद्धि नष्ट होजाती है वेही कृच्छ्रताको प्राप्त होके दुःखित हुआ करते हैं। मनुष्य ज्ञानलाभसेही सब पापोंको खण्डन करता है। पापरहित मनुष्य सतोगुण लाभ किया करता है सतोगुण अवलम्बन करनेवाले मनुष्य पूर्णरूपसे प्रसन्न होते हैं। जो लोग सतोगुणसे निवृत्त होते हैं, वे बार बार जन्म ग्रहण किया करते हैं, और काम आदिके वशमें होकर जन्म जरा प्रभृति विविध दुःखोंको भोगते हुए दीन भावसे परिताप करते हैं। मैं कामादि विषय सिद्धि, अनर्थ, जीवन, मरण, सुख और दुःखके फलमें द्वेष और कामना नहीं करता। निर्जीव शरीरकाही नाश होता है, जीवका कदापि नाश नहीं होता। जो मनुष्य जिस किसी जीवको बध करता है, वह अर्थात् "मैं हन्ता हूं," ऐसा अभिमानी पुरुष भी मरता है, जो मारता है, और जो मरता है, वे दोनोंही कौन कर्त्ता हैं, उसे नहीं जानते। हे इन्द्र ! मारके वा जय करके जो कोई पुरुष पुरुषत्व प्रकाशित करता है, वास्तवमें वह कर्त्ता नहीं है, जो कर्त्ता है, वही उस कार्य्यको किया करता है। जीवोंकी उत्पत्ति और नाशका कर्त्ता कौन है, ऐसा संशय उपस्थित होनेपर

उस समय यह बोध होता है, कि उत्पत्तियुक्त मनही उसे सिद्ध करता है; परन्तु मनका भी दूसरा कर्त्ता है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि ये पांचो जीवोंकी उत्पत्तिके विषयमें कारण हैं; इसलिये उस विषयमें शोक करनेकी क्या आवश्यकता है। चाहे मनुष्य विविध विद्यासे युक्त हो, अथवा अविद्वान् ही हो; बलवान् ही वा निर्ब्बल ही होवे; सुन्दर हो, वा कुरूपही हो; सुभग हो अथवा दुर्भगही होवे, अत्यन्त गम्भीर काल निज तेजके सहारे सबकोही संग्रह कर रहा है, जब कि जानता हूं, किसीभी कालके वशीभूत होते हैं. तब मुझे किसी विषयमें दुःख नहीं है। जब काल स्वरूप ईश्वर पहले जलाता है, तब अग्नि पीछे भस्म करती है; ईश्वरके जरिये मृत शरीरको मनुष्य पीछे नष्ट किया करता है। ईश्वर जिसे पहले नष्ट करता है, वही पीछे नष्ट होता है, ईश्वर जो दान करता है. मनुष्य उसही प्राप्त होनेवाले विषयको पाता है; इस पुण्य पापसे रहित कालरूपी विधाताका पार नहीं है, इससे परम्पार भी दृष्टिगोचर नहीं होता; मैं चिन्ता करनेपरभी कालका अन्त नहीं देखता, हे शचिपति! मेरे प्रत्यक्षमें यदि काल सब भूतोंका नाश न करता, तो अवश्यही मुझे हर्ष, दर्प और क्रोध हो सकता। मैं गर्द्दभरूप धरके निर्ज्जन स्थानमें तृष भक्षण करता हूं, उसे जानके तुम आके मेरी निन्दा करते हो; परन्तु जिन सब भयानक रूपोंको देखकर तुम भी भागनेका मार्ग देखने लगते हो, मैं इच्छा करनेसे अनायासही वैसे अनेक प्रकारके भयङ्कररूप धारण कर सकता हूं। हे शक्र! कालही सबका संहार करता है, कालही सब प्रदान करता है, सभी कालका विधान है; इसलिये तुम पौरुष प्रकाश मत करो। हे पुरन्दर! जब मैं पहले क्रुद्ध हुआ था, उस समय चराचर समस्त लोक व्यथित हुए थे; हे शक्र! इससे मैंने इस जगत्को ह्रास वृद्धि रूप सनातन धर्म्मको विशेष रूपसे जाना है; तुम इसे जाननेसे स्वयंही विस्मययुक्त होगे ऐश्वर्य्य और ऐश्वर्य्यका आविष्कार करना अपने अधीन नहीं है।

हे मघवन्! कौमार अवस्थामें तुम्हारा चित्त जैसा था, इस समय भी वैसा ही है, उसे देखकर तुम नैष्ठिक बुद्धि लाभ करो। हे वासव! तुम सब जानतेही हो, कि देव मनुष्य पितर, गन्धर्व्व, राक्षस, और सर्प भी मेरे वशमें थे। "वैरोचन बलि जिस दिशामें है, उस दिशाकोही नमस्कार है," बुद्धि, मत्सरतासे मोहित मनुष्य मुझे ऐसाही समझते थे। हे शचिपति! इस समय मैं उसके लिये वा आत्मभ्रंशके निमित्त शोक नहीं करता; मेरी बुद्धिमें यही निश्चय हुआ है कि मैं ईश्वरके वशमें निवास करता हूं। हे शक्र! जब देखता हूं, सत्कुलमें उत्पन्न हुए सुन्दर रूपवाले प्रतापवान् मनुष्य दुःखसे जीवन बिता रहे हैं, तब कहना पड़ेगा, कि उनका भवितव्य वैसाही है और नीचवंशमें उत्पन्न हुए अत्यन्त मूढ़ अशुभजन्मा मनुष्य कुटुम्बके सहित परम सुखसे जीवनयात्राका निर्व्वाह कर रहे हैं, उनकीभी होतव्यता वैसी ही है। हे वासव! देखा जाता है, उत्तम लक्षणवाली सुन्दरतायुक्त स्त्रियां दुर्भगा होती हैं और कुलक्षणोंसे युक्त कुरूपवाली स्त्री भी सुभगा होती हैं। हे वज्रधर! तुम इस प्रकार समृद्धियुक्त होरहे हो और मैं ऐसी अवस्थामें पड़ा हूं, यह तुम्हारा भी कृत नहीं है, और मेरा भी कृत नहीं है। हे देवराज! तुमने ऐसी समृद्धिके लिये कोई कर्म्म नहीं किये और मैंने भी ऐसी अवस्थाके निमित्त कोई कर्म्म नहीं किया है, समृद्धि वा असमृद्धि कालक्रमसे हुआ करती है। तुम श्रीमान् द्युतिमान और देवराज होकर विराजते हुए मेरे विषयमें गर्ज्ज रहे हो परन्तु काल मुझे यदि आक्रमण न

किये होता और मैं इस प्रकार गधेका रूप धारण न किये होता, तो इसही समय मुष्टिक प्रहारसे तुम्हें वज्रके सहित गिरा सकता। जो हो, यह विक्रम प्रकाश करनेका समय नहीं है, शान्ति काल उपस्थित हुआ है; कालही सबको स्थापित करता है, कालही सबको पकाया करता है। मैंने दानवोंका राजा और पूजनीय होकर सबके विषयमें तर्ज्जन गर्ज्जन और प्रताप प्रकाश किया था; काल यदि मेरे निकट न आवेगा, तो और किसके समीप जायगा।

हे देवराज मैंने अकेलेही तुम्हारे महानुभाव द्वादश आदित्योंके तेजको धारण किया था, मैंनेही मेघ रूप धरके जलकी वर्षा करता था, मैंही सूर्य्यरूप धरके तीनों लोकोंको सन्तापित और विद्योतित करता था, मैंही तीनों लोकोंकी रक्षा करता था, और इच्छा करनेसेही नष्ट कर सकता था, मैंही दान और प्रदान करता था, मैंही सबको स्थिर और नियमित करता था; तीनों लोकोंके बीच मैंही सबके निग्रहानुग्रहमें समर्थ शासनकर्त्ता था। हे देवराज! इस समय मेरा वह सब प्रभुत्व निवृत्त हुआ है, मैं काल सैन्यसे आक्रान्त हुआ हूं, इसलिये वह सब मुझे अब मालूम नहीं होता है। हे शचिपति! मैं कर्त्ता नहीं हूं, और तुम भी कर्त्ता नहीं हो तथा दूसरे कोई भी कर्त्ता नहीं हैं। सब लोक स्वभावसेही कालक्रमसे पालित और संहृत होरहे हैं। मास और पक्षही जिसके अधिष्ठान जो अहोरात्रिके जरिये सब तरहसे परिपूरित होरहा है, बसन्त आदि ऋतुओंमें ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके सहारे जिसे जाना जाता है, वही एकमात्र निर्व्विषय ध्यानगम्य कालको वेद जाननेवाले पुरुष ब्रह्म कहा करते हैं। कोई कोई अद्वितीय अवलम्बन करके इस समस्त कालात्मक जगत्को ब्रह्मरूपसे विचारनेकी कहते हैं। इस चिन्ताके पांच विषय हैं; अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय कोश, ये प्रत्येक वाम वा दक्षिण पार्श्व, शिर, मध्य देश और पश्चाद्भाग इन पञ्च-अवयव विशिष्ट हैं, ऐसा श्रुतिसे जाना जाता है। पण्डित लोग कहा करते हैं, पारावार रहित समुद्रके समान ब्रह्म अत्यन्त गम्भीर वा अगम अर्थात् तर्कसे अगम्य है, और शास्त्रके अनुसार मालूम होनेपर भी अत्यन्त दुःखसे उसमें प्रवेश किया जाता है। उसका न आदि है, न अन्त है; वह जीव रूपसे अक्षर अर्थात् निर्व्विशेष वस्तु है, और जैसे शुक्ति स्वयं रजत रूपसे जन्म नाश रहित हुआ करती है, वैसेही जन्म नाशसे रहित होके भी जगत् रूपसे क्षर अर्थात् विनश्वर है। वह स्वयं उपाधिरहित है, परन्तु बुद्धि तलमें प्रवेश करके सोपाधिक होता है, तत्त्वदर्शी लोग उसे उपाधि धर्म्म स्पर्श रहित समझते हैं और चैतन्य रूपसे परिणत पञ्चमहाभूत सम्बन्धीय सत्, चित्, आनन्द और अनन्तके विपरीत धर्म्म, अनृत, जड़, दुःख और परिच्छिन्नाख्य दुर्गमल भगवान् वा अविद्याके जरिये आत्मामें समझा करते हैं; परन्तु ये अविद्यासे प्रकाशित दुःख आदि आत्माके गम्य नहीं हैं। ब्रह्मा, रुद्र अथवा विष्णु आदि अन्य कोई भी जिसका प्रभु नहीं है वही आत्माका स्वरूप है, इससे आत्मासे बढ़के दूसरा अधिपति कोई भी नहीं है।

हे इन्द्र! सब भूतोंकी जो गति होती है, उसे प्राप्त न करके तुम कहां जाओगे? भागनेपर भी उसे परित्याग नहीं किया जा सकता और स्थित रहनेपर भी वह परित्यक्त नहीं होती। इन्द्रियें इस आत्माको देखनेमें समर्थ नहीं हैं; कोई इस आत्माको अग्नि कहा करते हैं, कर्म्मपरायण मनुष्य इस आत्माको सर्व्वकर्म्म समर्पणीय प्रजापति समझते हैं। आत्माके एक होनेपर भी लोग उसे ऋतु, महीना, पक्ष,

दिवस, क्षण, पूर्व्वान्ह, अपरान्ह, मध्यान्ह और मुहूर्त्तादि भेदसे अनेक प्रकार कहा करते हैं। हे देवराज! यह स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् जिसके वशमें है, उसे ही कालरूपसे मालूम करो।

हे शचिपति! तुम्हारे समान बलवीर्य्यसे युक्त कई हजार इन्द्र गुजर गये, तुम प्रबल बलदर्पित देवताओंके राजा हुए हो; परन्तु समय उपस्थित होनेपर महाबलवान् काल तुम्हें शान्तिके स्थानमें भेजेगा। हे शक्र! जो काल इन सबका संहार कर रहा है, तुम उसका भय करके स्थिर रहो, मैं अथवा तुम तथा पूर्व्व पुरुषोंमेंसे कोई भी कालको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं है। यह जो तुम उत्तम राजश्री लाभ करके "राजश्री मुझमेंही है," ऐसा समझ रहे हो, वह मिथ्या है, क्यों कि यह राजलक्ष्मी एक स्थानमें निवास नहीं करती। हे देवराज! यह चपला राजलक्ष्मी तुमसे भी श्रेष्ठ हजारों इन्द्रके निकट और मेरे समीप निवास करती थी, अब मुझे छोड़के तुम्हें अवलम्बन किया है, हे देवेश! इससे तुम फिर ऐसा अहङ्कार मत करना, तुम्हें अवश्य शान्त होना चाहिये। चपला राजलक्ष्मी तुम्हें भी इसही प्रकार अहङ्कारी जानके शीघ्रही दूसरेके निकट गमन करेगी।

२२४ अध्याय समाप्त।

अनन्तर देवराजने उस समय महात्मा बलिके शरीरसे साक्षात् लक्ष्मीको निकलती हुई देखा। भगवान् पाकशासन इन्द्र विस्मयोत्फुल्ल नेत्रसे उस प्रभापुञ्जसे जलती हुई लक्ष्मीको देखकर बलिसे उसका विषय पूछने लगे।

इन्द्र बोले, हे दैत्यराज! यह जो निज तेजसे प्रकाशमान केयूरवती दर्शनीय रूपवाली शिखण्डशालिनी स्त्री तुम्हारे देहसे निकली, वह कौन है?

बलि बोले, हे इन्द्र मैं नहीं जानता, कि यह आसुरी, दैवी अथवा मानवी है। तुम्हारी इच्छा हो, इससे पूछो, वा मत पूछो।

इन्द्र बोले, हे शुचिस्मिते! तुम कौन हो, मनोहर रूप और केशपाश धारण करके बलिके शरीरसे क्यों निकली; तुम्हारा क्या नाम है, उसे मैं नहीं जानता, इससे मेरे समीप अपना नाम कहो। हे सुभ्रु! तुम कौन हो, दैत्येश्वर बलिको परित्याग करके निज तेजसे प्रकाशित होकर मायाकी भांति क्यों खड़ी होरही हो? मैं पूछता हूं, तुम मुझसे वही कहो।

लक्ष्मी बोली, हे वासव! विरोचन मुझे नहीं जानते थे और यह विरोचनपुत्र बलि भी मुझे नहीं जानता, लोग मुझे दुःसहा और विधित्सा समझते हैं, मुझे कोई भूति, कोई लक्ष्मी और कोई कोई श्री कहा करते हैं। हे देवराज! तुम मुझे नहीं जानते और सब देवता भी मुझे नहीं जानते।

इन्द्र बोले, हे दुःसहे! बहुत समय तक बलिके स्थानमें वास करके अब मेरे निमित्त अथवा बलिके ही वास्ते इन्हें परित्याग करती हो, उसे कहो।

लक्ष्मी बोली, हे शक्र! धाता वा विधाता मुझे किसी प्रकार स्थिर नहीं रख सकते, काल ही मुझे परिवर्त्तित करता है; हे देवराज! इसलिये तुम कालकी अवज्ञा मत करो।

इन्द्र बोले, हे शुचिस्मिते! तुमने किस कारणसे बलिको परित्याग किया और मुझे किसलिये परित्याग नहीं करती हो, मेरे समीप उसे कहो।

लक्ष्मी बोली, हे देवराज! मैं सत्य, दान, व्रत, तपस्या, पराक्रम और धर्म्ममें निवास करती हूं; बलि इन सब विषयोंसे पराङ्मुख हुए हैं। ये पहले ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होकर अन्तमें ब्राह्मणोंकी असूया

करते और जूठे रहकी घृत छूते थे। पहले यज्ञशील होकर पीछे यह मूढ़बुद्धि कालसे अत्यन्त पीड़ित होकर "मेरी ही पूजा करो" सब लोगोंसे ऐसा ही वचन कहता था। हे देवराज! इसही लिये मैं इसे त्यागके तुम्हारे समीप वास करती हूं; तुम सावधान होकर तपस्या और विक्रमके सहारे मुझे धारण करो।

इन्द्र बोले, हे कमलालये! देवता, मनुष्य अथवा सब प्राणियोंके बीच ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो अकेला तुम्हें धारण करनेमें समर्थ हो।

लक्ष्मी बोली, हे पुरन्दर! यह सत्य है, कि देवता, गन्धर्व्व, असुर वा राक्षसोंमें ऐसा कोई भी नहीं है, जो अकेला मुझे सह्य कर सके।

इन्द्र बोले, हे शुभे! तुम कहो, किस प्रकार मेरे समीप निवास करोगी, मैं वैसाही करूंगा; यह सत्य वचन कहना तुम्हें उचित है।

लक्ष्मी बोली, हे देवेन्द्र! मैं तुम्हारे समीप सदा जिस प्रकार निवास करूंगी, उसे सुनो। तुम वेद विहित विधिके अनुसार मुझे चार हिस्से में विभक्त करो।

इन्द्र बोले, हे कमले! मैं यथा शक्ति बलके अनुसार तुम्हें सदा धारण करूंगा, तुम्हारे निकट मेरा कुछ भी व्यतिक्रम न होगा। भूतभाविनी धरणी ही मनुष्योंका धारण किया करती है, इससे धरती तुम्हारा एक पद धारण करे, मुझे बोध होता है, वह तुम्हारा एक चरण धारण करनेमें समर्थ होगी।

लक्ष्मी बोली, यह मैंने भूमिमें एक चरण अर्पण किया, यह भूतलमें प्रतिष्ठित रहेगा। हे इन्द्र! अब मेरे दूसरे चरणका स्थान वर्णन करो।

इन्द्र बोले, जल सब द्रवमय मनुष्योंको पारवश्य किया करता है, इससे जल ही तुम्हारा दूसरा चरण धारण करे; क्यों कि जल तुम्हारे चरणको सहनेमें समर्थ होगा।

लक्ष्मी बोली, हे देवेन्द्र! यह मैंने दूसरा चरण जलके बीच अर्पण किया, यह जलमें ही प्रतिष्ठित रहेगा अब तीसरे चरणको स्थापित करनेका स्थान बतलाओ।

इन्द्र बोले, वेद, यज्ञ और समस्त देवता जिसमें प्रतिष्ठित हैं वह अग्नि तुम्हारे तीसरे चरणको उत्तम रीतिसे धारण करेगी।

लक्ष्मी बोली, हे इन्द्र! यह जो चरण मैंने अर्पण किया, वह अग्निके बीच प्रतिष्ठित हुआ, अब चौथे चरणके स्थापनका स्थान बतलाओ।

इन्द्र बोले, मनुष्योंके बीच जो साधु पुरुष सत्यवादी और ब्रह्मनिष्ठ हैं, वेही तुम्हारे चौथे चरणको धारण करेंगे, क्यों कि साधु लोग तुम्हारे चरणको धारण करनेमें समर्थ हैं।

लक्ष्मी बोली, हे देवराज! यह जो चरण निर्द्देश किया, वह साधुओंके बीच प्रतिष्ठित हुआ; भूतोंके बीच इसी प्रकार मेरे चारों चरण निहित रहे; तुम इसी भांति मुझे धारण करो।

इन्द्र बोले, मैंने सर्व्व भूतोंके ऊपर तुम्हें स्थापित किया, अर्थात् वित्त, तीर्थादि पुण्य यज्ञ आदि धर्म्म और विद्या, ये तुम्हारे चारों चरण भूमि, अग्नि, जल और साधुओंमें प्रतिष्ठित हुए। मेरा यह वचन सब कोई सुने, जीवोंके बीच जो पुरुष स्तेय, काम, अशौच अथवा अशान्तिसे तुम्हें आहत करेगा, मैं उसे धर्षण करूंगा। अनन्तर लक्ष्मीसे परित्यक्त दैत्यराज बलि कहने लगे।

बलि बोले, सुमेरु पर्व्वतकी प्रदक्षिणा करनेवाले सूर्य्य जैसे पूर्व्वदिशाको प्रकाशित करता है वैसेही उत्तर पश्चिम और दक्षिण दिशाको भी प्रकाशित किया करता है; परन्तु जिस समय क्रमसे सब दिशा नष्ट होंगी और आदित्यमण्डल केवल सुमेरुपृष्ठके मध्यवर्त्ती ब्रह्मलोकको दिवसके मध्य भागमें प्रकाशित करेगा, तब वर्त्तमान वैवस्वत मनुका अधिकार च्युत होनेपर सावर्णिक मनुके भावी अधिकारके समय

देवताओं और असुरोंमें युद्ध होगा; उस युद्धमें मैं तुमको फिर जीतूंगा। हे देवराज! जब सूर्य केवल ब्रह्मलोकमें स्थिति करके सब लोकोंको सन्तापित करेगा, उस समय देवासुर संग्राममें मैं तुम्हें जय करूंगा।

इन्द्र बोले, हे दैत्यराज! "तुम्हें मारना उचित नहीं है," ब्रह्माने मुझे ऐसीही आज्ञा दी है, इसहीसे मैंने तुम्हारे सिरपर वज्र नहीं चलाया। हे दैत्येन्द्र! तुम्हारी जहां इच्छा हो वहां जाओ, तुम्हारा कल्याण हो; सूर्य मध्यस्थलमें रहके कभी ताप प्रदान न करेगा, स्वयम्भूने पहले ही इसका समय निरूपण किया है, यह सदा सत्य पथमें निवास करते और प्रजाको ताप दान करते हुए भ्रमण करता है; छःमहीनेके अनन्तर इसकी गति परिवर्त्तित होती है, उसीहो अयन कहते हैं; अयन दो प्रकारके हैं, उत्तरायण और दक्षिणायन। यह सब लोकोंमें उक्त दो प्रकारके अयनके सहारे सूर्यगर्म्मी और शीतको वर्षा करते हुए भ्रमण कर रहा है।

भीष्म बोले, हे भारत! दैत्यराज बलि महेन्द्रका ऐसा वचन सुनके दक्षिण तरफ चले गये इन्द्रने भी पूर्व्वदिशाकी ओर प्रस्थान किया। सहस्रलोचन इन्द्र बलिके कहे हुए यह अहङ्कार रहित वचन सुनके शून्य मार्गसे स्वर्गमें गये।

२२५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें शतक्रतु और नमुचिके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासका भी प्रमाण दिया जाता है। एक समय इन्द्रने श्रीहीन होनेपर भी समुद्रकी भांति गम्भीरभावसे बैठे हुए भूतोंकी उत्पत्ति और नाशको जाननेवाले नमुचिके समीप आके यह वचन कहा, हे नमुचि! तुम पाशबद्ध पदच्युत शत्रुओंके वशीभूत और श्रीहीन हुए हो, इसलिये ऐसी अवस्थामें पड़के शोक करते हो, वा नहीं?

नमुचि बोला, हे देवराज! अनिवार्य्य शोकसे शरीर सन्तापित होता हैं, शत्रु लोग सन्तुष्ट हुआ करते हैं, शोक कभी दुःखमञ्जनका कारण नहीं होता; इसही लिये मैं शोक नहीं करता। जगत्में जो कुछ वस्तु हैं, सभी विनश्वर हैं। हे सुरेश्वर! शोक करनेसे रूप नष्ट होता है, शोक करनेसे श्रीहीन होना पड़ता है, सन्तापसे परमायु और धर्म्म नष्ट हुआ करता है; इसलिये ज्ञानवान् मनुष्योंको उचित है, शोकसे उपस्थित दुःखका त्यागके मनहीमन हृदयके प्रीतिकर कल्याणकी चिन्ता करें। मनुष्य जिस समय कल्याण विषयमे मन लगाता है, तभी उसके सब प्रयोजन निःसन्देह सिद्ध होते हैं। अन्तर्य्यामी रूपसे एकमात्र शासनकर्त्ता वर्त्तमान है, दूसरा कोई भी शास्ता नहीं है। जो गर्भशय्यामें सोये हुए पुरुषको शासित करता है, मैं उसहीके जरिये नियुक्त हुआ हूं, और जैसे जल नीचेकीही ओर जाता है, वैसेही जिस भांति नियुक्त हुआ हूं, उसही प्रकार कार्य्यभार ढोता हूं। बद्ध और मोक्ष इन दोनोंमें तत्वज्ञानसे मोक्षही श्रेष्ठ और गरिष्ठ है, इसे जानकर भी मोक्ष और साधनके लिये शमदम आदि विषयोंमें यत्न नहीं कर सकता; धर्म्मयुक्त और अधर्म्म विहित आशामें वशीभूत होकर समय बिताते हुए शास्ताके जरिये जिस प्रकार नियुक्त हुआ हूं, उसही भांत कार्य्यभार ढोया करता हूं। मनुष्योंको जो जिस प्रकारसे प्राप्त होनेवाला है, वह उसही भांतिसे प्राप्त होता है; होनहार विषय जो जिस प्रकारसे होनेवाला होता है, वह उसही प्रकार हुआ करता विधाता जिन जिन गर्भोंमें जीवोंको बार बार नियुक्त करता है, जीव उसमेंही निवास करते हैं स्वयं जिसकी इच्छा करते हैं, वह सिद्ध नहीं होता। "मेरा

ऐसाही भवितव्य था, ऐसाही होगा," जिनके अन्तःकरणमें ऐसे भाव सदा जाग्रत होरहे हैं, वे कभी मोहित नहीं होते, कालक्रमसे उपस्थित दुःख सुखके जरिये हन्यमान मनुष्योंका अभियोग कर्त्ता कोई भी नहीं है। मनुष्य दुःखके विषयमें द्वेष करते हुए "मैंही कर्त्ता हूं।" इस प्रकार जो अभिमान किया करते हैं, वही दुःख है। ऋषि, देवता, महासुर, तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणों और वनवासी मुनियोंके निकट भी सब आपदा उपस्थित होती हैं, जिन्होंने सदसत् वस्तुओंको विशेष रूपसे जाना है, वेही भयभीत नहीं होते। पण्डित पुरुष क्रुद्ध नहीं होते, विषयोंमें आसक्त नहीं होते ; विपदमें दुःखी सम्पतमें सन्तुष्ट और अर्थकृच्छ्रात विपद उपस्थित होनेपर शोक नहीं करते ; वे स्वभावसेही हिमाचलकी तरह अटलभावसे स्थित रहते हैं। सब प्रयोजनोंकी सिद्धि जिसे हर्षित नहीं कर सकती, और समय पर उपस्थित हुई विपद भी जिसे दुःखित नहीं कर सकती ; जो सुख दुःखको समान भावसे सेवन करते हैं, उन्हीं मनुष्योंको धुरन्धर कहा जाता है। पुरुषको जिस समय जो अवस्था प्राप्त होवे, शोक न करके उसमेंही सन्तुष्ट रहे और सन्तापकारी आयासकर प्रवृद्ध कामको शरीरसे दूर करे। शीत, स्मार्त्त, लौकिक न्याय अन्यायको विचारनेवाली ऐसी कोई जनसमाज नहीं है जिसमें प्रवेश करके मनुष्य सदा भयभीत न हो ; इससे जो पुरुष दुरवगाह धर्मतत्वमें स्नान करते हुए उसे प्राप्त करे, उसेही सभ्य समाजके बीच धुरन्धर कहना चाहिये। धर्मतत्त्व, जो अत्यन्त दुरवगाह है, तब इसमें सन्देहही क्या है, कि ब्रह्मतत्त्व उससे भी दुष्प्रवेश्य है। बुद्धिमान् पुरुषोंके सब कार्य्य परिणाममें भी दुर्ज्ञेय हैं, जो बुद्धिमान् होते हैं, वे कभी मोहके समयमें मुग्ध नहीं होते। हे अहल्यापति वृद्ध गौतम! यदि तुम कष्टकारी विषम विपदमें पड़ते और पदच्युत होते, तो क्या मुग्ध न होते? मन्त्र, बल, बुद्धि, वीर्य्य पौरुष, शीलता, सदाचार और अर्थसम्पत्तिसे मनुष्य कभी अलभ्य वस्तु प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता, इसलिये उसके लिये शोकका क्या प्रयोजन है। विधाताने पहिले मनुष्यके सम्बन्धमें जो विधान किया है, उसे वही भोग करना पड़ेगा, मैं भी विधिकृत कार्य्यका अनुसरण करूंगा, मृत्यु मेरा क्या करेगी, मनुष्य प्राप्त होनेवाली वस्तुओंकोही पाता है, जाने योग्य स्थानमें ही जाता है और प्राप्त होनेवाले सुख दुःखही प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य इन सब विषयोंको पूर्ण रीतिसे जानके मोहित नहीं होते, वे सब दुःखदायक विषयोंमें भी सुखी और सर्व्वप्रधान करके विख्यात हुआ करते हैं।

२२६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतकुलप्रवर पितामह! वस्तुनाश अथवा राज्य नाश रूप कष्टकारी विपदमें पड़े हुए पुरुषके पक्षमें कल्याण क्या है। आपही इस लोकमें हम लोगोंके बीच परमवक्ता हैं, इसलिये मैं आपसे यह विषय पूछता हूं आप विस्तारपूर्व्वक बयान करिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! स्त्री, पुत्र, सुख और वित्तहीन मनुष्योंके कष्ट कारी विपदमें पड़नेसे धीरज ही उनके लिये कल्याणकारी होता है, सदा धैर्य्ययुक्त शरीर कदापि विशीर्ण नहीं होता, शोकरहित सुख भी आरोग्यतामें श्रेष्ठ कारण है, शरीर आरोग्य रहनेपर मनुष्य फिर धन प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। हे तात! जो बुद्धिमान् मनुष्य सात्विकी वृत्ति अवलम्बन करते हैं, उनके ऐश्वर्य्य धीरज और सब कार्य्य सिद्ध होते हैं। हे धर्मराज! इस

विषयमें फिर बलि और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया जाता है। दैत्य दानवोंके नाशक देवासुर संग्राम समाप्त होनेपर सब लोक विष्णुसे आक्रान्त और शत-क्रतु देवराज हुए, देवताओंके यज्ञ करनेसे ब्राह्मण आदि चारों वर्ण व्यवस्थापित हुए, तीनों लोक समृद्धिवान और स्वयम्भू ब्रह्मा प्रीतियुक्त हुए; रुद्रगण, वसुवृन्द, दोनों अश्वि-नीकुमार, देवर्षि, गन्धर्व्व, भुजगेन्द्र और सिद्ध समूहोंसे घिरे हुए देवराजने चार दांतवाले अत्यन्त दान्त शोभायुक्त ऐरावत गजराजपर चढ़के तीनों लोकमें घूमनेके लिये प्रस्थान किया। उन्होंने किसी समय समुद्रके किनारे किसी पहाड़की गुफामें विरोचनपुत्र बलिको देखा और देखते ही उसके निकट उपस्थित हुए। राजा बलि सुरराज इन्द्रको ऐरावतपर चढ़े और देवताओंमें घिरे देखकर शोकार्त्त वा व्यथित नहीं हुए। इन्द्र ऐरावतपर चढ़े रहके अविकृत और अभीतभावसे स्थित बलिको देखकर यह वचन बोले कि, हे दैत्यराज। तुम जो ऐसी अवस्थामें भी व्यथित नहीं होते हो, इसमें शूरता अथवा वृद्धसेवा तथा तपस्यासे प्राप्त हुआ तत्वज्ञान कारण हुआ है। जो हो, यह सब तरहसे अत्यन्त दुष्कर कार्य्य है। हे विरोचनपुत्र! तुम शत्रुओंके वशीभूत और परम श्रेष्ठ पदसे भ्रष्ट होकर किसका सहारा करके शोचितव्य विषयोंमें शोक नहीं करते हो। तुमने स्वजनोंके बीच श्रेष्ठता और अत्यन्त उत्कृष्ट भोगोंको प्राप्त किया था, फिर शत्रु-ओंके जरिये तुम्हारा धन, रत्न और राज्य छीना गया, तौभी तुम किस लिये शोक नहीं करते हो उसे कहो। पहले तुम पिता पिता-मह पदके ईश्वर हुए थे, अब शत्रुओंके जरिये उस पैतृकपदके छीने जानेपर क्यों नहीं शोक करते हो। तुम वरुण-पाशसे बद्ध, वज्रसे आयत, स्त्री और रत्न हरे जानेपर भी किस कारण शोकरहित होरहे हो, उसे कहो। तुम श्रीहीन और विभवसे भ्रष्ट होके भी जो शोकरहित होरहे हो, यह अत्यन्त दुष्कर कार्य्य है। क्योंकि तीनों लोकका राज्य नष्ट होनेपर तुम्हारे बिना दूसरा कौन पुरुष जीवित रहनेका उत्साह करेगा। इन्द्र बलिको परा-जित करके इसी प्रकार तथा दूसरी भांति कडुए वचन कह रहे थे, उस समय विरोचन-पुत्र बलि ऊपर कहे हुए वचनको अनायास ही सुनके निर्भय होकर कहने लगे।

बलि बोले, हे इन्द्र! मैं जब निग्रहीत हुआ हूं तब तुम्हें अब विकत्थना करनेका क्या प्रयोजन है, तुम वज्र लेके खड़े हो, उसे मैं देखता हूं। पहले तुम असमर्थ थे, इस समय कुछ समर्थ हुए हो, तुम्हारे अतिरिक्त कौन पुरुष इस प्रकार अत्यन्त निठुर वचन कह सकता है। जो पुरुष समर्थ होके भी शत्रुके वशमें पड़े हुए करतलगत वीरके ऊपर दया करता है, बुद्धिमान लोग उसे ही पुरुष समझते हैं। युद्ध करनेमें तत्पर दोनोंके बीच जयका निश्चय नहीं है, क्योंकि दोनोंके बीच एकको विजय और एक पुरुषको पराजय हुआ करती है। हे सुरेश्वर। "सर्व्वभूतोंके ईश्वरको मैंने जय किया है,"—तुम्हारा ऐसा स्वभाव न होवे। हे वज्रधर! तुम जो ऐसी अवस्था युक्त हुए हो, वह तुम्हारा कृत नहीं है और मैं जो ऐसी अवस्थामें निवास करता हूं, यह भी मेरा कृत नहीं है, इस समय तुम जैसी अवस्थामें हो, मैं पहले वैसाही था और इस समय मैं जिस प्रकार निवास करता हूं, भविष्यकालमें तुम उस ही प्रकार होगे! मुझसे कुछ पापकर्म्म हुआ है, ऐसा समझके तुम मेरी अवज्ञा मत करो, हे देवराज! पुरुष कालक्रमसे सुख दुःख भोग करता है, काल-क्रमसे ही तुमने इन्द्रत्व प्राप्त किया है, कर्म्मके जरिये तुम्हें इस इन्द्रत्व पदकी प्राप्ति नहीं हुई है। कालही मुझे

वशीभूत किया है, इसहीसे मैं इस समय तुम्हारी भांति सम्पत्तिशाली नहीं हूं, तुम भी मेरे समान अवस्थामें नहीं पड़े हो।

माता पिताकी सेवा, देवताओंकी पूजा और दूसरे गुण पुरुषके विषयमें सुखदायक नहीं हैं; विद्या, तपस्या, दान, मित्र और बान्धव लोग कालपीड़ित पुरुषकी परित्राण करनेमें समर्थ नहीं होते। मनुष्य लोग बुद्धि-बलके अतिरिक्त सैकड़ों उपायसे भी आनेवाली बिपदको निवारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। कालक्रमसे हन्यमान मनुष्योंकी परि-त्राण करनेवाला कोई भी नहीं है। हे इन्द्र! तुम जो ऐसा अभिमान करते हो, कि "मैं कर्त्ता हूं" यही दुःख है। पुरुष यदि कर्त्ता हो, तो वह कभी किसीका कृत न होसके; इसलिये कर्त्ता जब कृत होता है, तब ईश्वरके अतिरिक्त और कोई भी कर्त्ता नहीं है। कालक्रमसे मैंने तुम्हें जीता था, और कालके अनुसार तुमने मुझे जय किया है। कालही सबकी गति है, और कालने ही सब प्रजाको सङ्कलन कर रखा, हे देवराज! तुम साधारण बुद्धिके वशमें होकर प्रलयके विषयको नहीं मालूम करते हो; तुमने निज कर्म्मसे उत्कर्ष लाभ किया है, ऐसा जानके कोई कोई तुम्हारा अत्यन्त आदर किया करते हैं, मेरे समान पुरुष लोक प्रवृत्तिको जानके कालपीड़ित होनेपर क्यों शोक करेंगे; किस लिये वो मुग्ध होंगे। किस कारणसे वो व्याकुल हुआ करेंगे, मैं अथवा मेरे समान पुरुष यदि सदा ही काल पीड़ित हों, तो मैं अथवा मेरे समान पुरुषोंकी बुद्धि भिन्न नौकाकी भांति अवसन्न हो सकती है। हे वासव! मैं, वा तुम अथवा दूसरे जो सुराधिपत्य लाभ करेंगे, सैकड़ों इन्द्र जिस मार्गसे गये हैं, उन्हें भी वही मार्ग अवलम्बन करना पड़ेगा। तुम परम श्रीस म्पन्न होकर इस समय ऐसे दुर्द्धर्ष होरहे हो, समय उपस्थित होनेपर काल मेरी भांति तुम्हें भी वशीभूत करेगा युग युगमें कई हजार इन्द्र हुए थे, वे भी कालके वशमें होकर समाप्त हो गये, इसलिये कालको कोई अतिक्रम नहीं कर सकता काल अत्यन्त दुरतिक्रम है। तुम यह सम्पति पाके अपनेको सर्व्व भूत भावन ब्रह्माके समान समझ रहे हो; परन्तु यह इन्द्रत्व पद किसीके पक्षमें अचल और अनन्त नहीं है; तुम मूढ़तासे ही ऐसा समझते हो कि "यह मेरा है"। तुम अविश्वस्त विषयमें विश्वास करते हो, और अनित्य वस्तुको नित्य समझते हो।

हे सुरेश्वर! कालसे आक्रान्त पुरुष सदा इस ही प्रकार हुआ करते हैं। "यह राजश्री मेरी है" ऐसा समझके तुम मोहके वशमें होकर कामना करते हो, परन्तु यह श्री तुम्हारे वा हमारे अथवा किसीके भी निकट स्थिर नहीं रहती। हे वासव! इस चंचला श्रीने बहुतेरे पुरुषोंको अतिक्रम करके इस समय तुम्हें अवलम्बन किया है, परन्तु कुछ समय तुम्हारे निकट रहके फिर इस प्रकार दूसरेके समीप चली जायगी, जैसे गज एक निपानको त्यागके निपा-नान्तरमें गमन करता है। हे पुरन्दर! कई सौ राजा गुजर गये, उनकी गिनती करनेकी सामर्थ नहीं है, तुमसे भी श्रेष्ठ बहुतेरे पुरुष भविष्यमें इन्द्रत्व लाभ करेंगे। वृक्ष, औषधी, रत्न, जीव जन्तु, वन और आकर (खान) युक्त इस पृथ्वीको पहले जिन्होंने भोग किया था, इस समय उन्हें नहीं देखता हूं। पृथु, ऐल, मय, भीम, नरक, शम्बर, अश्वग्रीव, पुलोमा, स्वर्भानु, अमितध्वज, प्रह्लाद, नमुचि, दक्ष, विप्रचित्ति, विरोचन, ह्रीनिषेव, सुहोत्र, भूरिहा, पुष्पवान्, वृष, सत्येप्सु, ऋषभ, बाहु, कपि-लाश्व, विरूपक, बाण, कार्त्तस्वर, वह्नि, विश्व-दंष्ट्र, नैऋति, सङ्कोच, वरीताक्ष, वराह, अश्व, रुचिप्रभ विश्वजित् प्रतिरूप, वृषाण्ड, विष्कर, मधु, हिरण्यकशिपु और कैटभ आदि ये समस्त

दैत्य दानव और राक्षस लोग तथा इनके अति-रिक्त दूसरे बहुतेरे प्राचीन दैत्येन्द्र वा दानवेन्द्र जिनका कि नाममात्र सुना करता हूं; वैसे बहुतेरे पहिले समयके दानवेन्द्र लोग काल पीड़ित होकर पृथ्वी त्यागके चले गये ; इस-लिये कालही बलवान् है। इन सबने ही एक एक सौ अश्वमेध यज्ञ की थीं, तुम्हीं केवल शतक्रतु नहीं हो, ये सभी धर्मपरायण थे, सभी सदा यज्ञ करते और वे सब कोई आकाशमें विचर सकते थे, वे सब कोई सम्मुख युद्धमें समर्थ थे; सभी समरसंयुक्त, परिघबाहु, मायावी और कामरूपी थे। सुना जाता है, ये सब कोई युद्धमें उपस्थित होकर पराजित नहीं होते थे, सब ही सत्यव्रतसे युक्त, कामविहारी, वेदव्रता-निष्ट और बहुश्रुत थे; सबने ही राजश्वर होकर याग्य ऐश्वर्य्य प्राप्त किये थे; परन्तु उन महानुभावोंको पहिले कभी ऐश्वर्य्यका मद नहीं हुआ था। वे सब कोई यथायोग्य याच-कोंको दान करते थे, सभी सब प्राणियोंके विषयमें यथा उचित करुणा करते थे। वे सब कोई दाक्षायणी दिति और दनु तथा प्रजापति कश्यपके पुत्र थे; वे लोग तेज और प्रतापयुक्त रहनेपर भी कालसे प्रतिसंहृत हुए हैं।

हे देवराज! जब तुम इस पृथ्वीको भोग करके फिर परित्याग करोगे, तब निज शोक रोकनेमें समर्थ न होगे, इसलिये अभीसे काम-भोग विषयकी वासना त्याग दो; इस ऐश्वर्य्यका गर्व्व मत करो; ऐसा करनेसे तुम निज राज्य नाश होनेके समय शोकको सहनेमें समर्थ होगे। तुम शोकके समय शोक मत करो और हर्षके समय हर्षित न होना; अतीत और अनागत विषयोंको त्यागके प्रत्युत्पन्न विषयके सहारे जीवन बिताओ।

हे देवेन्द्र! यदि अतन्द्रित काल मेरे सदा योगमें रत रहने पर भी हमारे निकट आया है, तो शीघ्रही थोड़ेही समयके बीच तुम्हारे समीप भी उपस्थित होगा; तुम समयकी उपेक्षा करो। हे देवेन्द्र! इस समय तुम वचन-व्यूहके जरिये मानो मुझे डराते हुए गर्ज्ज रहे हो, मैं संयत हुआ हूं इसहीसे तुम अपनी बड़ाई करते हो, कालने पहले मुझे आक्रमण किया है, अब तुम्हारे पीछे दौड़ रहा है, हे देवराज! मैं अगाड़ी कालसे पीड़ित हुआ हूं, इसही कारण तुम गर्ज्ज रहे हो।

हे वासव! मेरे संग्राममें क्रुद्ध होनेपर कौन मेरे सम्मुख निवास करनेमें समर्थ होता, बल-वान कालने मुझे आक्रमण किया है, इसही कारणसे तुम मेरे सम्मुखमें खड़े होरहे हो। यह सहस्र वर्ष प्रायः पूर्ण हुआ, पर मेरा सब शरीर तबतक अच्छी तरह सुस्थ नहीं हुआ। मैं इन्द्रत्व पदसे च्युत हुआ हूं, तुम सुरलोकमें प्रकृत इन्द्र हुए हो, यही विचित्र है; जीवलो-कके बीच काल क्रमसे तुम उपास्य होरहे हो। तुम क्या कर्म्म करके इस समय इन्द्र हुए और मैं ही कौनसे कर्म्मके जरिये इन्द्रत्व पदसे च्युत हुआ। कालही कर्त्ता और विकारकर्त्ता है, दूसरा कोई भी कारण नहीं है, विद्वान् पुरुष नाश, विनाश, ऐश्वर्य्य, सुख, दुःख, जन्म और मृत्यु लाभसे अत्यन्त हर्षित और दुःखित नहीं होते। हे वासव! तुम मुझे जानते हो, मैंभी तुम्हें जानता हूं। हे निर्लज्ज! इससे तुम कालक्रमसे उन्नत होकर क्यों मेरी निन्दा कर रहे हो, पहिले समयमें मेरा जो पौरुष था, वह तुमसे छिपा नहीं है; मैं युद्धमें पर्य्याप्त परिमाणसे जो विक्रम प्रकाश करता था, वही उसमें प्रमाण है, हे शचिपति! पहिले समयमें आदित्य रुद्र, साध्य, वसु और मरुद्गण मेरे सम्मुखमें विशेष रीतिसे पराजित हुए थे। हे वासव! तुम तो जानते हो, कि देवासुर संग्रा-ममें इकट्ठे हुए सब देवता लोग मेरे बल-विक्रमके प्रभावसे रणभूमि छोड़के भागे थे। मैंने ही वन और वनवासियोंके सहित सब

पर्व्वतोंको बार बार उठाया था और युद्धमें तुम्हारे शिरके ऊपर पत्थरके टूकड़ोंके सहित पहाड़ोंके शिखरोंको फेंका था; इस समय क्या करूं, काल अत्यन्त दुरतिक्रम्य है। क्या मैं वज्रके सहित तुम्हें मुष्टिक प्रहारसे नाश करनेका उत्साह नहीं करता, परन्तु यह विक्रम प्रकाश करनेका समय नहीं है, क्षमाकाल उपस्थित हुआ है। हे देवराज! इसही लिये तुम मेरे विषयमें क्षमा नहीं करते हो, तौभी मैं तुम्हारे विषयमें क्षमा करता हूं। हे वासव! काल परिणत होनेसे मैं कालानलसे घिरा और सदा कालपाससे बद्ध होरहा हूं, इसही कारण तुम मेरे समीप बड़ाई करते हो। यह वही सब लोकोंसे दुरतिक्रम्य श्यामवर्ण रौद्र पुरुष रस्सोमें बन्धे हुए पशुकी भांति मुझे बान्धके निवास कर रहा है। लाभ, हानि, सुख, दुःख, काम, क्रोध, जन्म, मृत्यु, बध, बन्धन और मोक्ष आदि सब काल-वशसेही प्राप्त हुआ करते हैं। मैं कर्त्ता नहीं हूं, तुम भी कर्त्ता नहीं हो; जो सदा निग्रह-अनुग्रहमें समर्थ है, वही कर्त्ता है, वही काल-रूपी कर्त्ता मुझे वृक्ष स्थित फलकी भांति पका रहा है। पुरुष जिन सब कर्म्मोंको करते हुए काल वशसे सुखयुक्त होता है, कालक्रमसे फिर उन्हीं कर्म्मोंको करके दुःखयुक्त हुआ करता है। हे वासव! समयज्ञ पुरुषको काल स्पर्श होनेपर शोक करना उचित नहीं है। इस ही लिये मैं शोक नहीं करता, शोक कभी दुःख निवारणका कारण नहीं है। शोक करनेसे जब वह शोक दुःख दूर नहीं कर सकता, तब जो शोक करता है, उसे भी कुछ सामर्थ नहीं है, इसही निमित्त मैं इस समय शोक नहीं करता। भगवान् सहस्रलोचन पाकशासन शतक्रतु बलिका ऐसा वचन सुनके क्रोधको रोकके यह वचन बोले, कि वज्रके सहित उद्यत बाहु और वरुणपाशको देखकर दूसरेकी बात तो दूर रहे, जिघांसु अन्तककी बुद्धि भी व्यथित हुआ करती है।— हे सत्यपराक्रमी! तुम्हारी तत्व दर्शिनी अचलबुद्धि व्यथित नहीं होती, इससे निश्चय बोध होता है, कि तुम इस समय धैर्य्यके सहारे दुःखी नहीं हो, इस लोकमें कौन शरीरधारी पुरुष जगत्को प्रस्थित देखकर विषय वा शरीरमें विश्वास करनेका उत्साह करेगा। गुह्यतम सततगामी अक्षर घोर कालाग्निमें पड़े हुए लोगोंको मैं भी इसही प्रकार अनित्य समझता हूं; इस सन्सारमें सूक्ष्म अथवा महत् परिपाक अवस्थामें पड़े हुए भूतोंके बीच काल जिसे स्पर्श करता है, उसे नहीं छोड़ता, स्वयं समर्थ अप्रमत्त सदा प्राणियोंको पकानेवाले अनिरुद्ध कालके वशमें पड़े हुए पुरुष नहीं छूटते; अप्रमत्तकाल अनवहित देहधारियोंके निकट जाग्रत है; ऐसा कभी नहीं देखा गया कि किसी पुरुषने विशेष यत्न करके भी कालको अतिक्रम किया।

प्राचीन नित्य धर्म्म सब प्राणियोंके पक्षमें समान है, काल किसीको भी परिहार्य्य नहीं है, और इस कालका कभी व्यतिक्रम नहीं होता। जैसे ऋण देनेवाला व्याज संग्रह करता है, वैसेही काल दिन, रात, महीना, क्षण, कला, काष्ठा और लव, इन सबकोही पिण्डीकृत कर रहा है, जैसे नदीका वेग किनारेपर स्थित वृक्षोंको हरण करता है, वैसेही काल उपस्थित होकर "मैं आज यह करूंगा कल्ह इस प्रकार करूंगा," इस ही प्रकारकी आशामें फसे हुए पुरुषोंको हरण किया करता है। "मैंने अभी इसे देखा था, यह किस प्रकार मरा?" कालसे ह्रियमाण मनुष्योंके सदा इस ही प्रकार विलाप सुनाई देते हैं। अर्थ, भोग, पद, और, ऐश्वर्य्य आदि सभी नष्ट हुआ करते हैं। काल आगमन करके जीवोंका जीवन हर ले जाता है। उन्नतिका विनिपात ही समाप्ति है; जो है, वह अभाव-स्वरूप है; सब विषय अनित्य और अनि-

चित हैं, इनका निश्चय करना ही अत्यन्त दुष्कर है। तुम्हारी वह तत्त्वदर्शिनी अचल बुद्धि व्यथित नहीं हुई, "मैं पहले ऐसा था" उसे तुम मनमें भी आलोचना नहीं करते। बलवान् काल इस लोकमें सबसे ज्येष्ठ और सबसे कनिष्ठ सभीको आक्रमण करके पका रहा है। पर जो आक्रान्त होता है, वह उसे नहीं समझ सकता। ईर्षा, अभिमान, लोभ, काम, क्रोध, स्पृहा, मोह मान आदिमें फंसे हुए लोग ही मोहित हुआ करते हैं। हे विरोचनपुत्र ! तुम आत्मतत्त्वज्ञ, विद्वान्, ज्ञानवान् और तपोनिष्ठ होकर करतल स्थित आमलक फलकी भांति भली प्रकार कालको देखते हो; तुम सब शास्त्रोंके जाननेवाले होकर कालके चरित्र और तत्व जानते हो, तुम शुद्धबुद्धि और ज्ञानियोंके स्पृहणीय हो, मैं समझता हूं, तुमने ज्ञानबलसे इन सब लोकोंको देखा है; तुम सर्व्वसङ्गसे मुक्त होकर समय बिताते हुए किसी विषयमें भी आसक्त नहीं हुए हो, तुमने इन्द्रियोंको जीता है, इससे रजोगुण और तमोगुण तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकते। तुम प्रीतिरहित तथा दुःखहीन आत्माकी उपासना करते हो; तुम सब भूतोंके सुहृद वैरहीन और शान्तचित्त हुए हो, तुम्हें देखकर मेरी बुद्धि तुम्हारे विषयमें दयायुक्त हुई है, मैं ऐसे ज्ञानयुक्त पुरुषको बन्धनमें रखके मारनेकी अभिलाषा नहीं करता। अनृशंसताही परम धर्म्म है, तुम्हारे ऊपर मुझे ऐसी ही करुणा हुई है; इसलिये काल क्रमसे तुम इन सब वरुणपाशोंसे छूट जाओगे। हे महासुर ! प्रजा समूहके अत्याचारसे तुम्हारा मङ्गल होवे; जब पुत्रवधू प्राचीन सासको सेवा करनेमें नियुक्त करेंगी, पुत्र मोहवशसे पिताको कार्य्य करनेमें प्रेरणा करेगा, चाण्डाल लोग ब्राह्मणोंसे पैर धुलावेंगे, शूद्र लोग निर्भय होकर ब्राह्मणी भार्य्यासे सङ्गत होंगे, पुरुष विरुद्ध योनिमें बीज डालेंगे, कांस्यपात्रके सङ्ग और कुत्सितपात्रके जरिये पूजाकी उपहारका व्यवहार करेंगे, चारों वर्णोंकी समस्त व्यवस्था जब मर्य्यादा-रहित होगी, उस समय क्रमसे तुम्हारे एक एक पाश छूटेंगे; मुझसे तुम्हें भय नहीं है, तुम समय प्रतिपालन करो; निरामय स्वस्थचित्त और दुःखरहित होके सुखी रहो।

गजराजवाहन भगवान् पाकशासनने बलिसे ऐसा कहके प्रस्थान किया, वह सब असुरोंको जीतके सुराधिप और अद्वितीय अधीश्वर होकर हर्षके सहित आनन्दित हुए। महर्षि लोग सहसा उपस्थित होकर उस सब चराचरोंके ईश्वर इन्द्रकी स्तुति करने लगे। हिमापह हव्यवाह अध्वरसे हव्य ढोनेमें प्रवृत्त हुए ईश्वर भी अर्पित अमृत धारण करने लगे। तत्रस्थित द्विजोत्तमोंसे प्रशंसित दीप्त तेजस्वी सुरराज उस समय मन्युहीन, प्रशान्तचित्त और हर्षित होकर निज स्थान सुरलोकमें जाके आनन्दित हुए।

२२७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! भावी उन्नति और अवनतिशील पुरुषोंके पूर्व्वलक्षण क्या हैं ? आप मेरे समीप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे राजन् ! तुम्हारा मङ्गल हो; मनही मनुष्योंकी भावी उन्नति और अवनतिके लक्षणको प्रकाश किया करता है। हे युधिष्ठिर ! पुराने लोग इस विषयमें लक्ष्मी और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं, तुम उसे सुनो। ब्रह्माकी तरह अपरिमित और प्रदीप्त तेजस्वी शान्त पाप महातपस्वी नारदने महातप तपस्याके प्रभावसे परावर दोनों लोकोंको देखते हुए ब्रह्मलोकनिवासी ऋषियोंके सङ्ग मिलकर इच्छानुसार तीनों लोकोंमें भ्रमण किया-

आप। किसी समय वह सवेरे ही उठके पवित्र जलको स्पर्श करनेकी इच्छा करके ध्रुवद्वारसे उत्पन्न गङ्गाके समीप जाके उसमें उतरे। इधर ईश्वर वैरी वज्रधारी सहस्र नेत्रवाले पाकशासनने उस देवर्षिसेवित गङ्गाके तीरपर आगमन किया, वे दोनों स्थिर चित्तवाले गङ्गामें स्नान करके संक्षेपसे जप समाप्त करते हुए सूक्ष्म सुवर्णमय वालसे युक्त पलिनमें पहुंचे, वहां पहुंचके दोनों ही बैठकर पुण्यकर्म्म करनेवाले महर्षियों और देवर्षियोंकी कही हुई सब कथाकी आलोचना करने लगे। उन्होंने समाहित होकर बीते हुए पूर्व्ववृत्तान्तोंको कहते कहते किरणोंसे युक्त पूर्ण मण्डल सूर्य्यको उदय होते देखकर दोनोंने उठके उनकी उपासना की।

अनन्तर आकाशमें उदय होते हुए सूर्य्यके सम्मुख दूसरे सूर्य्यके समान उद्यत अग्निके समान प्रभायुक्त एक ज्योति देख पड़ी। हे भारत! वह ज्योति उन लोगोंके निकट आने लगी। सुपर्ण और सूर्य्यके स्वभावशाली उस ज्योतिने आकाशतलको अवलम्बन करके प्रभापुञ्जके सहारे अनुपम भावसे प्रकाशित होकर तीनों लोकोंको प्रकाशयुक्त किया, उन्होंने उस ज्योतिके बीच परम सुन्दरतायुक्त अप्सराओंकी अग्रगण्याकी भांति वृहद्भानुकी वृहती अंशुमती नामी किरणकी भांति तारा सदृश आभूषणधारिणी मुक्ताहारसे युक्त साक्षात कमलाको कमलदलके बीच बैठी हुई देखा। अङ्गनाओंमें अग्रगण्य वह देवी विमानके अग्रभागसे उतरकर त्रिलोकनाथ इन्द्र और देवर्षि नारदके सम्मुख उपस्थित हुई देवराजने स्वयं देवर्षिके सहित देवीके समीप जाके आत्म समर्पण करके परम आदरके सहित उसकी पूजा की और पूजा करनेके अनन्तर वह सर्व्वविद् सुरराज देवीसे यह वचन कहने लगे।

इन्द्र बोले, हे चारुहासिनी तुम कौन हो; किस कार्य्यके लिये इस स्थानमें आई हो? हे सुभ्रु! हे शुभे! तुम कहांसे आई हो, और कहां जाओगी।

लक्ष्मी बोली, हे बलसूदन! पवित्र तीनों लोकके बीच स्थावर जङ्गम सब जीव मेरे सहित आत्मीयताकी अभिलाष करते हुए परम आदरके सहित मुझे यत्न करते हैं, मैं सब प्राणियोंकी समृद्धिके निमित्त सूर्य्य किरणोंके सहारे फूले हुए कमलपुष्पके बीच उत्पन्न हुई हूं। मुझे सब कोई पद्मा, श्री और पद्ममालिनी कहा करते हैं। मैंही लक्ष्मी, मैंही सम्पत्ति, मैंही श्री मैंही श्रद्धा, मेधा, उन्नति, विजित और स्थिति हूं; मैंही धृति सिद्धि और भूति हूं, मैं ही स्वाहा, स्वधा, सन्तति, नयति और स्मृति हूं। हे बलनाशन! मैं विजयी राजाओंकी सेनाके अगाड़ी और ध्वजा समूहमें धर्म्मशील मनुष्योंके राज्य, नगर और निवास स्थान तथा युद्धमें न हटनेवाले जय लक्षणयुक्त शूर राजाओंके निकट सदा निवास किया करती हूं। धर्म्ममें रत महामति, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी, विनयी और दानशील मनुष्योंके निकट मैं सर्व्वदा ही वास करती हूं। पहले मैंने सत्य-धर्म्ममें बद्ध होकर असुरोंके समीप वास किया था; अब उन लोगोंको विपरीत समझके तुम्हारे निकट वास करनेकी इच्छा करती हूं।

इन्द्र बोले, हे वरानने! दैत्य दानवोंके किस प्रकार चरित्रको देखकर तुम उनके निकट वास करती थी, और इस समय उन लोगोंको किस प्रकार देखकर उन्हें त्यागके इस स्थानमें आई हो?

लक्ष्मी बोली, जो लोग निज धर्म्मका अनुष्ठान करते धीरजसे विचलित नहीं होते और स्वर्गमार्गमें जानेके लिये अनुरक्त रहते हैं मैं उनके ऊपर प्रीति किया करता हूं। और जो लोग दान, अध्ययन, यज्ञ, देवता, पितर, गुरु और अतिथियोंकी पूजा करते हैं, मैं उनके निकट सदा निवास करती हूं। पहले दान-

योंके सब रङ्ग सुमार्जित थे, वे लोग स्त्रियोंको वशमें रखते थे, अग्निमें आहुति देते थे। गुरु-सेवामें तत्पर रहते, इन्द्रियोंको जय करनेमें सावधान थे; वे लोग ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी, श्रद्धावान् क्रोधको जीतनेवाले और दानशील थे, किसीकी असूया नहीं करते थे। स्त्री, पुत्र और सेवकोंका पालन पोषण करते थे, किसीके विषयमें ईर्षा करना नहीं जानते थे; डाहके वशमें होकर कभी आपसमें शत्रुता नहीं करते थे, वे लोग धीर थे, दूसरोंसे दूसरेकी समृद्धि देखकर कातर नहीं होते थे, वे सभी आर्य्य चरित सम्पन्न, दाता, सञ्चयी, दीनोंके विषयमें दयालु, अत्यन्त कृपा करनेवाले, सरलस्वभाव, दृढ़भक्त और जितेन्द्रिय थे। उनके सब सेवक और अमात्य सन्तुष्ट रहते थे, वे सब कृतज्ञ और प्रियभाषी थे; जिसका जैसा सम्मान था, उस-हीके अनुसार उसे धन देते थे; सभी लज्जा-शील और यतव्रत थे। नियमित रीतिसे पर्व्वके समय स्नान करते थे; उत्तम रीतिसे अनुलिप्त और अलंकृत रहते थे, वे लोग उपवास और तपस्यामें रत, विश्वस्त तथा ब्रह्मवादी थे।

सूर्य्य इन लोगोंकी नींद भङ्ग होनेके पहले उदय नहीं होता था, ये लोग कोई भी सवेरेके समय शयन नहीं करते थे; रात्रिके समय दही और सत्तूका भोजन सदा परिवर्ज्जित करते थे। भोरमें घृत देखकर प्रयत होकर परब्रह्मके ध्यानमें रत रहते थे, मङ्गलमय वस्तुओंको देखते ब्राह्मणोंका सम्मान करनेमें विरक्त नहीं होते थे। जो लोग सदा धर्म्म-वादी, अप्रतिग्राही, आधीरातमें सोनेवाले थे और दिनमें शयन नहीं करते थे उन लोगोंके और दीन हीन, अनाथ आतुर, बूढ़े, निर्ब्बल, अबला और अनुमोदन करनेवाले पुरुषोंके विषयमें सदा दया और दान करते थे; त्रासित दुःखित, व्याकुल भयसे आर्त्त, व्याधित, कृश, हृतसर्व्वस्व और विपदमें पड़े हुए पुरुषोंको वे लोग सदा धीरज देते थे। वे लोग धर्म्मका अनुसरण करके चलते थे, आपसमें कोई किसीकी हिंसा नहीं करते थे; सब कार्य्योंमें ही अनुकूल थे; वृद्ध और गुरुजनोंकी सेवा तथा देवता, पितर और अतिथियोंकी यथा उचित पूजा करते थे, वे लोग सदा सत्यनिष्ठ और तपमें रत रहके देवता पितर और अतिथियोंसे बचे हुए अन्नको भोजन करनेमें यत्न-वान रहते थे। वे लोग अकेले ही उत्तम सिद्ध अन्न भोजन नहीं करते थे, परस्त्रीके शरीरको छूनेमें पाप समझते थे, अपनी भांति सब जीवोंमें दया करते थे; अनावृत्त स्थानमें पूर्व्व दिनमें पशुयोनि अथवा दूसरी कोई विरुद्ध योनिमें इन्द्रिय स्खलन करनेकी कभी इच्छा नहीं करते थे। हे सुरराज! सदा दान, दक्षता, सरलता, उत्साह, अहंकार हीनता, परम सुहृदता, क्षमा, सत्य, दान, तपस्या, शौच, करुणा, निठुरतारहित वचन और मित्रोंके विषयमें अद्रोह आदि जो सब गुण हैं, उन लोगोंमें वे सभी थे। निद्रा, तन्द्रा, अप्रीति, असूया, अर्थानवेक्षिता, अरति, विषाद और स्पृहा उन लोगोंके निकट प्रवेश नहीं कर सकती थी। सृष्टि प्रारम्भ होनेपर प्रतियुगमें ही मैं इसी प्रकार गुणयुक्त दानवोंके स्थानमें वास करती थी, अनन्तर कालक्रमसे गुणोंमें विपर्य्यय होनेके कारण मैंने उन लोगोंको काम क्रोधके वशमें देखा, धर्म्मने उन लोगोंको परित्याग किया। वे लोग सामाजिक साधु वृद्धोंके वचनको लेकर आन्दोलन करने लगे; अपकृष्ट पुरुष प्राचीन पुरुषोंका उपहास और असूया करनेमें प्रवृत्त हुए; बैठे हुए युवा पुरु-षोंने पहलेकी भांति अभ्यागत साधु और वृद्धोंको देखकर उठके प्रणामसे उनका सम्मान नहीं किया। पिताके वर्त्तमान रहते पुत्र प्रभुता करनेमें प्रवृत्त हुए। जिन लोगोंने कभी देवकका कार्य्य स्वीकार नहीं किया था, वे भी

[illegible] होकर सत्यभाव धारण करके विख्यात हुए। जो अधर्म पथसे निन्दित कर्म्मके जरिये बहुत सा धन पाते हैं, उन्हीं लोगोंकी भांति दानवोंको अर्थोपार्ज्जनमें स्पृहा होने लगी। रात्रिके समय वे लोग ऊंचे स्वरसे निज नाम सुनाकर प्रणाम करनेमें प्रवृत्त हुए, रात्रिमें अग्नि मन्दभावसे जलने लगी। पुत्र पिताके ऊपर और स्त्रियोंने पतिके ऊपर अत्याचार करना आरम्भ किया। उन लोगोंने बूढ़े माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि और गुरु जनोंके गौरवके निमित्त उन्हें प्रणाम और कुमारोंका प्रतिपालन नहीं किया। देवता, पितर, अतिथि और गुरुजनोंकी पूजा तथा भिक्षा वा भूतोंकी बलि न देकर स्वयं अन्न भोजन करने लगे। उनके रसोइयोंने पवित्रताका अनुरोध नहीं किया। वाक्य, मन और कर्म्मसे उन लोगोंका भक्ष्य विषय अवारित हुआ, उन लोगोंके फैले हुए धान्यको कौवे और चूहे खाने लगे। जल पीनेका कलश बिना ढांका ही रहने लगा, वे लोग जूठे रहके घृत छूने लगे कुदाल पात्र, पेटिका, कांसेके पात्र आदि गृहकी सामग्रियोंके इधर उधर पड़ी रहनेपर भी दानवोंकी गृहणियोंने उन्हें न देखा। प्राकार और गृहोंके टूटनेपर भी दानव लोग उसके संस्कार करनेमें उद्यत न हुए; पशुओंको बांधे रखके तृण जल आदिसे उनका आदर नहीं किया; बालकोंके देखते रहनेपर भी उनका अनादर करके स्वयं भक्ष्यवस्तुओंको भक्षण करने लगे; वे लोग सेवकोंको बिना तृप्त किये ही अपने वास्ते पायस, कृशर, मांस, अपूप और पूरी आदि भोजनकी वस्तुओंको पाक कराने लगे और वृथा मांस भक्षण करनेमें प्रवृत्त हुए। सभी सूर्य्यके उदय होनेपर सबेरे सोते रहते थे, उन लोगोंके प्रति गृहमें रात दिन कलह होने लगा अनार्य्य पुरुषोंने बैठे हुए आर्य्य पुरुषोंका सम्मान न किया, विधर्म्मी लोगोंने आश्रमवासी लोगोंसे द्वेष करना आरम्भ किया; वर्णसङ्करोंकी बढ़ती हुई; पवित्र आचार लुप्त होगया, जो सब ब्राह्मण वेदविद् और जो वेदके विषयमें मूर्ख थे, उनके बहुमान और अवमानके विषयमें कुछ भी विशेषता न रही; परिचारिका समूह हार, आभूषण और वेशविन्यास है, वा गया है,—इसे ही देखने लगीं। उन्होंने दुर्जनोंके आचरित अनुष्ठानका अनुकरण किया।

स्त्रियां पुरुषका वेष बनाकर और पुरुष स्त्रियोंका वेष धरके क्रीड़ा, रति तथा विहारके समय अत्यन्त आनन्दमें डूब गये। पिता पितामहोंने पहले देने योग्य लोगोंको जो कुछ दे गये थे, नास्तिकताके कारण भ्राता लोग उसे अनुवर्त्तन करनेमें असम्मत होने लगे; किसी तरहका अर्थ संशय उपस्थित होनेपर मित्र यदि मित्रके निकट प्रार्थना करे तो केशके नोक समान भी स्वार्थ रहनेपर भी मित्र लोग मित्रोंके धनको नष्ट करनेमें प्रवृत्त हुए। श्रेष्ठ वर्णोंके बीच बहुतोंने परस्व ग्रहण करनेकी अभिलाषा की; सभी विपरीत व्यवहार करते हुए दीख पड़े, शूद्र लोग तपस्या करने लगे; व्रतहीन पुरुषोंने पढ़ना आरम्भ किया, दूसरे लोग वृथा व्रत करनेमें प्रवृत्त हुए, चेलोंने गुरुकी सेवा न की; कोई गुरु शिष्यके सखा हुए; माता पिता शान्त और उत्सवहीन होने लगे; बूढ़े पिता माताकी प्रभुता न रही, वे लोग पुत्रोंके समीप अन्नके निमित्त प्रार्थना करने लगे, समुद्रके समान गम्भीरतासे युक्त वेद जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुष कृषिकार्य्य आदि जीवनके उपायमें आसक्त हुए; मूर्ख लोग श्राद्धका अन्न भोजन करने लगे। प्रतिदिन भोरके समय चेलोंको गुरुके निकट स्वास्थ्य पूछनेके लिये दूत भेजना तो दूर रहे, गुरु लोग स्वयं ही शिष्योंके निकट स्वास्थ्य पूछनेके निमित्त जाने लगे; सास और ससुरके सम्मुखमें ही बहू दास दासियोंको शासन करनेमें प्रवृत्त हुई

और स्वामीको आवाहन करके तिरस्कार करती हुई शासन करने लगी; पिता यत्नपूर्व्वक पुत्रोंके मनकी रक्षा करने लगी। और अत्यन्त दुःखसे निवास करते हुए यदि पुत्र क्रुद्ध हो, इसी भयसे समय वितानेमें प्रवृत्त हुए, अग्नि-दाह, और अथवा राजपुरुषोंके जरिये किसीका धन हरे जानेपर, उसके मित्र लोग द्वेषके कारण उपहास करने लगे; वे लोग सब कोई कृतघ्न, नास्तिक पापाचारी गुरुस्त्री हरनेवाले अभक्ष्यके भक्षणमें अनुरक्त मर्य्यादा रहित और निर्लज्ज हुए। हे देवेन्द्र! कालक्रमसे दानव लोग इस ही प्रकार आचरण करनेमें प्रवृत्त हुए तब मैं उनके निकट निवास न कर सकी; यही मेरे मनमें निश्चय है। हे शचीनाथ! मैं स्वयं तुम्हारे निकट आई हूं; तुम मुझे अभिनन्दित करो। हे सुरेश्वर। तुम्हारे सत्कार करनेसे देवता लोग मुझे ग्रहण करनेके लिये अगाड़ी दौड़ेंगे। हे पाक शासन! मैं जिस स्थानमें निवास करती हूं, वहां मेरी प्रियसुभासे भी विशिष्ट और मदवलम्बना जया आदि आठों देवी आठ प्रकारके रूपसे वास करनेको अभिलाष करती हैं, आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, विजया, उन्नति, क्षमा और जया, ये आठों देवी अग्रगामिनी होकर वहां निवास किया करती हैं, इन सब देवियोंके सहित मैं असुरोंको परित्याग करके तुम्हारे राज्यमें आई हूं, अब धर्म्म-निष्ठ और पवित्रचित्तवाले देवताओंके निकट निवास करूंगी। कमलमें वास करनेवाली देवीने जब ऐसा वचन कहा, तब देवर्षि नारद और वृत्रासुरके नाशक इन्द्र प्रीतिके वशमें होकर अत्यन्त आनन्दित हुए। अनन्तर अनल बन्धु सब इन्द्रियोंको सुखदायक सुखस्पर्श सुगन्धयुक्त वायु देवताओंके स्थानमें बहने लगा। लक्ष्मीके सहित बैठे हुए भगवान् इन्द्रके दर्शन करनेकी अभिलाषा करके देवता लोग प्रायः पवित्र और प्रार्थित स्थानमें निवास करने लगी।

अनन्तर श्रीसम्पन्न सब्मेत सुरेश्वर प्रिय सुहृत् महर्षिके सहित हरे रङ्गवाले घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठ स्वर्ग लोकमें पहुंचके सत्कृत होकर सुरसमाजमें उपस्थित हुए। फिर महर्षियोंसे युक्त नारद और देवराजने कमला देवीके हृदयगत अभिप्रायको मनहीमन विचारते हुए देवताओंके पौरुषको देखकर लक्ष्मीदेवीसे वहां पर सुखपूर्व्वक आगमनका विषय पूछा। अनन्तर दीप्तिमान् धूलोक अमृतकी वर्षा करनेमें प्रवृत्त हुआ स्वयम्भु पितामहके स्थानमें विना बजाये ही नगाड़े बजने लगे, सब दिशा प्रसन्न और प्रकाशित हुईं। देवराज ऋतुके अनुसार शस्योंके ऊपर जल बरषाने लगे, कोई पुरुष भी धर्म्म मार्गसे विचलित नहीं हुए; सुरलोकवासियोंकी विजय होनेपर अनेक रत्नाकर-भूषित भूमि मङ्गलध्वनि करने लगी; यज्ञादि कर्म्मोंसे रमणीय सुन्दर मनस्वी मनुष्य पुण्यवान लोगोंके पवित्र मार्गमें निवास करते हुए सुशोभित हुए; मनुष्य, देवता, किन्नर, यक्ष और राक्षस लोग समृद्धियुक्त तथा प्रशस्तचित्त हुए; फूलफल वायुके झकोरसे भी टूटकर कभी वृक्षोंसे न गिरे; रसप्रद गौवें कामदुहस हुईं। किसीके मुखसे दारुण वचन न निकला। जो लोग विप्र समाजमें उपस्थित होकर सर्व्व कामप्रद इन्द्र आदि देवताओंके सहारे भगवती लक्ष्मीदेवीके इस सपर्य्याय विषयका पाठ करते हैं, वे लोग समृद्धि युक्त होकर सम्पत्ति लाभ करते हैं। हे कुरुवर! तुमने जो इस लोकमें उन्नति और अवनतिका विषय पूछा था, मैंने उसका परम निदर्शन वर्णन किया, अब तुम परीक्षा करके तत्वविषय अवलम्बन करो।

२२८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पुरुष कैसे चरित्र, किस प्रकारके आचार कौनसी विद्या

और कैसे आचारसे युक्त होनेपर प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ नित्यधाम प्राप्त करता है।

भीष्म बोले, जो लोग मोक्ष धर्म्ममें सदा रत अल्पाहारी और जितेन्द्रिय हैं वेही प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ नित्य ब्रह्मधाम लाभ किया करते हैं। हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें असितदेवल और जैगीषव्यके इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। असित देवल, सब धर्म्मोंके जाननेवाले, महाप्राज्ञ, क्रोध हर्षसे रहित जैगीषव्यसे कहने लगे।

देवल बोले, हे महर्षि! तुम्हारी वन्दना करनेपर भी तुम प्रसन्न नहीं होते और निन्दा करनेपर भी क्रोध नहीं करते, यह तुम्हारी किस प्रकारकी बुद्धि है। ऐसी बुद्धि तुमने कहांसे पाई। तुम्हारी इस बुद्धिका परम अवलम्बन क्या है?

भीष्म बोले, महातपस्वी जैगीषव्य देवलका ऐसा वचन सुनके सन्देहरहित प्रचुर अर्थ और पद संयुक्त पवित्र तथा महत् वचन कहने लगे।

जैगीषव्य बोले, हे ऋषिसत्तम! पुण्यकर्म्म करनेवाले मनुष्योंका जो परम अवलम्ब है, मैं उस अत्यन्त महती शान्ति विषयको तुमसे कहता हूं सुनो। हे देवल! मनीषि लोग स्तुतिनिन्दामें समज्ञान किया करते हैं। जो लोग उनकी प्रशंसा वा निन्दा करते हैं, वे उनके भी आचार व्यवहारोंको गोपन कर रखते हैं, वे लोग पूछनेपर भी अहित विषयमें हितवादी पुरुषको कुछ नहीं कहते और जो लोग उनके ऊपर आघात करते हैं, वे उनसे पलटा लेनेकी इच्छा नहीं करते। वे लोग अप्राप्त विषयोंके लिये शोक न करके समयपर प्राप्त हुए विषयको भोग किया करते हैं; बीते हुए विषयोंके निमित्त शोक तथा उन्हें स्मरण नहीं करते। हे देवल! व्रत करनेवाले, शक्तिमान मनीषि लोग इच्छानुसार प्रयोजन विषयमें सत्कार लाभ करनेपर शक्तिके अनुसार उसे साधन किया करते हैं। जिन्होंने क्रोधको जीता तथा जिनका ज्ञान परिणत है, वे जितेन्द्रिय महाप्राज्ञ मनुष्य मनवचन और कर्म्मसे किसीके निकट कुछ अपराध नहीं करते। वे ईर्षारहित होते हैं, इसीसे कभी आपसमें हिंसा करनेमें रत नहीं होते। धीर लोग दूसरेकी समृद्धि देखकर कभी डाह नहीं करते। जो लोग दूसरेकी निन्दा तथा किसीकी प्रशंसा नहीं करते, वे आत्मनिन्दा वा प्रशंसासे विकृत नहीं होते, जो लोग सब तरहसे प्रशान्त और सब भूतोंके हितमें अनुरक्त रहते हैं, वे क्रोध, हर्ष वा किसीके समीप अपराध नहीं करते। जिनका कोई बान्धव नहीं है और जो दूसरेके बन्धु नहीं हैं, उनका कोई भी शत्रु नहीं है और वे भी किसीके शत्रु नहीं हैं। ऐसे मनुष्य हृदयकी ग्रन्थि छुड़ाके सुखपूर्वक विचरते हैं। जो मनुष्य इसही प्रकार व्यवहार करते हैं, वे सदा सुखसे जीवन बितानेमें समर्थ होते हैं। हे द्विजोत्तम! जो सब धर्म्मज्ञ लोग धर्म्ममार्गका अनुरोध करते हैं, वेही आनन्दित होते हैं और जो लोग धर्म्ममार्गसे च्युत हुए हैं वे उद्वेग लाभ किया करते हैं। मैंने उस ही धर्म्मपथका आसरा किया है, इससे किस लिये किसीकी असूया करूंगा। कोई मेरी निन्दा करे अथवा प्रशंसा ही करे, तो भी मैं किस लिये हर्षित होऊंगा। मनुष्य लोग जिसकी अभिलाष करें, धर्म्मसे उसेही प्राप्त करनेमें समर्थ होवें; निन्दा वा प्रशंसासे मेरी ह्रास वा वृद्धि न होगी। तत्त्ववित् बुद्धिमान् मनुष्य अपमानको अमृत समझके तृप्त हुआ करते हैं और सम्मानको विष समझके उद्विग्न होते हैं। अपमानित लोग सब दोषोंसे विमुक्त रहके इस लोक परलोकमें सुखसे सोते हैं और जो अपमान करता है, वह विनष्ट होता है। जो कोई मनीषि पुरुष परम गतिकी इच्छा करें, वे इस ही व्रतको संग्रह करके अनायासही वृद्धि-

युक्त होते हैं। जितेन्द्रिय पुरुष सब तरहसे समस्त सत्र समाप्त करके प्रकृतिसे परम श्रेष्ठ नित्य ब्रह्मधाम लाभ किया करते हैं, जो लोग परम पद पाते हैं, देवता, गन्धर्व्व, पिशाच और राक्षस लोग उनके अनुसरण करनेमें समर्थ नहीं हैं।

२२९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! भूलोकमें सब जीवोंके अभिनन्दन करनेवाले सब लोगोंका प्यारा और सब गुणोंसे युक्त मनुष्य कौन है?

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार नारदके विषयमें उग्रसेन और कृष्णकी जो वार्त्तालाप हुई थी, इस समय उसे वर्णन करता हूं सुनो। उग्रसेनने कृष्णसे कहा, कि नारदका नाम लेनेमें लोग संकल्प किया करते हैं, बोध होता है वे अवश्य ही गुणयुक्त होंगे इससे मैं पूछता हूं, उनमें जो सब गुण थे, वह सब तुम मेरे समीप वर्णन करो।

श्रीकृष्ण बोले, हे कुकुरवंशावतंस नरनाथ! नारदके जो सब उत्तम गुण मुझे विदित हैं, उसे संक्षेपमें कहनेकी इच्छा करता हूं, सुनिये। चरित्रके निमित्त उन्हें देहतापन अहङ्कार नहीं है; जैसा ज्ञान है, वैसा ही चरित्र है; इस ही लिये वे सब जगह पूजित होते हैं। नारदको अनुराग क्रोध और भय नहीं है; वह शूर हैं, और आलसी नहीं हैं, इस ही लिये सब ठौर पूजित होते हैं। नारद अत्यन्त ही उपास्य हैं; काम वा लोभके वशमें होकर उनका वचन व्यतिक्रम नहीं होता, इस ही निमित्त वह सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह अध्यात्म विधिके तत्त्वज्ञ क्षमाशील, शक्तिमान्, जितेन्द्रिय, सरल और सत्यवादी हैं, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह सुशील, सुखशायी, सुभोजी, आदरयुक्त, पवित्र उत्तम वचन कहनेवाले और ईर्षारहित हैं, इस ही लिये सब ठौर पूजित होते हैं। वह सबके विषयमें कल्याणकी इच्छा किया करते हैं, उनमें तनिक भी पाप नहीं है, दूसरेके अनर्थसे वह प्रसन्न नहीं होते, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह वेद सुनके आख्यानके सहारे सब विषयोंके जय करनेकी अभिलाष करते हैं, तितिक्षु कहके कोई उनकी अवज्ञा नहीं करता, इस ही कारण वह सर्व्वत्र पूजित होते हैं। तेज, यश, बुद्धि, ज्ञान, विनय, जन्म और तपस्यामें वह सबसे वृद्ध हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। समता निबन्धनसे कोई उनका प्रिय अथवा किसी प्रकार कोई अप्रिय नहीं है। वह मनके अनुकूल वचन कहा करते हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह अनेक शास्त्रोंको सुनकर वा विचित्र कथाको जानके पण्डित हुए हैं; वह निरालसी, शठताहीन, अदीन, अक्रोधी और लोभ रहित हैं, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं। विषय धन और कामके लिये पहले कभी उनका विग्रह नहीं हुआ, उनके सब दोष नष्ट हुए हैं, इस होसे वह सब जगह पूजित होते हैं। वह दृढ़ भक्त, अनिन्द्य स्वभाव, शास्त्रज्ञ, अनृशंस, संमोहहीन और दोष रहित हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह सब विषयोंमें अनासक्त रहनेपर भी आसक्तकी भांति दीखते हैं, बहुत समय तक उनका संशय नहीं रहता और वह अत्यन्त ही वक्ता हैं, इस ही निमित्त सर्व्वत्र पूजित होते हैं। काम भोगके लिये उन्हें कामना नहीं है, कभी अपनी प्रशंसा नहीं करते वह ईर्षारहित और कोमल वचन कहनेवाले हैं इस ही लिये सब जगह पूजित होते हैं। वह सब लोगोंकी विविध चित्तवृत्तिको देखते हैं, तौभी किसीकी कुत्सा नहीं करते और सृष्टि विषयक ज्ञानमें अत्यन्त निपुण हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह किसी शास्त्रके विषयमें असूया

नहीं करते, निज नीतिको उपजीव्य करके जीवन व्यतीत किया करते हैं, समयको निष्फल नहीं करते और चित्तको वशीभूत कर रखा है, इस ही लिये सब जगह पूजित होते हैं। वह समाधि विषयमें श्रम किया करते हैं, बुद्धिको शुद्ध किया है, समाधि करके भी तृप्त नहीं होते, सदा उद्यत और अप्रमत्त रहते हैं, इसही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह अनपत्रप योगयुक्त, परम कल्याणमें नियुक्त और दूसरेके गुप्त वचनको प्रकाश नहीं करते, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं, वह अर्थ लाभ होनेपर हर्षित और अर्थ हानिसे दुःखित नहीं होते, वह स्थिर बुद्धि और अनासक्त चित्त हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। उस सर्व्वगुणयुक्त अत्यन्त निपुण, पवित्र, अनामय, कालज्ञ और प्रियज्ञ महर्षिसे प्रीति करनेमें कौन पराङ्मुख होगा।

२३० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कौरव! सब जीवोंकी उत्पत्ति वा लयका विषय और ध्यान, कर्म्मकाल तथा युगयुगमें किस प्रकार परमायु होती है, उसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं। समस्त लोकतत्व, जीवोंकी अगति और गति तथा यह सृष्टि और मृत्यु कहांसे हुआ करती है। हे साधुवर! यदि हमारे ऊपर आपकी कृपा हो, तो यही विषय जो कि आपसे पूछता हूं, उसे हमारे निकट वर्णन करिये। पहले आपके कहे हुए अत्यन्त श्रेष्ठ भृगु और विप्रर्षि भरद्वाजकी कथा सुनके मेरी बुद्धि अत्यन्त श्रेष्ठ परम धर्म्मिष्ठ और दिव्य सद्ज्ञाननिष्ठ हुई है, इसलिये फिर आपके समीप पूछता हूं; आप उस ही विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें व्यासदेवने प्रश्न करनेवाले निजपुत्रसे जो कुछ कहा था, वह प्राचीन इतिहास कहता हूं सुनो। वैयासकि शुकदेव निखिल वेद और साङ्ग उपनिषदोंको पढ़के धर्म्मकी निपुणता दर्शन निबन्धनसे नैष्टिक कर्म्मकी कामना करते हुए धर्म्मात्माओंके संशयको दूर करनेवाले अपने पिता कृष्ण द्वैपायनसे यह सन्देह विषय पूछा।

शुकदेव बोले, हे भगवन्! भूतोंके कालनिष्ठा ज्ञानसे युक्त कर्त्ता कौन है, और ब्राह्मणका कर्त्तव्य क्या है; उसे आप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, अतीत और अनागत विषयोंके जाननेवाले ब्रह्मज्ञ तथा सर्व्वधर्म्मज्ञ पिता व्यासदेव उस प्रश्न करनेवाले पुत्रसे वह सब वृत्तान्त कहने लगे।

व्यासदेव बोले, अनादि अनन्त जन्म रहित दीप्तिमान् नित्य, अजर, अव्यय तर्कके अगोचर अविज्ञेय ब्रह्म सृष्टिके पहले वर्त्तमान था; कलाकाष्ठा आदि व्यञ्जक सूर्य्य आदि जो कुछ व्यक्त पदार्थ हैं, वे सभी मनोमय हैं; इसलिये वक्ष्यमाण रूपसे प्रकट कालका ब्रह्म स्वरूपसे मालूम करना उचित है। पन्द्रह निमेषका एक काष्ठा होता है, तीस काष्ठाको एक कला कहते हैं, तीस कला और कलाके दशवें भाग तीन काष्ठाका एक मुहूर्त्त हुआ करता है, तीस मुहूर्त्तको एक दिन और राति होती है; मुनि लोग इस ही प्रकार गिनती किया करते हैं, तीस दिनरातका एक महीना और बारह महीनोंका एक वर्ष कहा जाता है। सांख्य जाननेवाले पुरुष कहते हैं, दो अयनका एक वर्ष होता है। अयन दो प्रकारके हैं, दक्षिणायन और उत्तरायण। सूर्य्यदेव मनुष्य लोक सम्बन्धीय रात दिनका विभाग करते हैं जीवोंकी निद्राके लिये रात और कार्य्य करनेके वास्ते दिन हुआ करता है। मनुष्य लोकका एक महीना पितरोंका एक दिन रात है, उसके बीच यह विभाग है, कि कृष्ण पक्ष उन लोगोंके कर्म्म चेष्टाके निमित्त दिन रूपसे विहित है, और

शुक्लपक्ष स्वप्नके निमित्त रात्रिरूपसे कहा गया है। मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिन रात है। इसका ऐसा विभाग है, कि उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रिरूपसे निरूपित है। जीव लोकके दिन रातका विषय जो वर्णन किया है, उसके अनुसार क्रमसे जो देव लोकके दिन रात्रि कही गई, उस देव परिमाणसे दो हजार वर्ष पर ब्रह्माकी एक अहो रात होती है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, इन चारोंयुगोंसे पृथक् पृथक् वर्षोंकी गिनती हुआ करती है। देवपरिमाणसे चार हजार वर्ष सतयुगका परिमाण है और उसही परिमाणसे चार सौ वर्षको सतयुगकी सन्ध्या होती है तथा चार सौ वर्ष तक सन्ध्यांश काल है। इस ही प्रकार सन्ध्या और सन्ध्यांशके सहित इतर युग सब एक एक चरणहीन हैं, अर्थात् त्रेतायुग देव परिमाणसे तीन हजार वर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येकका परिमाण तीन सौ वर्षका है। द्वापर देवपरिमाणसे दो हजार वर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येक दो सौ वर्षके हैं। कलियुग देव परिमाणसे एक हजार वर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येक एक सौ वर्षके निरूपित हुए हैं। ये चारोंयुग शाश्वत सनातन लोकोंको धारण कर रहे हैं, ब्रह्मवित् पुरुष इस कालको ही नित्य ब्रह्म कहके जानते हैं। सतयुगमें सब धर्म और सत्य आचरण था, अधर्मसे कोई विषय प्राप्त नहीं होते थे; त्रेता आदि युगोंमें क्रमसे धर्म एक एक चरणहीन हुआ है; चोरी झूठ और शठतासे अधर्मकी वृद्धि हुई है, सतयुगमें सब पुरुष ही चार सौ वर्षकी आयुसेयुक्त और रोगरहित रहके सब मनोरथोंको सिद्ध करते थे। त्रेतायुगोंसे क्रमसे मनुष्योंकी आयु एक एक चरण घटती आती है। मैंने सुना है, प्रति युगमें वेदवाक्य और उसके फल, आशा तथा आयु क्रमसे ह्रास होती जाती है। सतयुगमें मनुष्योंके धर्म स्वतन्त्र थे, त्रेता और द्वापरमें भिन्न भिन्न धर्म हुए; युग ह्रासके अनुसार कलियुगमें भी मनुष्योंके धर्म पृथक् रूपसे निर्दिष्ट हुए हैं। सतयुगमें तपस्या ही मनुष्योंका परम धर्म था, त्रेतामें ज्ञान ही श्रेष्ठ था, द्वापरमें यज्ञ कर्म और कलियुगमें केवल दानही सबसे श्रेष्ठ धर्मरूपसे वर्णित हुआ है। कवि लोग इस देवपरिमित बारह हजार वर्षको युग कहा करते हैं, इस ही सहस्र वर्षके परिमाणसे एक ब्राह्म दिन होता है, ब्राह्मरात्रिका परिमाण भी इतना ही है। जगत्‌के ईश्वर ब्रह्मा उस दिवसके अन्तमें योगनिद्रा अवलम्बन करके सोते हैं, रात्रि बीतनेपर जाग्रत हुआ करते है। जो लोग सहस्र युग पर्य्यन्त ब्रह्माका एक दिन और सहस्रयुगके अन्तभागको उनकी रात्रि जानते हैं, वेही अहोरात्रिके जाननेवाले है। निद्राके अनन्तर सावधान होनपर ब्रह्मा निर्व्विकार स्वरूपको मायासे विकारयुक्त करते है, फिर महत् भूतोंकी सृष्टि करनमे तत्पर होते हैं उससे ही व्यक्तात्मक मन उत्पन्न होता है। तेजोमय महत्तत्व स्वरूप ब्रह्म ही जगतका बीज है, उससे ही यह समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है; द्व्याभ्यन्तररहित उस एक मात्र भूतसे स्थावर जङ्गम सब प्राणी उत्पन्न होते है। ब्रह्मा दिनके प्रारम्भमें विबुद्ध होकर अविद्याके सहारे जगत्‌की सृष्टि करते हैं, सृष्टिकी आदिमें महत्तत्व और व्यक्तात्मक मन उत्पन्न होता है। ईश्वर पूर्व्वसर्गके अन्तमें सात मानस पदार्थोंको लय करके उत्तरसर्गके प्रारम्भमें उसकी सृष्टि किया करता है। दूरग और बहुधागामी प्रार्थना तथा संशयात्मक मन सिसृक्षाके जरिये प्रेरित होकर सृष्टिको अनेक रूपसे किया करता है। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि मनसे आकाश उत्पन्न होता है, उसका गुण शब्द है। आकाशसे सर्व्वगन्धको ढोनेवाला पवित्र और बलवान्

वायु उत्पन्न होता है, उसका गुण स्पर्श है। वायुसे भास्वर रोचिष्णु सफेद वर्णकी ज्योति उत्पन्न होती है, उसका गुण रूप है; अग्निसे रसात्मक जल उत्पन्न हुआ करता है, जलसे भूमि उत्पन्न होती है, उसका गुण गन्ध है, ये सब परम सृष्टि हैं। उत्तरोत्तर भूतोंमें पूर्व्वके भूतोंके सब गुण प्राप्त होते हैं। इन सब भूतोंके बीच जो भूत जबतक जिस प्रकार वर्त्तमान रहता है; उसका गुण भी तबतक उस ही प्रकार उसमे निवास करता है। कोई पुरुष जलके बीच गन्ध सूंघके मूढ़ताके कारण यदि उसे जलका ही गन्ध कहके माने, तो वह यथार्थमें उसका नहीं है, गन्ध पृथ्वीका गुण है; वायु और जल आदिमें वह आगन्तुक द्रव्य सम्पर्कसे मालूम हुआ करता है। ये महावीर्य्यशाली सात प्रकारके व्यापक पदार्थ अर्थात् महत्तत्व, आकाश तत्व और आकाशादि अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतोंके परस्पर न मिलनेसे प्रजाओंकी सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं होसकते। ये परस्परके सहारेसे मिलित होकर शरीर स्वरूप अवलम्बको प्राप्त होके पुरुष रूपसे कहे जाते हैं। पञ्चभूत, मन और दशों इन्द्रिय ये सोलह पदार्थ शरीरका आसरा करके एकत्रित और मूर्त्तिमान हुआ करते हैं; महत्तत्व आदि सब भूत भोगनेसे शेष रहे हुए कर्म्मके सहित उस सूक्ष्म शरीरमें प्रविष्ट होते हैं। भूतोंकाआदि कर्त्ता निज उपाधिभूत मायाके एकादश भून समस्त भूतोंको सङ्कलन करके तपस्याचरणके निमित्त उसमें ही प्रविष्ट हुआ करता है, पण्डित लोग उस ही आदि कर्त्ताको प्रजापति कहते हैं। वही शरीरान्तर वर्त्ती प्रजापति स्थावर जङ्गम जीवोंको उत्पन्न करता है। शरीरमे प्रवेश करनेके अनन्तर वह प्रजापति देवर्षि, पितर और मनुष्य लोकोंकी सृष्टि करनेमें तत्पर होता है; क्रम क्रमसे नदी, समुद्र, पहाड़, दिशा, वनस्पति, मनुष्य, किन्नर, निशाचर, पशुपक्षी, हरिन, सर्प और आकाश आदि नित्य वस्तु तथा घट पट आदि अनित्य वस्तुओंसे युक्त स्थावर जङ्गम पदार्थोंकी सृष्टि करता है। वे सब पहिले सृष्टिके समयमें जिन सब कर्म्मोंको प्राप्त हुए थे, फिर उत्पन्न होके उन्हीं कर्म्मोंको प्राप्त करते हैं। मनुष्य, किन्नर, निशाचर आदि जीवोंने विधाताके जरिये प्रकट होके हिंसक, अहिंसक कोमल, कठोर, धर्म्म, अधर्म्म, सत्य और मिथ्या आदि गुणोंको अवलम्बन किया अर्थात पहले सृष्टि समयमें जिनको जिन विषयोंमें अभिलाषा थी, इस जन्ममें भी उनको उस ही विषयमें इच्छा हुई, जगदिन्द्रजाल फैलानेवाले विधाता ही वियदादि सब महाभूतों, रूप आदि इन्द्रियों और द्रव्याकृति मूर्त्तियों नानात्व अर्थात् शुक्ति रजतकी भांति प्रति पुरुषमें विभिन्नता, तथा जीवोंके विषय विशेषमें विनियोग अर्थात् भोक्तृभाव सम्बन्ध बन्धन किया। कोई कोई मनुष्य कहा करते हैं, सब कर्म्मोंमें ही पुरुषकी सामर्थ है; इसलिये कर्म्म ही प्रधान है। दूसरे ब्राह्मण लोग कहा करते है सूर्य्य आदि सब ग्रह ही सत् असत् फलके देनेवाले हैं; इसलिये दैव ही प्रधान है। स्वभाव वादी पुरुष स्वभावको ही सबसे प्रधान कहा करते हैं। दूसरे मतवाले मनुष्य कहते हैं, दैवकर्म्म स्वभावके अनुग्रहीत होके फल देनेमें प्रवृत्त हुआ करता है, पौरुष कर्म्म और दैव, ये पृथक् नहीं हैं। ये तीनों ही मिलके फल उत्पन्न करते हैं, इनमेंसे प्रत्येकको प्रधानता नहीं है। जीवोंके अनेकत्व विषयमें क्या कारण है; जो इसे आर्हत-मतावलम्बी नास्तिकोंने विशेष रूपसे वर्णन नहीं किया, इसे निर्व्वाचन करनेमें भी उन लोगोंकी सामर्थ नहीं है, यह विषय अनिर्व्वचनीय है, ऐसा भी नहीं कह सकते। कर्म्म और दैव इन दोनोंके बीच अन्यन्तरका कारणत्व सुवच वा दुर्व्वच ही, दोनों ही इकट्ठे होनेपर कारण होसकते हैं.

ऐसी आशंका करके उक्त दोनोंको ही वे लोग कारण नहीं कहते और उन दोनोंके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण है, वह भी नहीं कह सकते । तप शिलारोहणादि निर्जराख्य धर्म्मके जरिये मोक्ष हुआ करता है, वे लोग उसे ही सिद्ध करते हैं । परन्तु रजोगुण और तमोगुणसे रहित अन्तःकरणवाले सम्प्रज्ञात अवस्थामें स्थित योगीलोग ब्रह्मको ही कारण रूपसे देखते हैं ; इस ही लिये वे लोग समदर्शी कहे जाते हैं । जीवोंके पक्षमें तपस्या ही मोक्षका कारण है, मनोनिग्रह रूपी शम और बाह्येन्द्रिय निग्रहात्मक दम उस तपस्याके मूल हैं । मनुष्य मन ही मन जो सब कामना करता है, तपस्याके सहारे वह सब पाता है । जिसने जगत्को उत्पन्न किया है, तपस्याके सहारे जीव उसे पाता है, और उसहीका रूप होकर सब जीवोंके ऊपर प्रभुता करनेमें समर्थ हुआ करता है । ऋषि लोग तपोबलसे ही दिन रात वेद पढ़ते हैं, वह अनादि निधन विद्यारूपी वेदवाणी स्वयम्भूके जरिये शिष्य प्रशिष्य सम्प्रदाय क्रमसे प्रवर्त्तित हुई है । सृष्टिके पहले वेदमयी दिव्यवाणी विद्यमान थी, उससे ही समस्त वृत्तान्त उत्पन्न हुए हैं । सृष्टिके आरम्भमें ईश्वर वेदशब्दोंसे ऋषियोंके नाम धेय, जीवोंके अनेक रूप और सब कर्म्मोंका प्रवर्त्तन निर्म्माण करता है , वेदके बीच ऋषियोंके जो नाम धेय विहित थे सृष्टि आरम्भके समय विधाताने उसे ही विधान किया । नाम भेद, तपस्या, कर्म्म और यज्ञोंको लोकसिद्धि कहते हैं, और आत्मसिद्धिके विषय वेदमें दश प्रकारसे वर्णित हुए हैं । वेददर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, कि वह वेद और वेदान्त वाक्योंके बीच अत्यन्त गहनभावसे विद्यमान है । पहले कहे हुए दश प्रकारके क्रम यही हैं, कि वेदाध्ययन, दारपरिग्रह करके गार्हस्थ्य अवलम्बन कृच्छ्रचान्द्रायण आदि वाणप्रस्थाश्रम रूपी तपस्या, सर्व्वाश्रम साधारण सन्ध्योपासना आदि कर्म्म, ज्योतिष्टोमादि यज्ञ, कीर्त्तिकर तड़ाग और आराम आदि पूर्त्तकर्म्म, ध्यान आदि मानस धर्म्म वैश्वानराख्यका कारण ब्रह्मदर्शन दहरादि ग्रह उपासना और विशुद्धस्वरूपका ज्ञान, इन दशों प्रकारके क्रमके जरिये सांसारिक दुःखोंसे पार होकर परब्रह्मको प्राप्त किया जाता है । इस ही लिये वेद और वेदान्त वाक्य उपनिषदोंके बीच ये दश प्रकारके क्रम आत्मसिद्धिके उपाय रूपसे वर्णित हुए हैं । देहाभिमानी जीव जो द्वैत दर्शन किया करता है, वह कर्म्मज है ; कर्म्मके नष्ट होनेपर सुषुप्ति और समाधि समयमें उसका अभाव होता है । सुख, दुःख, सर्दी, गर्म्मी, मान, अपमान आदि द्वन्द्वयुक्त द्वैतदर्शनको ही आत्मसिद्धि कहा जाता है । पुरुष विज्ञान बलके प्रभावसे स्वातन्त्र्य भाव रूप भेद परित्याग किया करता है । दो प्रकार ब्रह्मको जानना उचित है, पहला शब्द ब्रह्मरूप प्रणव, दूसरा परब्रह्म ; जो प्रणव उपासना विषयमें निपुण होते हैं, वेही परब्रह्मको प्राप्त हुआ करते हैं । क्षत्रियोंको पशुहिंसा, वैश्योंको धान्य आदि उत्पन्न करना, शूद्रोंको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंकी सेवा करनी और ब्राह्मणोंको ब्रह्मकी उपासना ही यज्ञस्वरूप है त्रेतायुगमें यज्ञोंकी इस ही प्रकारसे विधि हुई थी , सतयुगमें किसी विधिका प्रयोजन नहीं था ; क्योंकि उस समयमें ये सब प्रवृत्ति स्वत सिद्ध थी । द्वापरमें लोग यज्ञकर्म्म आरम्भ करनेकी इच्छा करते थे, कलियुगमें सब कोई उस विषयसे विमुख हुए हैं । सतयुगमें मनुष्य अद्वैतनिष्ठ थे, वे लोग ऋक्, यजु, सामवेद और स्वर्ग आदिके साधन काम्यकर्म्म यज्ञादिकोंको तपस्यासे पृथक् जानके वह सब परित्याग करके केवल तपस्याका अनुष्ठान करते थे । त्रेतायुगमें धर्म्मविषयमें मनुष्योंकी स्वतःप्रवृत्तिके अभाव निबन्धनसे धर्म्म-

संशयरहित शासन कर्त्ता जो सब महाबलवान् राजा उत्पन्न हुए थे, वे लोग स्थावर, जङ्गम आदि सब प्राणियोंको सब तरहसे धर्म्मविषयक शासन करते थे, इसहीसे त्रेतायुगमें सब वेद, सब यज्ञ और वर्णाश्रमोंके यज्ञादिकोंके अनुष्ठान करानेमें तत्पर थे। द्वापरमें परमायुका परिमाण घटनेसे शासन करनेवाले सभी भ्रष्ट हुए। कलियुगमें सब निखिल वेद थोड़े से दीख पड़ते हैं, सर्व्वत्र नहीं दीखते, केवल अधर्म्म से पीड़ित होनेसे यज्ञ और वेद नष्ट होरहे हैं। सतयुगमें जो धर्म्म ब्राह्मण मात्रमेंही दीख पड़ता था इस समय वह चित्तको जीतनेवाले योगनिष्ठ, वेदान्त सुननेमें तत्पर ब्राह्मणोंमें प्रतिष्ठित होरहा है। त्रेतायुगमें अग्निहोत्र करनेवाले ब्राह्मण लोग आचार व्यवहारका अतिक्रम न करके वेदोक्त प्रमाणके अनुसार यज्ञ आदि धर्म्म, और उसके सहित एकादशी उपवास आदि व्रत और तीर्थ दर्शनादि धर्म्म-कर्म्म इच्छा पूर्व्वक निबाहते थे; वैदिक द्विजाति भी स्वर्गकी कामना करके यज्ञ करते थे। द्वापरयुगमें ब्राह्मण आदि तीनों वर्णपुत्रकी कामनासे यज्ञ करनेमें प्रवृत्त होते थे। कलियुगमें केवल शत्रु मारण आदिकी इच्छासे लोग यज्ञ किया करते हैं, युगयुगमें इस ही प्रकार धर्म्म अलग अलग दीख पड़ता है। जैसे प्रावृट् ऋतुमें अनेक प्रकारके स्थावर, जङ्गम, वृक्ष लता गुल्म आदि वर्षासे उत्पन्न होकर बढ़ते हैं, वैसेही युगयुगमें धर्म्माधर्म्मकी घटती बढ़ती हुआ करती है। जैसे ऋतु कालमें सर्द्दी गर्म्मी आदि अनेक भांतिके ऋतुके चिन्ह पर्य्यायक्रमसे दीखते हैं, वैसेही ब्रह्मा और हर आदिमें सृष्टि संहार सामर्थकी वृद्धि और ह्रास दीख पड़ती है, चतुर्युगात्मक कालपुरुषके कलाकाष्ठादि भेदसे नानात्व, धर्म्माधर्म्मकी ह्रास वृद्धि भेदसे विभिन्नत्व और उसका अनादि निधनत्व प्रभृति तुम्हारे समीप वर्णन किया है। वह काल ही प्रजाओंको उत्पन्न करके संहार करता है। जो सब जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज प्राणी स्वाभाविक सुख दुःखसे युक्त होकर वर्तमान हैं, काल ही उनका अधिष्ठान है, इसलिये समय ही सब भूतोंको धारण कर रहा है, और प्रतिपालन करता है, समय ही स्वयं सर्व्वभूत स्वरूप है। हे तात! समय केवल सर्व्वभूत स्वरूप ही नहीं है, समय सर्ग आदि आत्म स्वरूप है। तुमने मुझसे जो पूछा था, मैंने उसके अनुसार सृष्टि, काल, यज्ञ, आज्ञादि कर्म्म, उनके प्रकाशक वेद, उनका अनुष्ठान करनेवाला देहादि परिग्रह कार्य्य और क्रियाफल स्वर्गादि विषयोंको वर्णन किया। ये सभी काल स्वरूप पुरुषमय हैं।

२३१ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, दिन बीतनेपर रात्रिके आरम्भमें ईश्वर आत्मामें सूक्ष्मभावसे स्थित इस जगत्‌को जिस प्रकार परिणत करता है, उत्पत्ति क्रमसे विपरीत उस प्रलयका विषय कहता हूं सुनो। आकाशमें द्वादश आदित्य और सङ्कर्षणके मुखके उत्पन्न हुई अग्निकी अर्चि इस दृश्यमान जगत्‌को जलानेमें प्रवृत्त होती है। उस समय सब जगत् सोरी और अग्नि यो ज्वालासे परिपूरित होकर जाज्वल्यमान हुआ करता है। पृथ्वी मण्डलमें जो सब स्थावर जङ्गम जीव हैं, वेही अगाड़ी प्रलयको प्राप्त होते हैं और लय होनेपर भूमिके साथ मिल जाते हैं। स्थावर और जङ्गम जीवोंके लय होनपर भूमि वृक्षहीन और तृण रहित होकर कछुएकी पीठके समान दीख पड़ती है। जिस समय जल भूमिकी कठोरताका हेतु गन्धगुण ग्रहण करता है, उस समय पृथ्वी घृतकी भांति कठोरता परित्याग करके जलमय होजाती है। तब जल तरङ्गमाला और महा-

शब्दवीयुक्त होकर इस दृश्यमान जगत्को अपने रूपमें लीन करते हुए प्रतिष्ठा प्राप्त करके स्थिति तथा विचरण करता है।

हे तात! जब अग्नि जलके गुणको ग्रहण करती है, उस समय उसका रस अग्निसे सूख-नेसे जलभी अग्निमें लीन होता है। जिस समय अग्निशिखा मध्यमें स्थित आदित्य मण्डलको परिपूरित करती हैं उस समय यह समस्त आकाशमण्डल अग्निशिखासे परिपूर्ण होकर प्रज्वलित हुआ करता है,। वायु जब अग्निका गुण ग्रहण करता है, तब उस समय अग्नि विरूप होकर प्रशान्त होती है, अनन्तर अत्यन्त बृहत वायु दोधूयमान हुआ करता है, और अपने महत् शब्दको अवलम्बन करके नीचे, ऊपर, तिर्य्यग प्रदेश तथा दशों दिशाको आक्रमण कर धावित होता है। शेषमें जब आकाश वायुके स्पर्श गुणको ग्रास करता है, तब वायु शान्त होजाता है, और शब्दके पूर्व्वरूप वर्ण विभाग रहित नादकी भांति आकाशमें स्थित रहता है; वायु आदि दृश्य पदार्थोंमें जिसका शब्द वर्त्तमान है वह आकाश उस समय रूप हीन, रस रहित स्पर्श वर्ज्जित, गन्धहीन और अमूर्त्त होकर नादकी भांति स्थित करता है।

अनन्तर आकाशका अभिव्यक्तात्मक शब्द गुण मनके जरिये लय होता है, मनका व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप ब्राह्म प्रलयमें लीन होजाता है। उस समय चन्द्रमा आत्मगुण अर्थात् निःसीम ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य्य धर्म्मरूप कर्म्ममें आविष्ट होकर हिरण्यगर्भ सम्बन्धीय समष्टि मनको नष्ट करता है, मन शान्त होनेपर भी केवल चन्द्रमामें वर्त्तमान रहता है। योगी पुरुष चन्द्रमा नामक उपाधियुक्त सङ्कल्पमात्र शरीर मनको बहुत समयतक वशीभूत करनेमें समर्थ होते हैं, जब सङ्कल्प विचारात्मिका चित्तवृत्तिको ग्रास करता है, तब सङ्कल्पको रोकना अत्यन्त दुःसाध्य है। इस सङ्कल्पके वशीकरणका यही उपाय है कि "यह सब मैंही हूं," इसही प्रकारका ज्ञान सबसे उत्तम है। "मैं" इतना ही प्रत्यय स्वरूप काल सबका अनुभव करानेवाला विज्ञानको ग्रास करता है, और बल नामक शक्ति ही काल स्वरूप है, यह वेदमें प्रतिपन्न है। जैसे बल कालको कवलित करता है, काल भी उस ही प्रकार बलको ग्रास किया करता है। विदेह कैवल्यरूप शान्त बुद्धि पुनरुत्थानाभाव निबन्धन-कालको वशमें कर रखती है। विदेह कैवल्य-स्वरूपी शान्तबुद्धि जिस समय कालको वशीभूत करती है, उस समय विद्वान् योगी आकाशके गुणनाद अर्थात् अर्द्धमात्रा बिन्दुके अनुसार आत्माको परब्रह्ममें संयुक्त करता है। वह परमात्माही नित्य निर्म्मुक्त सर्व्वोत्तम परब्रह्म है; वही इस प्रकार सब भूतोंकी प्रलय किया करता है, यह प्रलयका विषय कहा गया है रसरीमें सर्पभ्रमकी भांति सब भूतोंके लीन होनेपर केवल अकेला ब्रह्म ही शेष रहता है। परमात्मदर्शी योगियोंने शास्त्रमें कहेहुए विद्यामय इस बोधविषयको निःसंशयरूपसे देखकर यथावत वर्णन किये हैं। ब्रह्मा इस ही प्रकार बार बार सृष्टि और प्रलय किया करता है। सहस्र युग पर्य्यन्त सृष्टिकाल ही उसका दिन और सहस्र युग पर्य्यन्त प्रलयका समय ही उसकी रात्रिरूपसे गिनी जाती है।

२३२ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, हे तात! तुमने जो भूतग्रामका विषय पूंछा था, मैंने उस विषयको वर्णन किया; अब ब्राह्मणोंके जो कुछ कर्त्तव्य हैं। उसका विवरण करता हूं सुनो। द्विजातियोंके जातकर्म्म आदिसे समावर्त्तन पर्य्यन्त सब दक्षिणान्वित क्रिया वेद जाननेवाले आचार्य्यके निकट सिद्ध करनी होगी। यज्ञवित् ब्राह्मण गुरुसेवामें रत रहके अखिल वेदको पढ़कर आचार्य्यसे

अरण्यमें होके गृहस्थाश्रम अवलम्बन करे; अथवा आचार्य्यसे अनुज्ञात होकर जबतक शरीर धारण करे, तबतक चारों आश्रमोंके अन्यतरको विधिपूर्व्वक अवलम्बन करे। अथवा ब्रह्मचर्य्यके अनन्तर दारपरिग्रह कर सन्तान उत्पन्न करके जङ्गलके बीच गुरुजनोंके निकट यतिधर्म्मके जरिये निवास करे। महर्षि लोग गृहस्थको इन सब धर्मोंका मूल कहा करते हैं गार्हस्थ आश्रममें पक्क कषाय अर्थात् लय और विक्षेपके अभावमें राग आदि वासनाके जरिये शुद्धता निबन्धनसे जिनका चित्त अखण्डवस्तुको अवलम्बन करनेमें समर्थ नहीं है, वैसे ही ब्राह्मण जितेन्द्रिय होनेपर सब आश्रमोंमें ही सिद्धिलाभ करनेमें समर्थ होते हैं।

पुत्रवान् श्रोत्रिय और याजीय ब्राह्मण तीनो ऋणोंसे विमुक्त हो हैं, अनन्तर यह कर्म्मसे पवित्र होकर आश्रमान्तरमें गमन करें, पृथ्वीके बीच ब्राह्मण जिस स्थानको पवित्र समझें, वहां पर वास करें और श्रेष्ठ यश उपार्ज्जनमें यत्नवान् होवें। उत्तम महत् तपस्या, सब विद्याकी पारदर्शिता, यज्ञ और दानसे द्विजोंके यशकी वृद्धि होती है, इस लोकमें ब्राह्मणोंकी जितने परिमाणसे यशस्करी कीर्त्ति हुआ करती है, वह उतने ही परिमाणसे पुण्यवान लोगोंके अनन्त लोकका उपभोग करते हैं। ब्राह्मण अध्ययन, अध्यापन, यजन और याजन करें, कभी वृथा प्रतिग्रह वा वृथा दान न करे, यजमान, शिष्य और कन्यासे जो महत् धन प्राप्त हो, वह यज्ञकार्य्यमें व्यय और दान करें, किसी भांति अकेले उपभोग न करे। देवता ऋषि, पितर, गुरु, आतुर और भूखोंके लिये जो दान किया जाता है गृहस्थके पक्षमें उससे बढ़के दूसरा तीर्थ और कुछ भी नहीं है। अन्तर्हित शत्रु सन्तप्त और शक्तिके अनुसार दान प्राप्त करनेमें अनुरक्त ब्राह्मणोंको उचित है, कि निज शक्तिको अतिक्रम करके प्राप्त हुई वस्तुओंमेंसे भी अधिक दान करें। अनुरूप अर्च्चनीय ब्राह्मणोंको कुछ भी अदेय नहीं है, प्राचीन पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि उच्चश्रवा घोड़ा भी साधुओंको प्रापय है। महाव्रत राजा सत्यसन्धने इच्छानुसार विनती करके निज प्राण दानसे ब्राह्मणका प्राण बचाके सुरपुरमें गमन किया है। सास्कृतिपुत्र रन्तिदेव महात्मा वशिष्ठको न बहुत ठण्ढा न बहुत गर्म्म जल दान करके अमरलोकमें सम्मान भाजन हुए हैं, इन्द्रदमन बुद्धिमान् अत्रय राजाने किसी पूजनीय ब्राह्मणको अनेक तरहका धन दान करके अनन्तलोकमें गमन किया है। उशीनरपुत्र शिबिराजाने राज्याङ्गके सहित निज और सपुत्र ब्राह्मणोंको दान करके इस लोकसे नाकपृष्ठ पर आरोहण किया है। काशिराज प्रतर्द्दन ब्राह्मणको अपना दोनों नेत्र दान करके इस लोक और परलोकमें अतुल कीर्त्तिभागी हुए। देवावृध राजाने आठ शलाकाओंसे युक्त सुवर्णमय महामूल्यवान छत्र दान करके राज्य वासियोंके सहित भूलोकमें गमन किया, अत्रिपुत्र महातेजस्वी सास्कृतिने शिष्योंको निर्गुण ब्रह्मविषयक उपदेश देकर परमश्रेष्ठ लोकोंको पाया है। प्रतापवान अम्बरीष राजा ग्यारह अर्बुद गऊ ब्राह्मणोंको दान करके राज्यके सहित सुरलोकमें गये। सावित्रीने दोनों दिव्य कुण्डल और जनमेजयने ब्राह्मणके निमित्त अपना शरीर छोड़के उत्तम लोक पाया है। वृषादर्भि युवनाश्व समस्त रत्न प्रिय स्त्रियां और रमणीय गृह दान करके स्वर्ग लोकमें निवास करते हैं। विदेहवंशीय निमि राजाने ब्राह्मणोंको राज्य दिया, जमदग्निपुत्रने पृथिवी दान की और गय राजाने नगरके सहित पृथ्वी ब्राह्मणोंको समर्पण किया।

जैसे प्रजापति प्रजाकी रक्षा करते हैं, वैसे ही अनावृष्टिके समय भूतभावन वशिष्ठदेवने सब जीवोंको जीवित रखा था। करन्धमके पुत्र

पवित्र बुद्धिवाले मरुत अङ्गिराको कन्या दान करनेसे शीघ्र ही स्वर्गमें गये। पाञ्चालराज बुद्धिमान ब्रह्मदत्तने अग्रगण्य द्विजोंको निधि और शङ्ख दान करके भी शुभलोकोंको पाया है। मित्रसह राजा महानुभाव वशिष्ठ देवको प्रिय मदयन्ती दान करके उनके सहित सुरलोकमें गये; महायशस्वी राजर्षि सहस्रजित् ब्राह्मणोंके निमित्त प्रिय प्राण त्यागके सर्व्वोत्तम लोकोंको प्राप्त किया है। राजा शतद्युम्न मुद्गल ऋषिको सर्व्वकाम सम्पूर्ण सुवर्णमय गृह दान करके स्वर्गमें गये। द्युतिमान नाम प्रतापवान शाल्व राज ऋचीकको राज्य दान करके अत्यन्त उत्तम लोकोंमें गया है। राजर्षि मदिराश्वने हिरण्यहस्तको सुन्दरी कन्या दान करके देवताओंसे प्रशंसित लोकोंमें गमन किया है, राजऋषि लोमपाद ऋष्यशृङ्गको शान्ता नामी कन्या दान करके सर्व्वकाम सम्पन्न हुए। महातेजस्वी प्रसेनजित् राजाने सात हजार बछड़े युक्त गऊ दान करके उत्तम लोक प्राप्त किया है। ये सब लोग और इनके अतिरिक्त शिष्टस्वभाव जितेन्द्रिय बहुतेरे महात्मा लोग दान और तपस्यासे स्वर्गमें गये हैं। जबतक यह पृथ्वी है, तबतक उन लोगोंकी कीर्त्ति प्रतिष्ठित रहेगी, क्या कि इन लोगोंने दान, यज्ञ और सन्तान उत्पन्न करके अमर लोक प्राप्त किया है।

२३३ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, ब्राह्मण वेदमें कही हुई सब साङ्ग वेदविद्या पढ़े। ऋक्, साम, वर्ण, अक्षर, यजु और अथर्व, इन षटकर्म्मोंमें पूर्णरीतिसे वर्त्तमान रहके भगवान् वास करता है। वेदवादको जाननेवाले अध्यात्म विद्यामें निपुण सत्त्ववन्त महाभाग ब्राह्मण लोग उत्पत्ति और प्रलयके कारण परमात्माको देखते हैं। ब्राह्मण इस ही प्रकार धर्म्म अवलम्बन करते हुए जीवनका समय व्यतीत करे। शिष्टोंकी भांति कर्म्म करनेमें तत्पर होवे और सब भूतोंके अविरोध्य वृत्तिलाभकी अभिलाष करे। जो गृहमेधी साधुओंसे विज्ञान लाभ करके शिष्ट और शास्त्र विचक्षण होकर इस लोकमें निज धर्म्मके अनुसार कर्म्म करता और सात्त्विक कर्म्मोंमें विचरता हुआ प्रागुक्त षट् कर्म्मोंमें रत रहता है। वही ब्राह्मण है। इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मण सदा श्रद्धावान् होकर पञ्च यज्ञोंका विधान करे। धैर्य्यशाली, अप्रमत्त, दान्त धर्म्मवित्, यत्नवान्, हर्षहीन, मदरहित और क्रोध वर्ज्जित ब्राह्मण अवसन्न नहीं होते। दान, वेदाध्ययन, यज्ञ तपस्या, लज्जा, सरलता और इन्द्रिय दमन, ये सब विषय ब्राह्मणोंके तेजको बढ़ाते और पापोंको दूर करते हैं। पाप पङ्कको धोनेवाले मेधावी मनुष्य लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर काम क्रोधको वशमें करते हुए ब्रह्मपद प्राप्तिके लिये कामना करें, तीनों अग्नि और ब्राह्मणोंकी पूजा करें, देवताओंके निकट प्रणत होवे, अकल्याणको त्याग दे, ब्राह्मणोंको यही पूर्व्वानुष्ठेय वृत्ति विहित हुई। शेषमें ज्ञानागमके सहारे कर्म्म करनेसे उस विषयमें उसे सिद्धि प्राप्त हुआ करती है बुद्धिमान मनुष्य पञ्चेन्द्रिय जलसंयुक्त, मन्युपङ्क समन्वित, अनिभवनीय भयङ्करी अत्यन्त दुस्तर लोभके मूल महानदीसे अनायास ही पार होते हैं। यह देखता रहे, कि विविदृष्ट महा बलसे युक्त प्रतिघात रहित अत्यन्त मोहनकाल सदा ही उपस्थित होरहा है।

जगत् स्वभाव स्रोतमें पड़के सदा ही भासमान होता है, काल स्वरूप महा आवर्त्त, मासमय तरङ्ग, ऋतुरूपी बेग, पक्षमय उलप तथा, निमेष आदि फेन, दिनरात्रि जल, घोरकाम ग्राह, वेद और यज्ञरूपी नौका, जीवोंके धर्म्म स्वरूप द्वीप, अर्थाभिलाषमय दूध सत्य वचनरूपी मोक्षतीर, हिंसातरुवाही, दो ताकाओंसे युक्त प्रवाहके बीचमें स्थित संसार स्रोतके अरिये विधा-

दैवष्ट जीव निरन्तर शयन गृहमें आकृष्ट होता है। स्थिरचित्तवाले मनीषि लोग प्रज्ञामय नौकाके सहारे इस संसार-स्रोतसे पार होते हैं प्रज्ञामय नौकासे रहित अल्पबुद्धि मनुष्य इससे पार होनेका और उपाय क्या करेंगे। बुद्धिमान् मनुष्य उपस्थित विपदसे निस्तार लाभ कर सकते हैं, दूसरे लोग कभी विपदसे छूटनेमें समर्थ नहीं हैं। प्राज्ञ पुरुष दूर होनेपर भी सब स्थानोंके दोष गुणको देखते हैं। सत्वकामात्मा, डावाडोल चित्त, अल्पचेता, अप्राज्ञ, पुरुष संशयसे पार नहीं होते; जिसका अस्तित्व है, वह कभी विनष्ट नहीं होता। उत्तरणरहित मनुष्य महादोषसे मोहित होकर नियमित होता है, कामरूप ग्रहसे जो आक्रान्त हुआ है, उसका ज्ञान भी उत्तरणका कारण नहीं होता; इसलिये विचक्षण मनुष्य उन्मज्जनके लिये यत्न करे, जो ब्राह्मण होते हैं, उनहीका उन्मज्जन हुआ करता है, जिन्होंने शुद्धवंशमें जन्म लिया है, स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरोंमें आत्म निश्चय विषयम जिन्हें सन्देह है, जो यजन अध्ययन और दान, इन तीनों कर्म्मोंका साधन किया करते हैं, वैसे ब्राह्मण बुद्धिबलके सहारे जिस प्रकार निस्तार लाभ कर सकें, उस ही भांति उन्मज्जनमें सावधान रहें। संस्कारयुक्त, नियमनिष्ठ, संयतात्मा, दमशील, प्राज्ञपुरुषोंको इस लोक और परलोकमें अव्यवहित सिद्धि हुआ करती है, गृहस्थ पुरुष क्रोध और असूयारहित होकर ऐसे ही ब्राह्मणोंके बीच निवास करें और विषसाशी होकर सदा पञ्चयज्ञ करनेमें यत्नवान् रहे। साधुओंके आचरित धर्म्मके जरिये जीवन बिताते हुए शिष्टोंकी भांति कार्य्योंका अनुष्ठान करें; लोगोंके संग विरोध न करके अनिन्दित वृत्तिलाभकी इच्छा करे। जो लोग शिष्टाचारसे युक्त और विचक्षण होकर विज्ञानतत्व सुनते हैं। और निज धर्म्मके अनुसार सब कर्म्मोंका निर्व्वाह किया करते हैं, वे कर्म्मोंसे सङ्कीर्ण नहीं होते। क्रियावान्, श्रद्धायुक्त दान्त, प्राज्ञ, अनसूयक और धर्म्माधर्म्मके विशेषज्ञ ब्राह्मण दुस्तर विषयोंसे पार होते हैं। धृतिमान अप्रमत्त दान्त, धर्म्मवित आत्मवान् और हर्ष, मद क्रोधसे रहित ब्राह्मण अवसन्न नहीं होते। ब्राह्मणोंकी यही पुरानी वृत्ति विहित हुई। ज्ञानवत्तासे सब कर्म्मोंको सिद्ध करते हुए ब्राह्मण लोग सब विषयोंमें ही सीद्धि लाभ कर सकते हैं।

मूर्ख मनुष्य धर्म्मकी इच्छा करके भी अधर्म्म किया करता है, अथवा मानो वह शोचता करते हुए अधर्म्म सदृश धर्म्माचरण करता है। "धर्म्म करता हूं" समझके कोई अधर्म्म और कोई अधर्म्मकी इच्छा करके भी धर्म्म करता है। मूढ़ जीव उक्त दोनों प्रकारके कर्म्मोंको न जानके बार बार जन्म लेके मृत्युके मुखमें पड़े हैं।

२३४ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, जैसे स्रोतके जरिये बहता हुआ मनुष्य कभी डूबता और कभी उतरके शेषमें नौकाका अवलम्बन करता है, वैसे ही संसार स्रोतमें भासमान पुरुषोंको यदि वक्ष्यमाण शान्ति नामक कैवल्य प्राप्तिमें अभिलाष हो, तो उनको ज्ञानरूपी नौका अवलम्बन करनी पड़ेगी। जिन सब धीर लोग ध्यानजनित साक्षात्कारके जरिये आत्मनिश्चय किया है, वे लोग ज्ञानरूपी नौकाके सहारे मूर्ख लोगोंको पार किया करते हैं। अज्ञानी लोग जब अपनेको ही किसी प्रकार उत्तीर्ण करनेमें समर्थ नहीं हैं, तब दूसरेको किस प्रकार पार करेंगे, राग आदि दोषोंसे रहित मननशील मनुष्य पुत्र कलत्रादिकोंमें आसक्ति रहित होकर देश, काल, अनुराग, अर्थ, अनुपाय, अपाय, निश्चय,

तेज, आहार, संहार, मन और दर्शन तथा योगकी सहाय, इन बारहोंका अनुसरण करे। जो श्रेष्ठ स्थानकी, इच्छा करे उन्हें बुद्धिके सहारे मन और वचनको संयत करना होगा; और जो लोग आत्माकी शान्तिकी अभिलाषा करते हैं, वे ज्ञानके सहारे बुद्धिका संयम करें। वाक्य मनके अधिष्ठाता शान्त आत्माको जिन्होंने जाना है, वे चाहे साधु हों, वा असाधु हों, सब वेदके जाननेवाले अथवा अवेदज्ञ हों, धार्म्मिक वा याज्ञिक वा अत्यन्तही पाप करनेवाले हों, पुरुष प्रवर तथा क्लेश युक्तही होवें, वे इस प्रकारके जरा मरण सागर स्वरूप महादुर्गसे अवश्यही उत्तीर्ण होते हैं। पहली कही हुई रीतिसे अनुष्ठान करना तो दूर रहे, जिन्होंने केवल शान्त आत्माको जाननेकी इच्छा की है, वे कर्म्मकाण्ड अतिक्रम करके निवास करते हैं, निज कर्म्मोंको त्यागनेसे दोषग्रस्त नहीं होते। यज्ञादि कर्म्म जिसके ज्ञान सारथीका उपवेशन स्थान है, अकार्य्योंसे निवृत्ति रूपी लज्जा जिसकी रथगुप्ति है, प्रागुक्त उपाय और अपाय जिसकी धुरीदण्ड है, अपान जिसके पहिये हैं, प्राण जिसका जुआ है, प्रज्ञा और आयु जिसका जीव बन्धन स्थान है, सावधानता जिसका बन्धुर अर्थात् दोनों फलकोंका संश्लेष स्थल है, आचार स्वीकार जिसका नेमिस्वरूप दर्शन, स्पर्शन, घ्राण और श्रवण, ये चारों जिसके अश्वादिरूपी वाहन हैं; शम, दम आदि प्रबलता जिसकी नाभि, सब शास्त्र ही जिसके कोड़े, शास्त्रार्थ निश्चय ज्ञान ही जिसका सारथी, क्षेत्रज्ञ जिसका अधिष्ठाता, श्रद्धा और दम जिसका पुरःसर और त्याग जिसका सूक्ष्म अनुचर है, वह शौचाचारसे मालूम होनेवाला ध्यान गोचर और सुमुक्ष योजित दिव्य रथ ब्रह्मलोकमें बिराजता है। ऐसे रथपर चढ़नेमें शीघ्रतायुक्त होकर जो योगीश्वर परब्रह्मको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं उनके पक्षमें शीघ्रगामी अन्तरङ्ग बिधि कहता हूं सुनो।

यमनियमादिसे युक्त स्थिर वचनशाली जो सब धारणा अर्थात् एक विषयमें चित्त लगानेका अभ्यास करते हैं, उसमेंसे विप्रकृष्टतर सूर्य्य, चन्द्र, ध्रुव मण्डल आदि धारणा है, और सन्निकृष्टतर नासाग्र भ्रूमध्य आदि विषय भेदसे विविध धारणा हैं उन्हें प्रशिष्य और प्रपौत्र आदि शब्दकी तरह प्रधारणा कहते हैं। योगी पुरुष उन्हीं सब धारणायुक्त बुद्धिके जरिये क्रमसे पार्थिव जलीय, तैजस, वायवीय और आकाश सम्बन्धीय ऐश्वर्य्य लाभ करते हैं, और क्रम क्रमसे अहङ्कार तथा अव्यक्तका ऐश्वर्य्य प्राप्त करते हैं, अर्थात् ब्रह्मादि कार्य्यरूपको निज निज कारणोंमें संहार करके विशुद्धचित्त होकर परमात्माका दर्शन करते हैं; योगमें प्रवृत्त योगियोंके बीच जिस योगीका जैसा विक्रम है अर्थात् जिसका जैसा अनुभव क्रम होता है, वह और देहाभ्यन्तरमें परमात्मदर्शी योगियोंकी सिद्धि अर्थात् पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंके जय करनेका विषय कहता हूं सुनो। प्रति शरीरमें समवस्थित आत्माका वक्ष्यमाण रूप परित्याग अर्थात् गुरुके जरिय उक्त युक्तिके जरिये स्थूल देहका अध्यास छोड़के सूक्ष्मनिबन्धन योगी लोग अन्तःकरणमें उसे देखते हैं, जैसे शिशिर सम्बन्धीय सूक्ष्म धुआं आकाशमण्डलको अवलम्बन करता है, वैसे ही देहके मुक्त हुए आत्माका पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अनन्तर धुएंका ठहराव होनेपर दूसरा रूप दीख पड़ता है, वह आकाशस्थित जलरूपकी भांति देहके भीतर दीखता है; जलका व्यतिक्रम होनेपर लोहितवर्ण अग्निरूप प्रकाशित होता है। और अग्निरूपके शान्त होनेपर वृक्षोंको फेंकनेवाला शाणितशस्त्र सवर्ण वायुका रूप प्रकट हुआ करता है, उस समय ऊर्णतन्तुकी भांति अत्यन्त लघु, और उसहीके समान वायु अवलम्बरहित आकाशमें दौड़ता हुआ करता है। अनन्तर वायुका सूक्ष्म स्वरूप मलिनतारहित प्रकाश-

अब स्वच्छ आकाशमें लीन होनेपर आकाश मात्र प्रकाशित होता है। ब्रह्मजिज्ञासु योगीके चित्तकी अत्यन्त शुभ्रता और सूक्ष्मताके विषयको शास्त्रकारोंने इस प्रकार कहा है, कि प्रागुक्त प्रकारसे भूमि, जल, अग्नि और आकाश जयके जरिये भूतशुद्धिप्रकार शास्त्रकारके बीच प्रसिद्ध था; अब सम्प्रदाय समूहके अपरिज्ञान निबन्धनसे उसका यथा वाचत अनुष्ठान नहीं होता। पूर्व्वोक्त प्रकारसे पञ्चभूतोंको जय करनेसे, जो सब फलोदय होते हैं, वह मुझसे सुनो, योगसिद्ध पुरुषको पार्थिव ऐश्वर्य्यके जरिये इस लोकमें सृष्टिकी सामर्थ उत्पन्न होती है, वह प्रजापतिकी भांति अक्षुब्ध होकर शरीरसे प्रजाकी सृष्टि कर सकता है। श्रुतिमें प्रतिपन्न है, कि वायुको जय कर सकनेसे योगसिद्ध पुरुषका एकमात्र अङ्गुष्ट अङ्गुलीके जरिये अथवा हाथ पांवके सहारे सारी पृथ्वीको कपानेकी सामर्थ होती है। आकाश जय करनेपर वह आकाशके वर्ण समान होके आकाशकी भांति सर्व्वगत होके प्रकाशित होता है; वर्णके अनुसार ज्ञेय होनेपर भी रूपहीनता निबन्धनसे अन्तर्द्धान शक्ति प्राप्त होती है। जल जय करनेका यही फल है, कि जलको जय कर सकनेसे इच्छानुसार अगस्तकी भांति वापी, कूप, तड़ाग आदि जलाशयोंको पी सकते हैं, आकाश जय करनेसे रूप ही आकाश स्वरूपमें अन्तर्द्धान हुआ करता है। अग्नि जयसे आकृति रूलसे भी अदृश्यत्व उत्पन्न होता है। अहंकारको विशेष रूपसे जय कर सकनेसे सिद्ध पुरुषके समीप पञ्चभूत ही वशीभूत हुआ करते हैं। पृथ्वी आदि पञ्चभूत और अहंकारकी आत्मभूता बुद्धिको जय कर सकनेसे सिद्ध योगी सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त और सर्व्वज्ञ होता है; दोषरहित प्रतिभा अर्थात् संशय विपर्य्ययसे हीन समस्त ज्ञान उसके समीपवर्त्ती हुआ करते हैं। वह बुद्धादि रूपसे व्यक्त आत्माको अव्यक्त अर्थात् जगत् कारण ब्रह्मभावसे समझता है; जिससे सब लोग विनष्ट होते हैं, उसका ही नाम व्यक्त हुआ करता है, उसके बीच अव्यक्तमयी और व्यक्तमयी विद्या जो कि सांख्य शास्त्रमें विहृत हुई है, उसे तुम पहले मेरे समीप विस्तारके सहित सुनो।

मूल प्रकृति प्रभृति पचीस तत्व सांख्य और पातञ्जल शास्त्रमें तुल्यरूपसे जानी गई हैं, उनमें जो विशेष है, वह मेरे समीप सुनो। जिसकी जन्म वृद्धि जरा और मरण है, ऐसे चारों लक्षणोंसे युक्त पदार्थको व्यक्त कहा जाता है और जो इसके विपरीत अर्थात् जन्मादि रहित वस्तु है, वही अव्यक्त रूपसे प्रमाणित हुआ करती है। सांख्य मतवाले दर्शनिक पण्डित लोग चौबीस तत्वोंके अतिरिक्त एक मात्र जीवात्माको प्रति शरीरमें पृथक् समझते हैं। परन्तु वेदान्त सिद्धान्त वाक्यमें जीव और ईश्वर उपाधि भेदसे दो आत्मा प्रमाणित हुए हैं; वैदिक कर्म्मकाण्डमें यजमान और यष्टवा भेदसे ऐसा वर्णित है, कि जीव और ब्रह्म स्वतन्त्र है। जन्म आदि विकारयुक्त महत् अहंकार पञ्च तन्मात्र, एकादश इन्द्रिय और पञ्च भूतोंसे उत्पन्न अर्थात् कार्य्य उपाधि चतुर्वर्गार्थी जीवको व्यक्त रूपसे वर्णन किया जाता है और माया उपाधि ईश्वरको अव्यक्त कहा जाता है, ये दोनोंही बुद्धि और अचेतन अर्थात् चिदचिदात्मक है। ऐसा वेदमें वर्णित है, कि जल चन्द्र न्यायके अनुसार जीव विश्व चैतन्य ईश्वरका प्रतिबिम्ब है। नष्टलबुद्धि और चैतन्य चिदात्मा दोनों ही विषयमे अनुरक्त होते हैं, यह वेदके बीच वर्णित है। घटादि विषयोंसे उत्पत्ति क्रमको विपरीतताके अनुसार बुद्धि चैतन्यका प्रविलापन करना योग्य है, इसे ही सांख्य मतवाले बुद्धिमान लोगोंका शास्त्र जानो। उस मतके जीवन्मुक्त पुरुषोंका यही लक्षण है, कि योगी पुरुष ममतारहित और अहंकार शून्य सब

दुःख आदि द्वन्द्व वर्ज्जित और संशयहीन होवें। वे लोग क्रोध वा द्वेष न करें, झूठ वचन न कहें; आकृष्ट अथवा ताड़ित होनेपर भी सब भूतोंमें समदर्शिता निबन्धनसे किसीकी भी अशुभचिन्ता न करें; वचन, कर्म्म और मनसे पुरुषता परित्याग करे। इस ही प्रकार साधु-गुणसे युक्त होकर जो लोग सब भूतोंमें समान ज्ञान करते हैं वे चतुर्मुख ब्रह्माके निकटवर्त्ती होनेमें समर्थ होते हैं। ऐसे मनुष्य लोकयात्रा निर्व्वाहके लिये स्थित रहके किसी विषयकी अभिलाष नहीं करते और किसी विषयमें अत्यन्त निरिच्छुक भी नहीं होते।

जिन्हें लोभ और दुःख नहीं है जो इन्द्रिय निग्रहमें समर्थ और कार्य्य कुशल हैं, जिन्हें वेशविन्यास आदि बाह्य आडम्बरमें तुच्छ ज्ञान है, जिनकी इन्द्रियें अनेकाग और मनोरथ विक्षिप्त नहीं है, जो सत्यसङ्कल्प और सब भूतोंमें अहिंस्र स्वभाव हैं, ऐसे साङ्ख्य योगी मुक्त होते हैं। अब पातञ्जल मतसे मनुष्य जिन जिन कारणोंके जरिये मुक्त होते हैं उसे सुनो।

परम वैराग्य बलसे जिन्होंने अणिमा आदि योग ऐश्वर्य्यकी अतिक्रम किया है, वेही मुक्त होते हैं। यही तुम्हारे निकट बक्तृ विबक्षा विशेष जनित ज्ञानका विषय कहा इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इसी भांति जो लोग सुख दुःख आदि द्वन्द्वसे रहित होते हैं, वेही परब्रह्मको जान सकते और उसे प्राप्त करते हैं।

२३५ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, धीर पुरुष संसार सागरको तरनेवाले साधन शास्त्र और आचार्य्योंके उपदेशसे प्राप्त हुए परोक्ष ज्ञानरूपी शान्ति अवलम्बन करके संसार सागरमें सदा उन्मग्न और निमग्न होके भी केवल आत्म मोक्षके हेतु ज्ञानकी ही अवलम्बन करें।

शुकदेव बोले, आप जो ज्ञानको अवलम्बन करना कहते हैं वह अवलम्बनीय ज्ञान किस प्रकार जाना जाता है। रज्जु सर्पकी भांति अज्ञान मात्रके विनाशसे प्रकृत पदार्थ ज्ञापिका बुद्धि वृत्तिकी निवृत्ति लक्षण ज्ञान कहते हैं; अथवा ध्यानके जरिये भृंगीकीटकी भांति ध्येय सारूप्य रूपक धर्म्म, प्रवृत्ति लक्षण ज्ञानका विषय कहते हैं, उसे वर्णन करिये। जिस प्रकार जीव जन्म मरणसे निस्तार लाभ कर सके आप उसे ही कहिये।

व्यासदेव बोले, "मैं" इस अनुभव विषयमें जड़ और अहंकार कारण रूपसे प्रसिद्ध है; इसलिये मीमांसा मतवाले पण्डित लोग उक्त दोनोंको आत्मा कहा करते हैं। "अहं" पदका अर्थ ही आत्मा है उसका गुण प्रकाश है, वह भी तीन क्षणमात्र स्थिति करता है, यह तार्किक मत है। सांख्य मतवाले बुद्धिमान लोग सिद्ध किया करते हैं, कि आत्मा ही नित्य प्रकाश स्वरूप है, अहं पदका अर्थ आत्मा नहीं है। उसके बीच बहुतेरे लोग आत्मा और अनात्मा दोनोंको ही नित्य कहा करते हैं। अनात्मा ही स्थिर है, देह नाश होनेपर चिदात्माका नाश होता है, यह लोकायतिक नास्तिकोंका मत है। आत्मा ही सत्य पदार्थ है, आत्मासे भिन्न सभी मिथ्या है, यह वेदान्त मतका सिद्धान्त है।

शून्यवादी लोग यह कहा करते हैं, कि आत्मा अनात्मा कुछ भी नहीं है; इसलिये शून्यवादियोंके मतमें यदि आत्माका अभाव हुआ, तब ज्ञानका अनर्थकत्त्व सिद्ध होगा; इसलिये जो मनुष्य अधिष्ठान सत्ताके बिना स्वभावके जरिये ही अहंकार आदि स्वरूपसे प्रकाशित होरहे हैं, ऐसा समझके निरधिष्ठाता स्वभाविकी जगद्भ्रान्ति अङ्गीकार करता है और युक्ति तथा बुद्धिहीन शिष्योंको उसही प्रकार बोधके सहारे अनुरक्त किया करता है, वह कुछ भी तत्त्व लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता;

इससे अधिष्ठानके बिना भ्रमको सम्भावना न रहनेसे शून्यवाद नितान्त हेय है। इसके अतिरिक्त जो सब आत्मोच्छेदवादी लोकायतिक नास्तिक लोग एकान्तभावसे ईश्वर और अदृष्टकी सत्ता अस्वीकार करके स्वभावको ही देह आदिकी उत्पत्तिके विषयमें कारण कहा करते हैं; वे लोग ऋषि वाक्य सुनके भी कुछ तत्त्व-लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते; अर्थात वे लोग आचार्य्यकी उपासना न करके ही स्वयं इन सब मतोंकी कल्पना करते हैं। जो सब अल्पबुद्धि मनुष्य स्वाभाविक शून्य जगत भ्रान्ति और स्वाभाविक शरीरादिकोंकी उत्पत्ति, इन दोनों पक्षोंको अवलम्बन करते हैं, वे लोग स्वभावको कारण जानके कुछ भी कल्याण लाभ नहीं करते। मोहके कार्य्य मनसे ही स्वभाव उत्पन्न होता है, अर्थात् मूढ़ लोग मनके जरिये जो कुछ कल्पना करते है, उसे ही स्वभाव कहते हैं, स्वभावका वक्ष्यमाण लक्षण सुनो। यदि सब कार्य्य स्वाभाविक ही सिद्ध हों, तो कृषि-कार्य्य आदि सब कर्म्मोंसे ही बुद्धि-कौशलको अनर्थकता हो सकती है, वह कदापि सम्भावित नहीं है; क्यों कि कृषि आदि सब कार्य्य, शस्य, संग्रह, यान, आसन और गृह आदि बुद्धिमान् मनुष्योंके जरिये सम्पन्न हुआ करते हैं। क्रीड़ा गृह और रोगोंमें औषधी करनेके विषयमें बुद्धिमान् पुरुष ही प्रयोक्ता हैं। ज्ञानवान् मनुष्य ही उक्त सब कार्य्योंका अनुष्ठान किया करते हैं। बुद्धिकी अधिकता रहनेसे ऐश्वर्य्य धन्य लाभ होता है। बुद्धिमान ही कल्याणके मार्गको प्रदर्शित करता है। बुद्धिकी अधिकतासे ही अधिक ऐश्वर्य्यशाली राजा लोग बुद्धिबलके सहारे राज्य भोग किया करते हैं। जीवोंके परम श्रेष्ठ चिदात्मा और मायाको बुद्धिबलसे ही जाना जाता है। हे तात! बुद्धि वृत्तिके सहारे परम गति लय स्थानको भी प्राप्त कर सकते हैं। विविध भूतोंका जन्म चार प्रकारसे है, उसके बीच मनुष्य, पशु, आदि जरायुज, पक्षी, सर्प, आदि अण्डज, तृण, वनस्पति, उद्भिज, और यूक, मत्कुड़ आदिको स्वेदज कहके निश्चय करो। तिसके बीच स्थावरोंसे जङ्गमोंको विशिष्ट जानना चाहिये, विशेष विशेषण करके जो विशेष हो, उसे ही श्रेष्ठ समझो। प्राचीन लोग कहा करते हैं, अनेक चरणवाले जङ्गम जीव दो प्रकारके हैं, तिसके बीच पहले कही हुई रीतिके अनुसार वृक्षादिके दर्शन आदि स्वत्व रहनेसे भी प्रत्यक्ष दर्शनवाले जङ्गम जीव ही श्रेष्ठ हैं, अनेक चरणवालोंसे कई तरहके दो पांववाली जाति श्रेष्ठ हैं, दो पाववाली जाति भूचर मनुष्य आदि हैं और खेचर पक्षी आदि भेदसे दो प्रकारके हैं, उसमेंसे खेचरसे भूचर मनुष्य आदि श्रेष्ठ हैं क्यों कि वे लोग अन्न भोजन किया करते हैं। मनुष्य जाति दो तरहकी है, मध्यम और उत्तम तिसके बीच जातीय धर्म्मके आचरण निबन्धनसे मध्यम ही श्रेष्ठ है; मध्यममें फिर दो भेद हैं, एक धर्म्मज्ञ, दूसरे इतर, तिसमेंसे कार्य्याकार्य्य कर्त्तव्यका निश्चय करनेसे धर्म्मज्ञ ही उत्तम हैं; धर्म्मज्ञ पुरुष दो प्रकारके हैं, वेदज्ञ और तदितर, उसमेंसे वेद जानने वाले पुरुष ही उत्तम है, क्यों कि वेद इन सबमें ही प्रतिष्ठित होरहा है। वेदज्ञ पुरुष दो तरहके हैं, प्रवक्ता और तदितर, उसके बीच सब धर्मोंके धारण निबन्धनसे प्रवक्ता ही उत्तम हैं। धर्म्म और क्रियाफलके सहित जो लोग सब वेदोंको जानते हैं और धर्म्मके सहित सब वेद जिससे प्रकट हुए हैं, उन प्रवक्तागणको आत्मज्ञ और तदितर भेदसे फिर दो प्रकार कहा जाता है; उसके बीच जन्म और मोक्ष ज्ञान निबन्धनसे आत्मज्ञ-पुरुष उत्तम हैं। जो प्रवृत्ति और निवृत्ति लक्षणयुक्त दोनों प्रकारके धर्म्मको जानते हैं, वही धर्म्मज्ञ हैं, वेही धर्म्मवित् हैं, वेही त्यागशील, सत्य-सङ्कल्प, सत्यनिष्ठ, शुचि और सर्व्वकर्म्ममें समर्थ हैं।

ब्रह्मज्ञान विषयमें जिसकी प्रतिष्ठा है, वेद शास्त्रोंमें जिसकी निष्ठा होरही है, और दूसरे शास्त्रोंमें जो लोग कृतनिश्चय हुए हैं, उन्हें देवताभी ब्राह्मण समझते हैं। हे तात! जो सब ज्ञानवान् मनुष्य यज्ञादिदैवत आत्माको अन्तस्थ और बाह्यरूपसे देखते हैं, वेही द्विज और वेही देवस्वरूप हैं, ऐसे आत्मज्ञ पुरुषोंमें ही ये सब भूत और समस्त जगत् प्रतिष्ठित होरहा है; उन लोगोंके माहात्म्यके समान और कुछ भी नहीं है। आदि अन्तसे रहित और सब तरहके कर्म्मोंको अतिक्रम करके स्थित, चारों प्रकारके भूतोंके स्वयम्भु सब तरहसे ईश्वर हैं।

२३९ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, यह ब्राह्मणोंकी नित्य-वृत्ति विहित हुई है, ज्ञानवान् ब्राह्मणही कर्म्म करते हुए सर्व्वत्र सिद्धि लाभ किया करते हैं, कर्म्मविषयमें यदि संशय न हो, तो वह निःसंशयरूपसे किया गया कर्म्मही सिद्धिका हेतु हुआ करता है; परन्तु कर्म्मका क्या लक्षण है, ऐसा सन्देह उत्पन्न होनेपर ज्ञान वा ज्ञानजनक कर्म्मको यदि कर्म्म कहा जावे, तब उसे वेदविधि कहके अङ्गीकार करना होगा; इसलिये उत्पत्ति और उपलब्धिके जरिये उभयत्र कर्म्मकी प्रधानता कहता हूं सुनो।

कोई कोई मनुष्य इस जन्म और जन्मान्तरमें किये हुए कर्म्मको ही प्रधान कारण कहा करते हैं, दूसरे लोग दैवको ही कारण रूपसे वर्णन करते हैं; कितनेही लोग स्वभावकोही कारण कहते हैं। पौरुष और दैवकर्म्म स्वभावके अनुगत होकर फलदायक होते हैं; कोई कहते हैं, ये प्रत्येक पृथक् पृथक् कारण न होकर एक ही प्रधान रूपसे कारण हुआ करते हैं; दूसरे लोग कहते हैं इनका समुच्चय ही कारण है। आर्हत मतवाले घट पट आदि विषयोंको अस्ति भी कहते हैं, और नास्ति भी मानते हैं; "अस्ति नास्ति" यह दोनों ही कहते हैं, और "अस्ति यह भी नहीं है," "नास्ति यह भी नहीं है,"—ऐसा ही कहा करते हैं, परन्तु योगी लोग परब्रह्मको ही सर्व्व कारण स्वरूपसे दर्शन करते हैं। त्रेता, द्वापर और कलियुगमें जो सब पुरुष जन्म ग्रहण करते हैं, उन्हें पापानुबन्धनसे औतमतमें सदा ही संशय हुआ करता है, परन्तु सतयुगमें उत्पन्न हुए योगनिष्ठ तपस्वी लोग सदा ही संशयरहित होते हैं। कृतयुगमें सब कोई ऋक्, यज, साम, इन तीनों वेदोंमें भेद न देखके काम और द्वेष आदिको दूर करके केवल ज्ञानकी ही उपासना करते थे। जो लोग तपस्यारूपी धर्म्मसे युक्त तपमें रत और संशितव्रती होते हैं, वे मनहीमन जैसी अभिलाष करते हैं, तपोबलसे वह सब पा सकते हैं। जीव तपोबलसे ब्रह्म स्वरूप होकर जगत्की सृष्टि करता है तपस्याके सहारे उस ब्रह्मको प्राप्त किया जाता है, और ब्रह्मस्वरूप होनेपर भूतोंके ऊपर प्रभुता करनेकी सामर्थ हुआ करती है। वेददर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, वेद वाक्यके बीच यद्यपि ब्रह्मस्वरूप वर्णित हुआ है, तौभी वह अत्यन्त गहन है, ऐसा ही क्यों; वह वेदज्ञ पुरुषोंको भी दुर्ज्ञेय है; वेदान्त दर्शनमें एकमात्र विद्याके सहारे ब्रह्मको जाना जाता है, यही केवल व्यक्त रूपसे वर्णित हुआ है; भावनात्मक कर्म्म योगके जरिये ब्रह्मको लक्ष्य नहीं किया जाता। क्षत्रियोंकी पशु हिंसा, वैश्योंकी कृषिकर्म्म, शूद्रोंको तीनों वर्णोंकी सेवा और ब्राह्मणोंको ब्रह्मोपासनाही यज्ञ-स्वरूप है। जिन लोगोंने स्वशाखोक्त वेदाध्ययनके जरिये सब कार्य्योंको समाप्त किया है, वही द्विज होते हैं; जो सब भूतोंमें समदर्शी हैं, वे दूसरे कर्म्म करें वा न करें उन्हें ही ब्राह्मण कहा जाता है। सतयुग और त्रेतायुगमें सब वेद यज्ञ और वर्णाश्रम थे. द्वापरयु-

गमें मनुष्योंकी अल्प आयु होनेसे सब वेद आदि लुप्त होते चले जाते हैं। द्वापर और कलियुगमें सब वेद नष्टप्राय होते हैं द्वापरमें सब वेद दीखते हैं, कलियुगमें सब न दीखेंगे। कलियुगमें अधर्म्मसे पीड़ित होकर धर्म्म और गऊ भूमि, जल और औषधियोंका रस नाश होरहा है। सब वेद वेदोक्त धर्म्म, स्वधर्म्मस्थ आश्रम और स्थावर तथा जङ्गम जीवन अधर्म्मके जरिये अन्तर्हित होकर विकृतभाव लाभ करता है। जैसे वर्षा पार्थिव भूतोंकी पुष्टिसाधन करती है, वैसे ही वेद युगयुगमें वेद पढ़नेवालोंकी पुष्टिसाधन किया करता है। जिसका अनन्तत्व और अनादि निधनत्व निश्चित है, और जो प्रजासमूहके प्रभव और प्रलयका कारण है, उसे मैंने पहिले वर्णन किया है। जो काल, जीवोंकी उत्पत्ति और लयका स्थान और अन्तर्य्यामी है; जिसमें सुख दुःख आदि द्वन्द्वयुक्त बहुतसे जीवस्वभावसे ही निवास करते है, उस कालका विषय भी कहता हूं। हे तात! तुमने मुझसे जो पूछा था, मैंने उसही सृष्टि, काल, सन्तोष, सब वेद, कर्त्ता कार्य्य और क्रियाके समस्त फलको वर्णन किये।

२३७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, शुकदेवने महर्षि वेदव्यासका ऐसा वचन सुनके उनके उपदेशकी प्रशंसा करते हुए मोक्ष धर्म्मार्थयुक्त इस वक्ष्यमाण वचनको पूछनेकी इच्छा की।

शुकदेव बोले, बुद्धिमान आस्तिक विधिपूर्व्वक यज्ञ करनेवाले कृदप्रज्ञ और अनसूयक ब्राह्मण प्रत्यक्ष और अनुमानके जरिये अज्ञात तथा अनिर्देश्य ब्रह्मको किस प्रकार जान सकते हैं; तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, सर्व्वत्याग अथवा धारणायुक्त बुद्धिके जरिये यदि उसे जाना जाय और उसका विषय सांख्य वा पातञ्जल शास्त्रमें निरूपित रहे, तो मैं उसे पूछता हूं, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये। मनुष्य जैसे उपायके जरिये मन और इन्द्रियोंको उस प्रकार एकाग्रता लाभ करें, आप उसको ही व्याख्या करिये।

व्यासदेव बोले, विद्या तपस्या, इन्द्रियनिग्रह और सर्व्व संन्यासके बिना कोई भी सिद्धि लाभ करनेमें समर्थ नहीं है। सब महाभूत स्वयम्भू ईश्वरकी प्रथम सृष्टि है, प्राणिसमूहों तथा शरीराभिमानी मूढ़ जीवोंमें वह भूयिष्टरूपसे निविष्ट है शरीरधारियोंके भूमिसे देह, जलसे स्नेह, अग्निसे दोनों नेत्र, वायुसे पञ्चप्राण और आकाशसे अवकाश भाग हुआ करता है। पातञ्जल मतसे आत्मा केवल सुख दुःखका भोक्ता है, कर्त्ता नहीं है। सांख्य मतसे आत्मा भोक्ता वा कर्त्ता कुछ भी नहीं है, इसलिये सांख्य मतके सिद्धान्तसे पातञ्जल मत इस प्रकार दूषित होता है, कि पादेन्द्रियके देवता विष्णु, हाथके अधिष्ठाता इन्द्र हैं, अग्नि उदरके भीतर रहके भोजनकी इच्छा किया करती है। सब दिशा श्रवणेन्द्रियकी देवता हैं, और वागिन्द्रियकी, अधिष्ठात्री सरस्वती है। जैसे सेना राजकीय रथ शकट आदिको चलाया करती है और जैसे राजा अभिमानके वशमें होके अपनेमें सेनाकी ह्रास वृद्धि आदि आरोपित करता है, वैसे ही चिदात्मा इन्द्रिय और उसके अधिष्ठात्री देवतागत भोक्तृत्व स्वच्छक आदिको अविद्याके वशमें होकर आत्मामें आरोपित कराया करता है अर्थात् "मैं भोगवान मैं स्वच्छ हूं" इत्यादि वचन आरोपमात्र हैं। जैसे सेनाकी पराजय होनेसे राजाकी हार होती है, वैसे ही विष्णु आदि अधिष्ठात्री देवता लोग भी भोक्ता नहीं हैं, आत्मामें अविद्याके कारण भोक्तृत्व भान हुआ करता है, वास्तवमें आत्मा कर्त्ता वा भोक्ता नहीं है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका, ये पांचो शब्द आदि ज्ञान साधनके निमित्त द्वाररूप है दर्शनीय इन्द्रिय कहके वर्णित हुआ करती हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पांचों इन्द्रिय विषयोंको सदा ही इन्द्रियोंसे स्वतन्त्र जानना चाहिये। जैसे सारथी घोड़ोंको वशमें करके नियमित करता है, वैसे ही मन इन्द्रियोंको सदा कार्य्योंमें नियुक्त किया करता है, और अन्तःकरण उपाधिक जीव सदा मनको नियमित करता है। जैसे मन सब इन्द्रियोंको उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण है, वैसेही हृदयमें स्थित जीव चैतन्य मनकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेमें समर्थ है; इन्द्रियें, इन्द्रियोंके विषय, बाह्य वस्तुयें सर्दी, गर्मी आदि धर्म स्वरूप स्वभाव, चेतना, मन, प्राण, अपान और चैतन्य देहधारियोंके हृदय गुफाके बीच सदा ही वर्त्तमान हैं। प्रागुक्त देह बुद्धिका अवलम्ब है, ऐसा सम्भव नहीं होता, स्वप्रकाशके शरीरकी भांति उक्त देहका केवल भान मात्र हुआ करता है, इसलिये सत, रज, तम यह त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति ही बुद्धिका अवलम्ब है, चेतना बुद्धिका अवलम्ब वा स्वरूप नहीं है, क्यों कि बुद्धि ही वासनाको उत्पन्न करता है, गुणोंको उत्पन्न करनेके विषयमें बुद्धि कभी कारण नहीं है। इस ही प्रकार चिदात्मा इन्द्रियादि षोड़श गुणोंके जरिये पूरित होकर देहमें निवास करता है। मनको निग्रह करनेवाले ब्राह्मण मनके जरिये बुद्धिसे आत्माको देखते हैं इस आत्माको नेत्रसे नहीं देखा जाता, सब इन्द्रियोंके सहारे भी उसे जाननेकी सामर्थ नहीं होती; महान आत्मा मानस प्रदीपके जरिये प्रकाशमान होता है। वह न शब्द है न स्पर्श है; न रूप है, न रस है और न गन्ध ही है; वह अव्यय और इन्द्रिय रहित है, उसके स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर नहीं है, तौभी उसे शरीरके बीच देखे। मरण धर्मयुक्त समस्त शरीरोंमें जो अव्यक्त रूपसे निवास करता है, उसे जो पुरुष गुरुवचन और वेदवाक्यके अनुसार अवलोकन करता है, शरीर त्यागनेके अनन्तर उसको ब्रह्मके सङ्ग निर्व्विशेष भाव लाभ होता है। पण्डित लोग विद्वान सत्कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण और गऊ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें ब्रह्मदर्शन किया करते हैं; जिसने यह सब जगत बनाया है, वह एक ही महान् आत्मा स्थावर जङ्गम आदि भूतोंमें स्थिति करता है। हृदयाश्रित जीव जब सब भूतोंमें आत्माको परिपूर्ण देखता है, और निष्कलङ्क आत्मामें सब भूतोंको लीन देखता है, उस समय उसे ब्रह्मत्व लाभ होता है। वेदके आत्मशब्द स्वरूपसे जितने देश वा कालका प्रमाण होता है, जीवात्मा उतने ही देशकालके अनुसारसे अधिष्ठान भूत स्व-स्वरूप परमात्मामें प्रतिष्ठित होता है। जो सदा इस ही प्रकार ध्यान करते हैं, वे अमृत लाभ करनेमें समर्थ होते हैं। सब भूतोंके हितमें रत पदरहित योगीके पदकी अभिलाषी होके उसके अन्वेषणमें देवता भी मोहित हुआ करते हैं। जैसे आकाशमें पक्षियों और जलमें मछलियोंकी गति दृष्टिगोचर नहीं होती, ब्रह्मज्ञानियोंकी गति भी वैसी ही है। काल स्वयं अपनेमें सब भूतोंका परिणाम करता है, परन्तु काल जिसमें परिणत होता है, इस जगतमें कौन पुरुष उस परमात्माको जान सकता है। मुक्त स्वरूप परब्रह्मको ऊपर, नीचे, तिर्य्यग और मध्यदेशो भेदसे किसी स्थानमें भी किसी भांति नेत्र आदि इन्द्रियोंके विषय करनेमें किसीकी सामर्थ नहीं है। यह समस्त लोक उस मुक्त स्वरूपके अन्तर्गत हैं; इन सब लोकोंका कुछ भी बाह्यज्ञान नहीं है। मनके समान शीघ्रगामी होकर यदि कोई मनुष्य धनुषसे छूटे हुए बाणकी भांति निरन्तर गमन करे, तौभी वह परम कारणका अन्त देखनेमें समर्थ न होवे। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, और उससे स्थूल और कुछ भी नहीं है। उस परम कारण परब्रह्मके हाथ, पांव सब दिशामें ही विद्यमान हैं, उसके नेत्र सिर और

मुख सब तरफ ही प्रकाशमान हैं, वह समस्त जगत्‌को परिपूरित करके निवास कर रहा है। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महत्‌से भी महत् है, उसमें ही सब भूत लीन हुआ करते हैं, वह सदा निश्चल भावसे निवास करता है, तो भी किसीके दृष्टिगोचर नहीं होता, अक्षर और क्षर रूपसे आत्माका द्वैधी भाव है, वह जो स्थावर जङ्गम आदि भूतोंमें बिनाशि जड़रूपसे निवास करता है वही क्षर स्वरूप और दिव्य अमृत अविनाशी चैतन्य ही अक्षर स्वरूप है। अव्यक्त उपाधि दोषके जरिये अनभिभूत स्थावर जङ्गम सब भूतोंके नियन्ता ईश्वर, महत् अहं-कार, पञ्चतन्मात्र, अविद्या और कर्म्म, ये अहं-कार धर्म्म कामके नवद्वारसे युक्त गृहमें गमन करते हैं, इसहीसे वह हंस नामसे वर्णित होता है। तत्वदर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, कि जन्म रहित ईश्वरके शरीरमें भीतर गये हुए पहले कहे हुए महदादि सम्बन्धीय हानि अंग और विविध कल्पनाके सग्रह निबन्धनसे हंस-त्वकी सिद्धि होती है। 'हंस' इस पदसे जो अक्षर ब्रह्म कहा जाता है, कूटस्थ चैतन्य भी वही अक्षर ब्रह्म है इसमें कुछ भी भेद नहीं है; इसलिये तत्वज्ञानी मनुष्य उस अक्षर ब्रह्मको जानके प्राण और जन्म परित्याग करते हैं, अर्थात् जन्मके कारण अविद्याके विनाश निबन्धनसे वह कैवल्य लाभ किया करते हैं।

२३८ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, हे सत्पुत्र! तुमने जो सांख्यज्ञान संयुक्त ज्ञानका विषय पूछा था, मैंने उसे प्रकृत रूपसे यथावत् वर्णन किया; अब योगियोंका जो कुछ कर्त्तव्य है, वह सब तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। हे तात! बुद्धि, मन, इन्द्रिय और सर्व्वव्यापी आत्माका एकत्व ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ है; चित्त जीतनेवाले, दान्त, अध्यात्म विषयोंके अनुशीलन युक्त आत्माराम यम नियममें निष्ठावान् शास्त्र तत्वज्ञ पुरुषको आचार्य्यके मुखसे उक्त ज्ञानके विषयको जानना उचित है। काम, क्रोध, लोभ, भय, और स्वप्न, इन पाचोंको पण्डित लोग योगदोष कहा करते हैं; धीर पुरुष ऊपर कहे हुए पांचो दोषोंको नष्ट करके शम गुणके जरिये क्रोधको जीतते हैं। सङ्कल्पकी त्यागके कामको विजय करनेमें समर्थ होते हैं और बुद्धिके अनुशीलनसे निद्राका नाश करनेके योग्य हुआ करते हैं; धैर्य्यके जरिये व्यभिचार आदिसे शिश्न और उदरकी रक्षा करते हैं; नेत्रसे कांटे आदि-कोंसे हाथ पांवकी रक्षा करनेमें सावधान रहते हैं, मनके जरिये पर-स्त्री दर्शन आदिसे नेत्र और कानकी सावधानता सम्पादन करते हैं; यज्ञादि कर्म्मोंसे बुरी चिन्तासे मन और बच-नकी रक्षा किया करते हैं; अप्रमादसे भय और प्राज्ञ पुरुषोंकी सेवा निबन्धनसे दम्भ परित्याग करते हैं। योगी लोग सदा अतन्द्रित होकर इस ही प्रकार पूर्व्वोक्त योग दोषोंको जय करें, अग्नि और ब्राह्मणोंकी पूजा करें, देवताओंके निकट प्रणत होवे; हिंसायुक्त मनकी भङ्ग कर-नेवाले अमङ्गल बचन त्याग दें। प्रधान बीजभूत प्रकाशात्मक सतोगुण प्रधान महत्तत्व ही ब्रह्म-स्वरूप है। ये सब स्थावर, जङ्गम, जीव जिस बीचके सारस्वरूप हैं; वही समस्त जगत् निरीक्षण करता है। ध्यान, अध्ययन, सत्यबचन लज्जा, शीलता सरलता, क्षमा, शौच, शुद्ध आचार और इन्द्रियनिग्रह, इन सबके जरिये सत्वोत्कर्ष होनेपर तेजकी बढ़ती और पाप नाश होता है। जो लोग ऐसा आचरण करते हैं उनकी सब कामना सिद्ध होती और तत्त्व-ज्ञान उत्पन्न होता है। जो योगी सर्व्वभूतोंमें समदर्शी यदृच्छा लाभसे सन्तुष्ट, पापरहित, तेजस्वी, लघु भोजन करनेवाले और जितेन्द्रिय होवे, वह काम, क्रोधको वशमें करके महत्त-

उसके आस्पद लय स्थान प्रकृतिको वशमें करनेकी अभिलाष करें ; समाहित होकर मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता सिद्ध करके पूर्व्वरात्रि और अपर रात्रिके अर्द्धभागमें बुद्धिमें मनको धारणा अर्थात् सङ्कल्पात्मक मनका निरोध करे । पञ्चेन्द्रिययुक्त जीवका एक ही इन्द्रिय छिद्र यदि चरित् हो, तो चर्म्ममय कोषके छिद्रसे जल निकलनेकी तरह उसकी शास्त्र जनित बुद्धि विषय प्रवणता निश्रन्धनसे क्षीण हुआ करती है । जैसे मत्स्यजीवी मछुवाहे जाल दंशन करनेमें समर्थ मछलीको अगाड़ी बांधते हैं, वैसे ही योगवित् यती पहले मनको निग्रह करे, अनन्तर कान, नेत्र, जीभ और नासिकाको संयम करके उन्हें मनके बीच स्थापित करनेमें यत्नवान होवे, अन्तमें जब मन सब सङ्कल्पोंको परित्याग करे । योगी पुरुष पञ्च इन्द्रियोंको ध्येय वस्तुकी ओर ले जा करके मनमें स्थापन करनेमें यत्नवान होवे । जब मनके सहित पञ्चइन्द्रिय बुद्धिके बीच स्थिति करके लयको प्राप्त होकर संकल्प जनित कलुषता परित्याग करती हैं; तब उस निर्म्मल अन्तःकरणमें ब्रह्म प्रकाशमान होता है । धूम रहित अग्नि प्रकाशमान सूर्य्य और आकाशमें स्थित बिजलीकी अग्निकी भांति उस समय आत्मा बुद्धिके बीच दीख पड़ता है । उस समय उस महान् आत्मामें अहङ्कार आदि सब विकार दिखाई देते हैं, और वह भूमात्मा कारण रूपसे सर्व्वव्यापक होनेसे सर्व्वत्र दीखती है । जो सब महानुभाव मनीषी ब्राह्मण लोग धृतिमान महाप्राज्ञ और सब भूतोंके हितमें रत हैं, वेही उस आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं । योगयुक्त पुरुष पूर्णरीतिसे तीक्ष्ण नियम अवलम्बन कर अकेले निर्ज्जन स्थानमें बैठके छः महीनेतक ऐसा ही आचरण करनेसे मुक्त हुए शुद्ध आत्मस्वरूपकी समता लाभ करते हैं । तत्त्ववित योगी लय, विक्षेप कषाय, घ्राण, श्रवण, दर्शन, रस, स्पर्श, शीत, उष्ण, शीघ्रगति, समस्त शास्त्रार्थभान और दिव्य अङ्गना आदि अद्भुत विषयोंको योगबलसे प्राप्त करके अन्तमें उन सबका अनादरकर बुद्धिके बीच उन्हें संहार करें ; क्यों कि बुद्धि कल्पित विषयोंका बुद्धिमें ही लय होना योग्य है । प्रातःकाल पूर्व्व रात्रि और अपर रात्रिमें नियमनिष्ठ योगी पहाड़की शिखर वटमूल वृक्षके नीचे अथवा वृक्षके पुरोभागमें योगाभ्यास करे । वह इन्द्रियोंको सब तरहसे नियमित करके इस प्रकार हृदय पुण्डरीकमें एकाग्र भावसे नित्य वस्तुकी चिन्ता करे, जैसे धनकी प्राप्तिमें रत विषय लोभी मनुष्य धनकी चिन्ता करता है ; योगसे कभी मनको उद्विग्न न करे । योगयुक्त उपायसे चञ्चल चित्तको पूर्णरीतिसे नियमित करनेमें समर्थ होवे, उस ही उपायको अवलम्बन करे, उससे कभी विचलित न होवे ; वह एकाग्र होकर जनशून्य गिरिगुफा, देवस्थान और सूने गृहमें वास करनेकी इच्छा करे । ऐसा योगी पत्नी परिग्रह न करे, केवल मन, वचन और धर्म्मसे सब विषयोंमें उपेक्षा करते हुए यताहारी होकर प्राप्त और अप्राप्त विषयोंमें समदर्शी होवे । जो पुरुष ऐसे योगीको अभिनन्दित करता है, अथवा जो पुरुष उसकी निन्दा करे, वह उन दोनोंके शुभाशुभको चिन्ता न करे । योगी पुरुष लाभसे हर्षित और हानिसे असन्तुष्ट न होवें, वह वायुके समान धर्म्मात्मा होकर सब भूतोंको समभावसे देखें । इस ही भांति छः महीनेतक नित्य योगयुक्त सर्व्वत्र समदर्शी स्वस्थचित्तवाले साधु पुरुषोंके निकट शब्द ब्रह्म पूर्णरूपसे प्रकाशित होता है । मृत, पिण्ड पत्थरके टुकड़े और सुवर्णमें समदर्शी योगी प्रजासमूहको पीड़ासे आर्त्त देखकर इस प्रकारके योगमार्गसे विरत और मोहित न होवें ; बल्कि वित्त उपार्ज्जन आदिसे विरत रहें, नीच वर्ण शूद्र भी यदि इस मार्गमें पदार्पण करे

और धर्म्मकी इच्छा करनेवाली स्त्री भी यदि योगाभ्यासमें रत होवें, तो वे भी इस योग अवलम्बनके जरिये परम गति पावें। साधु लोग मन और बुद्धियुक्त निश्चल इन्द्रियोंके जरिये जो जन्मरहित जरा विवर्ज्जित प्राचीन सनातन पुरुषको लक्ष्य करते हैं; वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महत्से भी महत् है, चित्त जय करनेवाले योगी उस मुक्त स्वरूपको बुद्धिबलसे देखा करते हैं। महानुभाव महर्षियोंके यथावत वर्णित यह वाक्य गुरुवचनके समान शब्द और अर्थसे जानके उसे स्वयं युक्तिके जरिये परीक्षा करके शुद्धचित्तवाले मनीषि लोग भूतसंप्लव पर्य्यन्त चतुर्मुखकी समताको प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रलयकालतक ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके सहित समान भोगके भागी हुआ करते हैं।

२३८ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, वेदवाक्यके बीच "कर्म्म करो और कर्म्म परित्याग करो," यह जो विधि निषेध है, उसमेंसे विद्याके जरिये लोग किस ओर गमन करते हैं, इसे ही मैं सुननेकी इच्छा करता हूं, आप मेरे समीप इसे ही वर्णन करिये। परस्पर वैरूप्ययुक्त ये दोनों मार्ग प्रतिकूल भावसे वर्त्तमान हैं।

भीष्म बोले, पराशरनन्दन वेदव्यासने पुत्रका ऐसा वचन सुनके उसे यह उत्तर दिया,—हे तात! कर्म्ममय और ज्ञानमय, नश्वर और अविनश्वर दोनों पथके विषयकी व्याख्या करता हूं; सब लोग विद्याके सहारे जिस ओर गमन करते हैं, तुम एकाग्रचित्त होकर उस विषयको सुनो, इन दोनोंका अन्तर आकाशकी भांति अत्यन्त गभीर है। आस्तिक लोग "धर्म्म है" ऐसा वचन कहते हैं, नास्तिक लोग "धर्म्म नहीं है" ऐसा कहा करते हैं। उसके बीच नास्तिक और आस्तिकके तारतम्य पूछनेसे आस्तिकके पक्षमें वह जिस प्रकार युक्तियुक्त होजाता है, मेरे पक्षमें भी यह उस ही प्रकार होरहा है, सब वेद जिसमें प्रतिष्ठित होरहे हैं, वह मार्ग दो प्रकारका है; प्रवृत्ति लक्षण धर्म्म और निवृत्ति लक्षण धर्म्म उत्तम रीतिसे वर्णित है।

जीव कर्म्मके जरिये बद्ध होता और विद्यासे मुक्त हुआ करता है, इसलिये तत्वदर्शी योगी लोग कर्म्म करनेमें अनुरक्त नहीं होते। कर्म्मशील मनुष्य कर्म्मके जरिये मरनेके अनन्तर फिर शरीर धारण करता है और विद्वान् पुरुष ज्ञानके जरिये नित्य अव्यक्त अव्यय स्वरूपसे प्रकट होते हैं, कोई कोई अल्पबुद्धिमें रत मनुष्य कर्म्मकी प्रशंसा किया करते हैं, इस होसे वे स्त्री, पुत्र आदि परिवारमें आसक्त होकर कर्म्मको ही उपासना करनेमें रत होते हैं, जो सब धर्म्ममें निपुण मनुष्योंने श्रेष्ठबुद्धि लाभ की है, वे इस प्रकार कर्म्मकी प्रशंसा नहीं करते, जैसे नदीके जलको पीनेवाले मनुष्य कूएंका पानी पीकर उसकी प्रशंसा नहीं करते। कर्म्मशील मनुष्य कर्म्मके फल सुख, दुःख और जन्म, मृत्यु पाते हैं, और ज्ञानी लोग विद्याके सहारे उस स्थानको पाते हैं, जहां पर जानेसे शोक नहीं करना पड़ता; वहां पर जानेसे जन्म और मृत्यु नहीं होती और फिर दूसरी बार जन्म नहीं लेना पड़ता। जिस स्थानमें विशेष विज्ञानभावसे जीव लयको प्राप्त होता है, जिस स्थानमें अव्यक्त, अचल, नित्य, अविस्पष्ट, अक्लेश, अमृत, अवियोगी परब्रह्म विराजमान है; जिस स्थानमें सुख दुःख और मानस कर्म्मोंसे कुछ बाधा नहीं होती वहां सब भूतोंमें समदर्शी और सब प्राणियोंके हितमें रत महात्मा लोग निवास किया करते हैं।

हे तात! विद्यामय पुरुष स्वतन्त्र हैं, और कर्म्ममय पुरुष स्वतन्त्र हैं; कर्म्ममयके बीच कलकलराख्य प्रजापति श्रेष्ठ हैं। प्रति महीनेमें

घटती बढ़तीयुक्त और अमावस्या तिथिमें सूक्ष्म कलासे स्थित चन्द्रमाकी भांति कर्म्ममय पुरुषोंकी ह्रास वृद्धि हुआ करती है। बृहदारण्यकदर्शी याज्ञवल्क्यने आकाशमें वक्रतन्तुकी भांति स्थित नवीन चन्द्रमाको देखकर इस विषयमें बहुतसी युक्तिपूरित उक्ति प्रकाश की है वह उनके वचनके जरिये अनुमित होती है। हे तात! मनके सहित दशों इन्द्रिय, ये एकादश विकारात्मा कलाके सहित उत्पन्न मूर्त्तिमान विराजमान चन्द्रमाको कर्म्म-गुणात्मक समझो। कमल पुष्पके बीच जलकी बंद समान वह जीव उपाधियुक्त मनके बीच जो द्योतमान नित्यप्रकाश संश्रित होरहा है, और उस योग निरुद्ध चित्त जीवको क्षेत्रज्ञ समझना चाहिये। तम, रज और सत्व, इन तीनों गुणोंको विज्ञानमय किसी जीवका गुण जानना चाहिये। विज्ञानमयको आत्मगुण अर्थात् चिदाभास गुण चैतन्य उससे युक्त समझे, चिदाभास आत्माको परमात्माके गुण ज्ञान और ऐश्वर्य्य आदिसे संयुक्त जाने। शरीर स्वयं अचेतन होनेपर भी जीवके गुण चैतन्यके संयोगसे सचेतन होकर हाथ पांव चलाते हुए जीवित होता है। जिन्होंने भूर्लोक, भुवर्लोक आदि सातों भुवनको बनाया है, पण्डित लोग उसी हो जीवसे परम श्रेष्ठ कहा करते हैं।

२४० अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, प्रकृतिसे चौबीस तत्त्वात्मक जो साधारण सृष्टि है, उसे और विषययुक्त इन्द्रियों तथा बुद्धिकी सामर्थ आदि जो कुछ असाधारण उत्तम सृष्टि है, वह भी आत्माकी सृष्टि है,—यह मैंने सुना। सम्मति इस लोकमें युगके अनुसार जो सब सद्व्यवहार प्रचलित हैं, जिसके जरिये साधु लोग उसके आचरणमें प्रवृत्त होते हैं, मैं फिर उस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं। वेदमें भी कर्म्म करने और कर्म्म परित्यागका वचन वर्णित है; परन्तु इन दोनोंके अविरोध विषय विभागके जरिये विचार कर किस प्रकारसे मालूम करूं; आप इस होकी व्याख्या करिये मैं गुरुके उपदेशसे धर्म्माधर्म्म मूलक लौकिक रीतिको यथार्थ रीतिसे जानके धर्म्मानुष्ठानके जरिये पवित्र होकर और बुद्धिका संस्कार करके देह छोड़ कर अव्यय परमात्माका दर्शन करूंगा।

व्यासदेव बोले, कर्म्मके सहारे बुद्धिका संस्कार करनेसे आत्मदर्शन हुआ करता है, पहले प्रजापतिने स्वयं इस व्यवहारका विधान किया है, और पहलेके साधु महर्षि लोग भी वैसा ही आचरण कर गये हैं। परमर्षि लोग ब्रह्मचर्य्यसे सब लोकोंको जय किया करते हैं जो मनके जरिये बुद्धिसे अपने कल्याणकी इच्छा करें, वे बनवासी और फलमूलभोजी होकर अत्यन्त तपस्याचरण करके पवित्र आश्रमोंमें विचरते हुए सब भूतोंमें दयायुक्त होकर धूप रहित मूषक शब्द वर्ज्जित वाणप्रस्थ आश्रममें यथा समय भिक्षा प्राप्त करके ब्रह्मत्त्व लाभ कर सकेंगे। तुम निस्तुति और निर्नमस्कार होके शुभाशुभ परित्याग कर जिस किसी वस्तुसे होसके, उस हीसे तृप्ति लाभ करके वनको बीच अकेले ही विचरो।

शुकदेव बोले, "कर्म्म करो, और कर्म्म परित्याग करो," ये वेद वचन जो लौकिक वचनसे विरुद्ध होरहे हैं, इन दोनोंके प्रमाण वा अप्रमाण विषयमें किस प्रकार शास्त्रत्वकी सिद्धि हो सकती है। इससे पूर्व्वोक्त तीनों वचनोंके प्रमाणकी सिद्धिके लिये व्यवस्था करनी उचित है। उन दोनों वाक्योंका ही किस प्रकार प्रमाण हो और सब कर्म्मोंके अविरोधसे किस प्रकार मोक्ष हुआ करती है, इसे हो मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, "योजनगन्धापुत्र महर्षि वेदव्यासने कर्म्मके जरिये चित्तशुद्ध करके आत्माका

करूंगा,"—अपरिमित तेजसेयुक्त निज पुत्रके इस वचनकी अत्यन्त प्रशंसा करके उसके पूर्व प्रश्नके अनुसार वक्ष्यमाण रीतिसे यह उत्तर दिया।

व्यासदेव बोले, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और भिक्षुक ये सब निज आश्रम विहित कर्म्मोंका अनुष्ठान करनेसे मोक्ष लाभ करनेमें समर्थ होते हैं, अथवा जो लोग कामद्वेषसे रहित होके अकेले ही इन चारों आश्रमोंका विधिपूर्व्वक अनुष्ठान करते हैं, वह ब्रह्मविषयमें ज्ञानवान् होनेके योग्य हुआ करते हैं। ब्रह्म-प्राप्तिके विषयमें यह चतुष्पदी अधिरोहिणी प्रतिष्ठित है, इस ही निःश्रेणीमें चढ़के लोग ब्रह्मलोकमें जाते हैं। ब्रह्मचारी असूयारहित और धर्म्मार्थवित् होकर परमायुके चौथे भागके पहले भागमें गुरु अथवा गुरुपुत्रके समीप वास करे। गुरुके गृहमें जघन्य शय्यापर शयन करते हुए पहले उठके शिष्य अथवा सेवकका जो कुछ कार्य्य हो, वह सब सम्पन्न करे, कर्त्तव्य कर्म्मोंके सिद्ध होने पर गुरुको बगलमे खड़ा रहे, सब कार्य्य जाननेवाला सेवक और सब कर्म्मोंका करनेवाला होवे। शेष कर्म्मोंको समाप्त करके ज्ञानकी इच्छा करनेवाला शिष्य गुरुके समीप पढ़े, सरल और अपवादरहित होवे; गुरुके आवाहन करनेसे उसका आश्रय ग्रहण करे; पवित्र निपुण और गुणयुक्त होकर बीच बीचमें प्रियवचन कहे। जितेन्द्रिय और सावधान होकर स्निग्ध नेत्रसे गुरुको देखे। जबतक गुरु भोजन कर न चुकें, तबतक भोजन न करे, उनके बिना जल पीये, जल न पीवे, बिना बैठे उपविष्ट न होवे और बिना निद्रित हुए शयन न करे। दोनों हाथोंको नीचे ऊपर करके गुरुके दोनों पावोंको कोमलभावसे स्पर्श करे, दहने हाथसे दहने पांव और बायें हाथसे बायें चरणकी वन्दना करे। गुरुको प्रणाम करके कहे, हे भगवन्! शिष्यको शिक्षा-दान करिये; मैं यह करूंगा, इसे किया है; हे भगवन्! दूसरी बार आप जो आज्ञा करेंगे, वह भी करूंगा, इसी प्रकार सब विषयोंमें आज्ञा लेकर और विधिपूर्व्वक निवेदन करके सब कार्य्य करे, कार्य्य समाप्त करके फिर गुरुके समीप सब विषयोंका निवेदन करे, ब्रह्मचारी जिन सब गन्ध रसोंको सेवा नहीं करते, समावृत अर्थात् ब्रह्मचर्य्य कर्म्म समाप्त होनेपर समावर्त्तन संस्कारके जरिये संस्कारयुक्त होके उन सब विषयोंको सेवन करे, यह धर्म्मशास्त्रमें निश्चित है। ब्रह्मचारीके पक्षमें जो कुछ नियम हैं, उसे विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, ब्रह्मचारी सदा उसहीका आचरण करे और सदा गुरुको सेवा करनेमें तत्पर रहे। इस ही प्रकार गुरुको शक्तिके अनुसार प्रसन्न करके शिष्य होकर कर्म्मके जरिये ब्रह्मचर्य्य आश्रमसे निकलकर दूसरे आश्रममें निवास करे। वेदाध्ययन, व्रत और उपवाससे आयुका प्रथम भाग बीतने पर गुरुको दक्षिणा देकर विधिपूर्व्वक समावृत होके अर्थात् गुरुगृहसे लौटके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। फिर धर्म्मसे प्राप्त हुई दारा परिग्रह करके यत्नके सहित तीनों अग्निको उत्पन्न करते हुए गृहमेधी और व्रती होकर परमायुका दूसरा भाग बितानेके लिये गृहमें वास करे।

२४१ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, गृहस्थ पुरुष धर्म्मपत्नीयुक्त और सुव्रती होके अग्नि लाकर आयुके दूसरे भागके गृहमें निवास करे। कवियोंने गृहस्थकी चार प्रकारकी वृत्तिका विधान किया है, उसमेंसे पहले कुशूल धान्य अर्थात् तुच्छ धान्यके जरिये जीविका निर्व्वाह करे। दूसरा कुम्भ धान्य अर्थात् घड़े परिमित धान्य सञ्चय करके वृत्ति स्थापित करे, तीसरा अश्वस्तन अर्थात् दूसरे दिनके लिये, सञ्चय न करे। चौथा कापोती अर्थात् उञ्छवृत्ति

अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करे। इन-मेंसे धर्म्मके अनुसार जो जिसके अनन्तर वर्णित हुए, वेही उससे अधिक व्यायाम और धर्म्मचिन्तन हैं, गृहस्थ पुरुष यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह, इन षट् कर्म्मोंको अवलम्बन करके वर्त्तमान रहे, कोई दान और अध्ययन,इन दोनों कर्म्मोंका आसरा करके निवास करें और चौथे आश्रमी केवल ब्रह्मसत्र अर्थात् प्रणवकी उपासनामें रत रहें, इस समय गृहस्थोंके सुन्दर और महत् व्रत कहे जाते हैं। गृहस्थ पुरुष अपने लिये अन्न पाक न करावे और वृथा हत्या न करे। बकरे आदि प्राणी ही होवें अथवा अश्वत्थ आदि अप्राणी हो हो सबका ही यजुर्वेदीय कैदन मन्त्रसे संस्कार करना होगा। गृहस्थ पुरुष दिनके समय, रात्रिके आरम्भ और रात्रिकी समाप्तिमें कभी न सोवे; दिन और रात्रिमें भोजनका जो समय निर्द्दिष्ट है, उसके मध्यमें फिर भोजन न करें; ऋतुकालके अतिरिक्त भार्य्यासे सङ्ग न करे। गृहमें आके कोई ब्राह्मण अनादृत और अभुक्त रहके वास न करे,—इस विषयमें गृहस्थको सावधान होना योग्य है; अथिति लोग सदा सत्कारयुक्त होके हव्यकव्य ढोते हुए निवास करें; वेद-स्नान रत, व्रतस्नात स्वधर्म्मजीवी दान्त क्रियावान, तपस्वी, श्रोत्रियोंके अर्च्चनाके निमित्त हव्यकव्यका करना सदा ही योग्य है। दम्भके निमित्त नख लोम धारण करनेवाले, स्वधर्म्म नाशक, अविधिसे अग्निहोत्र त्यागनेवाले, और बड़े लोगोंके अप्रियकार्य्य करनेवाले चाण्डाल आदि जीवोंका भी गार्हस्थ्य धर्म्ममें संविभाग है, ब्रह्मचारी सन्न्यासी आदि जिन्हें स्वयं पाक करना निषिद्ध है, गृहमेधी मनुष्य उन्हें अन्नदान करें।

गृहस्थ पुरुष सदा विघसाशी और अमृत भोजी होवें, यज्ञसे शेष बचे हुए हविके सहित भोजनको अमृत कहा जाता है, और जो लोग सेवकोंके भोजन करनेके अनन्तर भोजन करते हैं, पण्डित लोग उसे ही विघसाशी कहते हैं; इसलिये यज्ञसे शेष भोजनका नाम अमृत और सेवकोंके भोजन करनेके अनन्तर जो भोजन किया जाता है, वह विघस पद वाच्य हुआ करता है। गृही मनुष्य स्वस्त्रीमें रत, दान्त, असूयारहित और जितेन्द्रिय होकर ऋत्विक पुरोहित, अतिथि, आश्रित लोग, वृद्ध, बालक आतुर, आचार्य्य मामा, वैद्य, स्वजन सम्बन्धी बान्धव, माता, पिता, बहिन अथवा सगोत्रा स्त्रियां, भ्राता, भार्य्या, पुत्र, कन्या और सेवकोंके सहित बिवाद न करे। इन सब लोगोंके संग अंश आदिके निमित्त झगड़ा परित्याग करनेमें मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। जो लोग इन सब विवादोंके विषयोंको जय करते हैं वे सब लोकोंको निःसन्देह जय करनेमें समर्थ होते हैं। पूरी रीतिसे आचार्य्यकी सेवा करनेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है; पिताके पूजित होनेसे मनुष्य प्रजापति लोक प्राप्तिके प्रभु हुआ करते हैं, अतिथियोंके सत्कार युक्त होनेसे इन्द्रलोक प्राप्त होता है; ऋत्विकोंके पूजित होनेसे देव-लोक मिलता है; कुलकी स्त्रियोंके सम्मानित होनेसे अप्सरा-लोकमें वास होता है, स्वजनोंके आदरयुक्त होनेसे वैश्वदेव लोकमें निवास हुआ करता है; सम्बन्धी बान्धवके सत्कारयुक्त होनेसे सब दिशामें यश फैलता है, माता और मामाके पूजित होनेसे भूलोकमें कीर्त्ति हुआ करती है, वृद्ध, बालक आतुर और कृश आदिके आदर करनेसे आकाशमें गति प्राप्त होती है। बड़ा भाई पिताके समान है, भार्य्या और पुत्र निज शरीर स्वरूप हैं; दास दासी निज परछांईके समान हैं, और कन्या अत्यन्त कृपापात्री है; इस लिये इन सबके जरिये उपयुक्त होनेपर भी गृह-धर्म्म परायण, विद्वान्, धर्म्मशील, जीतक्लम पुरुष क्रोधरहित होकर सदा उसे सहे। कोई धार्म्मिक मनुष्य धन लाभके लिये अग्निहोत्र आदि कर्म्म न करे; उञ्छशिल और कपोतव्रत

मैंहसे गृहस्थकी तीन प्रकारकी वृत्ति है; उसके बीच उत्तरोत्तर वृत्ति कल्याणकारी है। ऋषि लोग ब्रह्मचर्य्य आदि चारों आश्रमोंको उत्तरोत्तरको श्रेष्ठ कहा करते हैं। आश्रमोंके सब कार्य्योंको प्राप्त करनेको जो लोग इच्छा करते हैं, वे यथोक्त नियमोंका अवलम्बन करें, अथवा कुम्भधान्य वा उञ्छशिल वृत्तिके जरिये कपोतीवृत्ति अवलम्बन करें। ऐसे पूजनीय पुरुष जिस देशमें निवास करते हैं, उस राज्यकी समृद्धि वर्द्धित हुआ करती है। ऐसे नियमशाली मनुष्य पहले और पीछेके दश पुरुषोंको पवित्र करते हैं। जो लोग गृहस्थ वृत्ति अवलम्बन करके व्यथा रहित होकर पहले कहे हुए नियमोंको पालन करते हैं वे राजचक्रवर्त्ती मान्धाता आदि राजाओंने जिन लोकोंमें गमन किया है, उन्होंके समान लोकोंको पाते हैं। जितेन्द्रिय लोगोंको भी ऐसी ही गतिका विषय विहित है। उदारचित्त गृहस्थोंके निमित्त स्वर्गलोक ही हितकर है; वेददृष्ट विमानोंसे संयुक्त स्वर्गलोक नियत चित्तवाले गृहस्थोंके लिये प्रतिष्ठित है। जब कि गार्हस्थ धर्म्म स्वर्गके कारण रूपसे ब्रह्माके जरिये विहित हुआ है, तब मनुष्य क्रमसे गार्हस्थ अवलम्बन करके अन्तमें अवश्य ही स्वर्ग लोकमें वास करेंगे। इसके अनन्तर गार्हस्थसे भी परम उदार आश्रमका तीसरा आश्रम कहा जाता है, हड्डी, चर्म्म आदिके संश्लेष जनित शरीरको सुखानेवाले वनचारी लोगोंको इस आश्रममें शरीर त्यागनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो।

२४२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! पण्डितोंने जिस प्रकार गृहस्थ वृत्तिका विधान किया है, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। इसके अनन्तर जिस आश्रमका विषय वर्णित हुआ है उसे कहता हूं सुनो। गृहमेधी मनुष्य परम श्रेष्ठ कपोती वृत्तिको क्रमसे परित्याग करके सहधर्म्मिणीके सहित खिन्न होकर वाणप्रस्थ आश्रमको अवलम्बन करें। हे तात! प्रेच्छापूर्व्वक प्रवृत्त, पुण्य देशमें निवास करनेवाले सर्व्व लोकाश्रम स्वरूप वाणप्रस्थ आश्रमवालोंके वृत्तान्त सुननेसे तुम्हारा कल्याण होगा।

व्यासदेव बोले, गृहस्थ पुरुष जिस समय निज शरीरको ढलता हुआ तथा, पुत्रको सन्तानको अवलोकन करें, तब वनवासी होवें। वे परमायुका तीसरा भाग वाणप्रस्थाश्रममें व्यतीत करें; देवताओंको पूजा करके पूर्वोक्त तीनों अग्नियोंकी परिचर्य्या करते हुए नियुक्त रहें; सदा नियताहारी और अप्रमत्त होकर दिनके छठवें भागमें भोजन करें। इस आश्रममें वनके बीच पञ्चयज्ञ करनेके समय अग्निहोत्र, गौवें; यज्ञके अंग अकालकृष्ट व्रीहि, यव, नीवार, विघस और हवि आदि सम्प्रदान करें। वाणप्रस्थ आश्रममें भी ये चार प्रकारकी वृत्ति विहित हुई हैं। इस आश्रयमें अतिथि सत्कारके लिये अथवा यज्ञ क्रिया निर्व्वाहके वास्ते कोई कोई नित्य ही प्रक्षालन करते हैं, अर्थात् जिस दिन जो कुछ प्राप्त करते हैं, उस ही दिन उसे व्यय किया करते हैं, कोई कोई मासिक सञ्चय, कोई वार्षिक सञ्चय और कोई द्वादश वार्षिक द्रव्य आदि सञ्चय कर रखते हैं। इन लोगोंके बीच कोई कोई प्रावृट्कालमें अभ्रावकाश देशमें निवास करते हैं, हेमन्तकालमें जलमें स्थित हुआ करते हैं, ग्रीष्मकालमें पञ्चतपा होते और सदा परिमित भोजन करते हैं। कोई कोई भूमिपर विपरीत भावसे अर्थात् नतशिरा और ऊर्द्ध पाद होकर निवास करते हैं, कोई पांवके अग्रभागसे भूमि स्पर्श करके स्थिति किया करते हैं; दूसरे लोग किसी स्थानको अवलम्बन करके स्वल्प आहारसे जीविका निर्व्वाह करते हैं, अन्य लोग अध्वर कालमें अभिषिक्त होते

हैं, इस आश्रममें कोई कोई दन्त उलूखलिक अर्थात् दान्तसे उखलका कार्य्य निबाहते हैं, दूसरे लोग अश्मकुट्ट अर्थात् पत्थरके जरिये धान्य आदि शस्योंको भूसीरहित किया करते हैं। कोई कोई शुक्लपक्षमें एक ही बार क्वाथयुक्त यवागू पीते हैं, कोई कृष्ण पक्षमें उक्त क्वाथ पान करते हैं अथवा शास्त्रके अनुसार भोजन किया करते हैं, कोई कोई दृढ़व्रती मनुष्य मूलके जरिये कोई फलके सहारे और कोई फूलके जरिये जीवन धारण करते हुए यथा न्यायसे वैखानस वृत्ति अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह किया करते हैं। वे सब मनीषि पुरुषोंके ये सब और इनके अतिरिक्त दूसरी विविध दीक्षा हैं और उपनिषदोंके बीच जो विदित होता है अर्थात् स्थिर होके आत्मासे ही आत्मा का दर्शन करे, यह सर्व्वाश्रम साधारण धर्म्म है।

हे तात! इस युगमें सर्व्वार्थदर्शी ब्राह्मणोंके जरिये वाणप्रस्थ और गृहस्थ आश्रमसे असाधारण धर्म्म प्रवर्त्तित होरहा है। अगस्त्य, सप्तऋषि मधुच्छन्द, अघमर्षण, सांस्कृति, सुदिवातण्डि, यथावास, अकृतश्रम, अहोवीर्य्य, काव्य, भाण्ड्य मेधातिथि, बुध, बलवान वर्णविपाक, शून्यपाल और कृतश्रम तथा जिन्होंने धर्म्मके फल सत्यसङ्कल्प आदिको प्रत्यक्ष किया है, वे प्रत्यक्षधर्म्मवाले ऋषिलोग और यायावर समूहोंने इसही धर्म्मका आचरण किया था, उसहीसे वे लोग स्वर्गमें गये हैं; धर्म्म नैपुण्यदर्शी बहुतेरे महर्षि लोग तथा उनके अतिरिक्त अनेक ब्राह्मणोंने अरण्यको अवलम्बन किया था। वैखानस, वालखिल्य सैकत और कृच्छ्र चान्द्रायण आदि परम निबन्धन कर्म्मोंके जरिये निरानन्द, धर्म्ममें रत जितेन्द्रिय ब्राह्मण लोग तथा प्रत्यक्षधर्म्मा महर्षि लोग वाणप्रस्थको अवलम्बन करके स्वर्गमें गये हैं; नक्षत्र, ग्रह तारासे भिन्न जो सब निर्भय ज्योति समूह आकाशमें दीख पड़ती हैं, वेही पुण्यवान् पुरुषोंके अवलम्ब हैं। मनुष्य जराके जरिये परिहृत और व्याधिसे प्रपीड़ित होकर अन्तमें परमायुके चौथे भागमें वाणप्रस्थाश्रम परित्याग करें। वह सदा सम्पादन करने योग्य सर्व्वस्व दक्षिणासत्र समाप्त करके आत्मयाजी, आत्मरति, आत्मक्रीड़ और आत्मसंश्रय होकर सब परिग्रह परित्याग कर आत्मामें तीनों अग्नि आरोपित करके सदा सम्पादनीय ब्रह्मयज्ञ आदि और दर्श पौर्णमास यज्ञका निर्व्वाह करनेमें रत रहें, जिस समय याज्ञिकोंकी यज्ञप्रवृत्ति निवृत्त होके आत्मामें याग साधन करनेकी इच्छा होती है, उस समय देहत्याग पर्य्यन्त शरीरमें तीनों अग्नियोंको आरोपित करनी होगी। हृदय गार्हपत्य अग्नि, मन अन्वाहार्य्य-पचन अग्नि और मुख आहवनीय अग्नि है यह वैश्वानर विद्याप्रोक्त प्रकरणके जरिये जानकर देहमें उक्त तीनों अग्निका याग करना होगा। आत्मयाजी मनीषि भोजनके समय अन्नकी निन्दा न करके "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि यजुर्वेदीय मन्त्रोंको उच्चारण करके पहले पञ्च प्राणोंको पांच ग्रास वा छः ग्रास अन्न प्रदान करे। अनन्तर वाण प्रस्थ मुनि केश लोम और नखोंसे परिपूरित और कर्म्मनिर्व्वाहसे पवित्र होकर उस आश्रमसे पवित्र चौथे आश्रममें गमन करे। जो ब्राह्मण सब भूतोंको अभयदान करके सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करता है, वह परलोकमें ज्योतिर्म्मय लोकोंको प्राप्त करके अनन्त सुख भोग किया करता है। सुशील सद्वृत्तिवाले, पापरहित आत्मवित् पुरुष ऐहिक और पारलौकिक किसी कर्म्मके करनेकी अभिलाषा नहीं करते वे क्रोध मोहहीन और सन्धि विग्रहसे रहित होकर उदासीनकी भांति निवास करते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह, अभिधेय, यम और शौच, सन्तोष, तपस्या, वेदाध्ययन और ईश्वर प्रणिधानाख्य नियमोंमें निबद्ध न रहें। अशास्त्रीय सूत्र और आकृति मन्त्रमें विक्रम प्रकाश न करें; आत्मवित् पुरुषोंकी यथेष्ट गति अर्थात् सभी

मुक्ति वा अमुक्ति इच्छानुसार हुआ करती है धर्म्मपरायण जितेन्द्रिय लोगोंको कोई संशय नहीं रहता। वाणप्रस्थ आश्रमके अनन्तर श्रेष्ठ गुणोंके जरिये ब्रह्मचर्य्य आदि तीनों आश्रमोंसे समधिक रूपसे विख्यात् धर्म्मयुक्त चौथे आश्रमका विषय कहता हूं, सुनो।

२४३ अध्याय समाप्त।

एकदेव बोले, वाणप्रस्थाश्रममें यथारीतिसे वर्त्तमान पुरुष, परम वेदवस्तु ब्रह्मको जाननेकी इच्छा करनेसे किस प्रकार शक्तिके सहित आत्मयोगका अभ्यास करेंगे।

व्यासदेव बोले, ब्रह्मचर्य्य और गार्हस्थ आश्रमके जरिये चित्तशुद्धि लाभ करनेके अनन्तर परमार्थ विषयमें जो कुछ कर्त्तव्य है, उसे तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ और वाणप्रस्थ, इन तीनों आश्रमोंमें चित्तके दोषोंको नष्ट करके सबसे उत्तम सन्न्यास धर्म्मरूपी परमपदमें प्रव्रज्या करे; इसलिये तुम इस ही प्रकार योगानुष्ठान करो और इसे सुनो, योगी पुरुष सहायरहित होकर अकेले ही धर्म्माचरण करें, जो आत्मदर्शी मनुष्य अकेला ही धर्म्माचरण करता है, वह सर्व्वव्यापीत्व निबन्धनसे किसी पदार्थको परित्याग नहीं करता और मोक्षसुखसे परित्यक्त नहीं होता। वह निरग्नि और निराश्रय होकर अन्नके निमित्त गांवमें जाता है, चित्तको समाधान करनेवाले पुरुष अश्व-स्तन-विधाता न होवें, अर्थात् दूसरे दिनके लिये अन्न सञ्चय न करें; लघुभोजी और नियताहारी होकर दिनमें एक वार अन्न भोजन करें; कपाल और कषाय वस्त्र धारण तरुमूलका आश्रय, असहायता और सब भूतोंके विषयमें उपेक्षा अर्थात् प्रीति-द्वेष हीनता ये सब भिक्षुकके लक्षण हैं, डरे हुए हाथी कूएमें प्रवेश करनेसे जिस प्रकार होते हैं, वैसे ही दूसरोंके वचन जिनमें प्रविष्ट हुआ करते हैं, अर्थात् जो लोग दूसरेके जरिये आक्रुश्यमान होके भी क्रोध नहीं करते और जो वक्ताके निकट फिर गमन करनेमें विरत रहते हैं, वे ही कैवल्य आश्रममें वास करनेमें समर्थ होते हैं।

चौथे आश्रमी भिक्षु वाह्यवस्तुओंको और न देखें, कभी किसीकी निन्दा विशेष करके ब्राह्मकी निन्दा सुनने वा किसी भांतिसे करना योग्य नहीं है। जिससे ब्राह्मणोंका कुशल हो सदा वैसा ही वचन कहें; आत्मनिन्दाके समय चुप रहें; और मौनावलम्बन ही भवरोगकी चिकित्सा है। जिनके अकेले निवास करनेसे सूना स्थान भी लोगोंसे परिपूरित बोध होता है, लोगोंसे पूरित स्थान जिनके अभावमें सूना हुआ करता है, देवता लोग उन्हें ही ब्रह्मिष्ठ समझते हैं। जो सांपसे डरनेकी भांति लोगोंसे भयभीत होते हैं, नरक भयके समान मिष्टान्न-जनित तृप्तिसे विरत रहते हैं और मृतक शरीरके समान स्त्रियोंसे भय करते हैं, उन्हें देवता भी ब्रह्मिष्ठ समझते हैं। जो सम्मानित होनेसे हर्षित नहीं होते, असम्मानित होनेसे क्रोध नहीं करते और जो लोग सब प्राणियोंको अभय दान करते हैं, देवता लोग उन्हें ब्रह्मिष्ठ जानते हैं; मरनेका अभिनन्दन न करे, जीवनका भी अभिनन्दन करना योग्य नहीं है; जैसे सेवक स्वामीकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करता है, वैसे ही समयकी प्रतीक्षा करे। जो लोग वचन और मनको दोष रहित करके स्वयं सब पापोंसे मुक्त हुए हैं, उन निरमित्र मनुष्योंको भयका कौनसा विषय है। सब प्राणियोंसे जो लोग अभय हुए हैं और जिनसे सब भूतोंको भय नहीं होता उन मोहसे छूटे हुए पुरुषोंको किसी प्रकार भयकी सम्भावना नहीं होसकती। जैसे द्विरद पद प्रक्षेपके बीच मनुष्य और पशु आदिके पांवके चिन्ह लुप्त होजाते हैं, वैसेही शरीरको शीर्ण करके समाविष्ट होकर जो लोग योगसे

हुए हैं, उनके निकट इन्द्रादि पद विदित हुआ करता है। योगमें समस्त कर्म फलोंकाही अन्तर्भाव होता है।

इस ही प्रकार अहिंसामें सब धर्म, अर्थ अन्तर्भूत हुआ करते हैं, जो हिंसा नहीं करते, वे सदा अमृत उपभोग किया करते हैं। जो लोग अहिंसक, समदर्शी, सत्य बोलनेवाले; धृतिमान्, संयतेन्द्रिय और सब भूतोंके शरण्य हैं, वे सबसे उत्तम गति पाते हैं। अवश्यम्भावी मृत्यु इसही प्रकार आत्मानुभव स्वरूप प्रज्ञानसे तृप्त, निर्भय, आशा रहित पुरुषोंको अतिक्रम नहीं कर सकती, बल्कि वेही मृत्युको अतिक्रम किया करते हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरमें "मैं" इस अभिमान स्वरूप सर्व्वसङ्गसे जो लोग मुक्त हुए हैं, निर्व्विषयत्व निबन्धनसे शून्यकी भांति मौनभावसे जो लोग निवास किया करते हैं, और जो अद्दश्य और एकचर होकर शान्तभावसे स्थिति करते हैं, देवता लोग उन्हें ब्राह्मिष्ठ समझते हैं। जिसका जीवन केवल धर्मके निमित्त है, धर्माचरण भक्त जनोंकी शिक्षाके लिये है, समाधि और व्युत्थान सब लोगोंके शिक्षाके निमित्त है, देवता लोग उन्हें ब्राह्मिष्ठ समझते हैं। जिन्हें न आशा है, न आरम्भ है, जो किसीको नमस्कार वा स्तुति नहीं करते और जो सब वासनासे मुक्त हुए हैं। देवता लोग उन्हें ब्राह्मिष्ठ समझते हैं। प्राणिमात्रही सुखमें रत हुआ करते हैं, और सबही दुःखसे अत्यन्तही डरते हैं, इसलिये श्रद्धावान् मनुष्य उनके भय उत्पन्न होनेके लिये खिन्न होकर कर्म करनेमें यत्नवान न होवे; क्यों कि कर्ममात्र ही हिंसायुक्त है, इससे उन्हें साधुओंको त्याग करना योग्य है। सब जीवोंमें अभयदान ही सब दानोंसे उत्तम है, यह दान सब प्रकारके दानोंसे समधिक भावसे वर्त्तमान रहता है; जो पहिले हिंसामय धर्म परित्याग करते हैं, वे प्रजाओंसे अभय प्राप्ति स्वरूप अनन्त सुखयुक्त मोक्षपद लाभ किया करते हैं। जो आत्मयाजी, योगी, वाणप्रस्थकी भांति उत्तान मुखसे "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि अनेक मन्त्रोंके जरिये पञ्च आहुति नहीं देते, वरन प्राणादि पञ्चक और इन्द्रिय वा मनको आत्मामें लीन किया करते हैं, वे चराचर जीवोंके नाभि स्वरूप और त्रैलोकात्मा वैश्वानरके आस्पद होते हैं, उनके मस्तक आदि सब अङ्ग वैश्वानरके अवयव होते, उनके कृत अकृत सब कर्म वैश्वानरके कार्य्यरूपसे प्रतिपन्न हुआ करते हैं। नाभिसे हृदय पर्य्यन्त प्रादेश-परिमित स्थानमें जो प्रकट होता है, आत्मयाजी योगी उस चिन्मात्र पुरुषमें प्राण उपलक्षित निखिल प्रपञ्चको लीन करता है, वे लोकके सहित सब लोकोंमें ही उसका आत्म संस्थ अग्निहोत्र सम्पन्न होता है। जो लोग द्योतमान, सूक्ष्म तेजमय सूत्रात्माको जानते हैं, और तीनों गुणोंसे परिपूरित माया उपाधिक ईश्वरको तथा सूक्ष्म प्रत्यय स्वरूप उपाधि रहित आत्माको जान सकते हैं, वे सब लोकोंमें पूजित होते हैं, और मनुष्य तथा देवता लोग उनके सुकृतको प्रशंसा किया करते हैं।

निखिल वेद विषयादि जानने योग्य वस्तुएं कर्मकाण्डकी सब विधि, शब्दैकगम्य परलोक आदिनिवृत्त और आत्माकी सत्यस्वभावतारूपी परमार्थता, ये सब शरीरात्मा प्रत्येय स्वरूपसे वर्त्तमान हैं। इसे जो जानता है, उस सर्व्वेश्वरकी सदा सेवा करनेके लिये देवता लोग भी अभिलाष किया करते हैं। जो भूमण्डलमें असक्त रूपसे वर्त्तमान है, प्रत्यगात्मता निबन्धनसे द्युलोकमें भ जो अप्रमेय होकर विद्यमान हैं, जो ब्रह्माण्डके बीच प्रकट हो रहा है, जो किरणकी भांति प्रसमर तेज, ज्ञान आदिके जरिये प्रकाशित होकर जीव भावको प्राप्त हुआ है, जो अनेक प्रतत्न स्थानीय देवता रूपसे संयुक्त होरहा है, उस

आसक्ति रहित चिन्मय आत्माको भोग्य शरीर और हृदयाकाश पुण्डरीकके बीच जो स्थित जानता है, देवता लोग भी उसकी सदा सेवा करनेके निमित्त अभिलाष किया करते हैं। जो कालचक्र सदा परिवर्त्तनशील होके भी प्राणियोंकी आयु अजरभावसे व्यतीत कर रहा है, छहों ऋतु जिसकी नाभि और बारहों महीने जिसके अरस्वरूप हैं, दर्शसंक्रमण आदि जिसमें सुन्दर पर्व्व स्वरूप हुए हैं, यह दृश्यमान जगत जिसके मुखमें लीन होरहा है, वही कालचक्र जिसकी बुद्धिमें वर्त्तमान है, देवता भी उसकी सेवा करनेके लिये सदा इच्छा किया करते हैं। जो पूरी रीतिसे प्रसन्नताके आधार होनेसे जगतके शरीरस्वरूप और स्थूल सूक्ष्म सब लोकोंमें ही सर्व्वकारण रूपसे स्थित होरहा है, वही सम्प्रदायाभिन्न स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीरवाले जीवों और प्राण आदिकी तृप्तिसाधन करता है, प्राण आदि तृप्त होकर उसके सुखको तृप्त किया करते हैं। उस तेजमय नित्य स्वरूप पुराण पुरुषका जो आसरा करते हैं, वे लोग अनन्त अभयलोकमें जाते हैं। जिससे सब प्राणी कभी भय नहीं करते, उसे सब प्राणियोंसे कभी भय नहीं होता। इस लोक और परलोकमें अनिन्दित होकर जो दूसरेकी निन्दा नहीं करते, वेही ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण परमात्माका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं, अन्तमें उनका अज्ञान नष्ट होनेसे जब स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीर नष्ट होती हैं, तब वे भोग्य लोकमें गमन किया करते हैं। जिसे न क्रोध है, न मोह है और सुवर्ण तथा लोष्ट्रमें समज्ञान हुआ है, जो कोष रहित और सन्धि विग्रहसे हीन हुए हैं, जिन्होंने निन्दा, स्तुति परित्याग की है, जिन्हें प्रिय वा अप्रिय कुछ भी नहीं है, वे चौथे आश्रमी भिक्षुक उदासीनकी भांति विचरते रहते हैं।

२४४ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, देह, इन्द्रिय और मन आदिके बीच प्रकृतिके विकारसे जीवत्व स्थित होरहा है अर्थात् अधिष्ठातृत्व, कर्त्तृत्व और भोक्तृत्व भावको प्राप्त हुआ है, परन्तु नेत्र आदि इन्द्रिय जड़त्व निबन्धनसे आत्माको प्रकाशित नहीं कर सकतीं, आत्मा चेतन है, इसहीसे उक्त इन्द्रियोंको प्रकाशित करता है। जैसे सारथी दृढ़, बलवान, अत्यन्त दान्त उत्तम घोड़ोंके जरिये जाने योग्य स्थानमें गमन करता है, वैसे ही आत्मा मनके सहित पांचों इन्द्रियोंके जरिये विषय-प्रदेशमें गमन किया करता है। इन्द्रियोंसे रूप आदि विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन उत्तम है, मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे आत्मा महान् है, अर्थात् शुद्ध "त्वं" पदार्थ उत्कृष्ट है, महत्तत्त्वसे उपादान अव्यक्त नामक अज्ञान श्रेष्ठ है, अव्यक्तसे अमृत स्वरूप चिदात्मा परम श्रेष्ठ है, अमृतसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है, वह उत्कर्षकी सीमा और परम गति है। इस ही प्रकार आत्मा सब भूतोंके बीच काष्ठका क्रान्तकी भांति गूढ़ भावसे स्थिति करनेपर भी प्रकाशित नहीं होता। सूक्ष्मदर्शी योगी लोग केवल सूक्ष्म बुद्धिके सहारे उसका दर्शन किया करते हैं। वे लोग धारणायुक्त बुद्धिके जरिये मनके सहित इन्द्रियों और इन्द्रियोंके गूढ़ विषयोंको अन्तरात्मामें पूर्ण रीतिसे लय करके ध्येय, ध्यान और ध्यातृ-रूप इन तीनोंको ही विचारते हैं। "मैं ब्रह्म-हूं," इस वचनके निमित्त बुद्धि वृत्तिरूपी विद्याके जरिये संस्कारयुक्त मनको ध्यानके सहारे स्थिर करके ईशभाव प्रविलापनके अनन्तर प्रशान्तचित्तवाले योगी कैवल्य पद पाते हैं; और इन्द्रियोंने जिसके चित्तको हरण किया है, जिसकी स्मरणशक्ति विचलित हुई है, वैसा मनुष्य काम आदिका आत्म समर्पण करके मृत्युके सुखमें पतित हुआ करता है। सङ्कल्पको नष्ट करके सूक्ष्म बुद्धिके बीच चित्त

निवेश करे, सूक्ष्म बुद्धिके बीच चित्त निवेश शेषमें चण मुहूर्त्तादि काल करके नाश करे; क्यों कि आत्मवित पुरुष ही कालका विनाश साधन किया करते हैं। जो पुरुष इस लोकमें चित्तप्रसादके जरिये शुभाशुभ परित्याग करता है, वह प्रसन्नचित्त यति आत्मनिष्ठ होकर अत्यन्त ही सुख सम्भोग किया करता है। सुषुप्तिकालकी सुखनिद्रा अथवा निवास स्थलमें दीप्यमान निष्कम्प प्रदीपकी भांति प्रसादका लक्षण है। इस ही प्रकार पूर्व्व और अपर कालमें परमात्मामें जीवात्माका योग करते हुए लघुभोजी शुद्ध चित्तवाले योगी आत्मामें ही आत्माको अवलोकन करते हैं। हे पुत्र! ये आत्म प्रत्यय सिद्ध अनुशासन शास्त्र सब वेदोंके रहस्य हैं, ये केवल अनुमानसे सेवा आगममात्रसे मालूम नहीं होसकते सब धर्म्मों और सत्यख्यानमें जो सारभाग है, उसे और सब वेदोंसे उत्तम एक हजार दश ऋक्मन्त्रोंको मथके यह अमृत उद्धृत हुआ है, दहीसे नवीन घृत और काठसे अग्नि प्रकट होनेकी भांति पुत्रके निमित्त ज्ञानियोंको ज्ञान स्वरूप यह शास्त्र समुद्धृत हुआ है। हे पुत्र! यह अनुशासन शास्त्र स्नातक ब्राह्मणोंके निकट पाठ करना चाहिये; अप्रशान्त, अदान्त और जो पुरुष तपस्वी नहीं हैं, उनके समीप इसे कहना योग्य नहीं है। अवेदज्ञ, अननुगत, असूयक, असरल, अनिर्दिष्टकारी, चुगुल, अपनी बड़ाई करनेवाले और जो पुरुष तर्क शास्त्रके जरिये जले हुए हैं, उनके समीप यह अनुशासन वर्णन करना योग्य नहीं है; बड़ाईके योग्य, प्रशान्त, तपस्वी, प्रियपुत्र और अनुगत शिष्यसे यह रहस्य धर्म्म अवश्य कहना चाहिये, दूसरे लोगोंके निकट किसी प्रकारसे कहना उचित नहीं है। कोई मनुष्य यदि रत्न पूरित पृथ्वीमण्डल दान करे, तत्ववित् पुरुष उससे भी इस धर्म्मको श्रेष्ठ जाने। इससे भी गुप्त जो अतिमानुष अध्यात्म विषय है, महर्षियोंने जिसका दर्शन किया है, वेदान्तके बीच जो वर्णित हुआ करता है, और तुम मुझसे जिसका विषय पूछते हो, मैं उसे तुम्हारे समीप वर्णन करूंगा। हे पुत्र! तुम्हारे अन्तःकरणमें जो परम पदार्थ वर्त्तमान होरहा है, और जिस किसी विषयमें तुम्हें संशय है, मैं वह सब विषय तुमसे कहता हूं सुनो; और तुमसे क्या कहना होगा?

२४५ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, हे भगवन्! फिर अध्यात्म विषय विस्तारके सहित मेरे समीप वर्णन करिये। हे ऋषि सत्तम! अध्यात्म विषय किसे कहते हैं, और वह कैसा है?

व्यासदेव बोले, पुरुषके सम्बन्धमें यह अध्यात्म विषय जो पठित होता है, उसे तुम्हारे निकट वर्णन करता हूं, तुम उसकी इस व्याख्याको सुनो। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश, ये पञ्चमहाभूत समुद्रकी तरङ्गमालाकी भांति जरायुज आदि जीवोंके बीच प्रति जीवोंमें पृथक् पृथक् कल्पित हुए हैं। जैसे कछुआ निज अङ्गोंको फैलाकर फिर समेट लेता है, वैसे ही सब महाभूत शुद्र शरीरकारसे युक्त महाभूतोंमें स्थित रहके सृष्टि और प्रलय आदि बिकारोंको उत्पन्न किया करते हैं; इसलिये शरीरके बीच ही सपनेकी तरह ब्रह्माण्डका उदय और प्रलय होता है; इससे स्थावर जङ्गमात्मक यह समस्त जगत अल्पभूतमय उन शरीरान्तर महाभूतोंमें सृष्टि और प्रलय निर्दिष्ट हुआ करती है। हे तात! देवता मनुष्य तिर्य्यग् आदि सब प्राणियोंमें ही पञ्च महाभूत वर्त्तमान हैं, तो भी प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले प्रजापति सृष्टि कालमें जिन कर्म्मोंके लिये जिसे उत्पन्न करते हैं, उनमें पञ्चभूतोंका वैषोपविधान किया करते हैं।

शुकदेव बोले, विधाताने शरीरके अवयव, बुद्धि और इन्द्रिय आदिमें जो पञ्चभूतोंकी विषमताकी है, वह किस प्रकार जानी जाती है। इन्द्रिय वा शब्दगुण हो कितने प्रकारके हैं, और वे किस प्रकार जाने जाते हैं।

व्यासदेव बोले, हे पुत्र! तुमने जिस विषयमें प्रश्न किया है, उसे बिस्तारके सहित यथावत वर्णन करता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर इस विषयका यथार्थ तत्व सुनो। शब्द श्रवणेन्द्रिय और शरीरके सब छिद्र आकाशसे उत्पन्न हुए हैं, प्राण, चेष्टा और स्पर्शेन्द्रिय, ये तीनों वायुके बिकार हैं, रूप, नेत्र और विपाक अर्थात् जठराग्नि रूपसे ज्योति त्रिविध भावसे बिहित है; रस रसको इन्द्रियां और स्नेह, ये तीनों जलके गुण हैं, घ्रेय वस्तु, घ्राणेन्द्रिय और शरीरके कठोर अंश ये तीनों भूमिके बिकार हैं; इन सब ये सब इन्द्रियोंसे पञ्चभौतिक शरीर व्याख्यात् हुआ है। वायुका गुण स्पर्श, जलका गुण रस, अग्निका गुण रूप, आकाशका गुण शब्द और पृथ्वीका गुण गन्ध है; छूना, चखना, देखना, सुनना, और सूंघना, इन्द्रियोंके जरिये मालूम हुआ करते हैं। सङ्कल्प-बिकल्पात्मक मन, निश्चय करनेवाली बुद्धि, पूर्व्ववासना स्वभाव ये तीनों स्वयोनिज हैं, अर्थात् आत्मयोनि भूतोंसे ये सब उत्पन्न हुए हैं; परन्तु सत्त्वादि गुणोंसे कार्य्य स्वरूप होके उन सत्त्वादि गुणोंको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको पसारके फिर नियमित करता है, वैसे ही बुद्धि सब इन्द्रियोंको उत्पन्न करके उन्हें नियमित कर रखती है। पांवके ऊपर और सिरके नीचे इन सारी शरीरके बीच जो कुछ करणीय देखा जाता है, उन सबमें ही बुद्धि वर्त्तमान है, अर्थात् देहमें "मैं" इस अनुभवका बिषय बुद्धि स्वरूप है। बुद्धि शब्दादि गुणोंको प्रेरणा करतो है, अर्थात् शब्दादि स्वरूपताको प्राप्त होते हैं। बुद्धि ही मनके सहित इन्द्रियोंको प्रेरणा किया करती है, बुद्धि न रहनेपर बिषय और इन्द्रियें प्रथित नहीं होती, मनुष्योंके शरीरमें पञ्चेन्द्रिय हैं, मन उनके बीच छठवां कहा जाता है, बुद्धिको सातवीं कहते हैं, क्षेत्रज्ञ अष्टम रूपसे माना गया है, नेत्रको आलोचनाके लिये मन संशय करता है, बुद्धि निश्चय किया करती है, क्षेत्रज्ञ साक्षी स्वरूप कहा जाता है, रज, तम और सतोगुण, ये स्वयोनिज होकर देवता मनुष्य सब भूतोंमें निवास करते हैं, कार्य्यसे इन सब गुणोंको जानना उचित है। उसमेंसे आत्मामें जो कुछ प्रीति संयुक्त मालूम होता है और जो प्रशान्तकी भांति पूरीरीतिसे शुद्ध है, उसे सतोगुण समझो; शरीर और मनको जो सन्तापयुक्त करता है, उसे रजोगुण जाने और जो संमोहसे संयुक्त हैं, तथा जिसका विषय अव्यक्त तर्कसे अगोचर वा अविज्ञेय है, उसे तमोगुण कहके निश्चय करो। किसी कारण वा अकारणसे हो प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, समता, स्वस्थदेहता और स्वस्थ-चित्तता हो, तो समझो कि उसमें ही सतोगुण वर्त्तमान है। अभिमान मृषावाद, लोभ, मोह, और क्षमा, यदि कारण वा अकारणसे उत्पन्न हो तो उसे ही रजोगुणका लक्षण समझना चाहिये। मोह, प्रमाद, निद्रा, तन्द्रा, और प्रबोधिता यदि किसो प्रकारसे वर्त्तमान हो, तो उसे ही तमोगुण जानना योग्य है।

२४६ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, निश्चयात्मिका बुद्धि मनरूपसे सङ्कल्प मात्रके जरिये विविध पदार्थोंको उत्पन्न करती है, हृदयके प्रिय और अप्रिय सब विषय मालूम होते हैं, कर्म्म प्रेरणा तीन प्रकारको है। इन्द्रियोंसे सङ्कल्प जनित निवस्सनसे सब विषय सूक्ष्म हैं, बिषयोंसे मन सूक्ष्म, मनसे बुद्धि सूक्ष्म है, और बुद्धिसे आत्मा सूक्ष्म है,—

यह महर्षियोंको अभिमत है। बुद्धि मनुष्योंकी व्यवहारिक आत्मा है, बुद्धि ही स्वयं आत्मा-स्वरूपसे स्थिति करती है, बुद्धि जिस समय बिबिध पदार्थोंको उत्पन्न करती है, उस समय मन शब्द बाच्य होती है। इन्द्रियोंके पृथक् भावके कारण बुद्धि बिकृत होती है, इस ही निमित्त जब बुद्धि सुनती है तब कान, जब स्पर्श करती है तब त्वचा, जब दर्शन करती है तब नेत्र, जब चखती है तब जीभ और जब सूंघती है, तब घ्राण कहके बर्णित होती है, इसलिये बुद्धि पृथक् पृथक् रूपसे बिकृत हुआ करती है बुद्धिके सब बिकारोंको इन्द्रिय कहते हैं, चिदात्मा प्रदस्थ भावसे उन सबमें और सात्विक, राजसिक और तामसिक भावोंसे बर्त्त-मान है। पुरुषाधिष्ठिता बुद्धि भी उक्त तीनों भावोंमें निवास करती है; मनुष्य कभी सुख लाभ करता है, तौभी शोकित होता है; इस संसारमें कभी कोई निरवच्छिन्न सुखशाली अथवा दुरवगाह दुःखभागी नहीं होता। जैसे तरङ्ग मालायुक्त सरित्पति समुद्र नदियोंके बेगको शान्त करता है, वैसे ही वह भावात्मिका बुद्धि सत, रज, तम, इन तीनों भावोंको अभि-भव किया करती है। जब बुद्धि किसी बिष-यकी अभिलाष करती है, तब उसे मन कहा जाता है। सब इन्द्रिय-गोलक बुद्धिमें अन्तर्भूत होकर पृथक् पृथक् निवास करते हैं। रूप आदि ज्ञान साधनमें तत्पर इन्द्रियोंको सब भांतिसे बिजय करना उचित है। जो इन्द्रिय जिस समय बुद्धिके अनुगत होती हैं, उस समय पहली बुद्धि पृथग्भूत न रहनेपर भी अन्तमें सङ्कल्पात्मक घटादि बिषयोंमें बर्त्तमान हुआ करती है; अर्थात् बुद्धिसे अनुगृहीत होके इन्द्रियां सङ्कल्पजनित बाह्य बिषयोंका ज्ञान करती हैं। इस ही प्रकार क्रमसे रूप आदिका ज्ञान उत्पन्न होता है, सब बिषयोंका ज्ञान युगपत् नहीं होता। जैसे अरोंका रथनेमिके बीच सम्बन्ध रहता है, वैसे ही सात्विक, राज-सिक और तामसिक भाव मन, बुद्धि तथा अहंकारमें बिषयके अनुसार बर्त्तमान रहते हैं। जब कि एक मात्र स्त्रीसे पतिकी प्रीति, सप-त्नियोंका द्वेष, दूसरेको मोह होते दीख पड़ता है, तब बिषयदर्शनसे ही आन्तरिक भावोंकी उत्पत्ति होती है, इसे ही अङ्गीकार करना होगा। इस बिषयमें अनुभव वैषम्यके कारण जो लोग बिषयको ही त्रिगुणात्मक कहते हैं, उनका मत युक्ति पूरित नहीं है; क्यों कि एक मात्र स्त्रीमें पतिकी प्रीति, सपत्नीके द्वेष और दूसरोंके मोह सदा ही बर्त्तमान नहीं रहते; इसलिये मन, बुद्धि, अहङ्कार ही सत, रज और तमोमय हैं, सब बिषय तन्मय नहीं हैं। बुद्धिस्थ बिषय सिद्धि अर्थात् हृदयगुहामें स्थित परब्रह्म बिषयक परमार्थिक ज्ञान साधनके निमित्त मन किरणरूपी इन्द्रियोंके जरिये सत्तम परब्रह्मको छिपानेवाले अज्ञानका बिनाश किया करता है। योगाचारियोंका यह योग जिस प्रकार सिद्ध होता है, उदासीन मनुष्योंका भी यदृच्छाक्रमसे उस ही प्रकार योग सिद्ध हुआ करता है, बुद्धिमान् मनुष्य इस दृश्यमान् जग-त्को इस ही स्वभावसे बुद्धिमात्रसे कल्पित जानके मोहित नहीं होते; वे किसी बिषयमें हर्ष वा शोक प्रकाश नहीं करते, सदा मत्सर-हीन होके निवास करते हैं। काम्यप्रान बिषय गोचर इन्द्रियोंके निर्दोष होनेपर भी दुष्टति-शाली मलिन चित्तवाले मनुष्य उसके सहारे आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते; जिस समय पुरुष मनके जरिये इन्द्रियोंके बेगको पूर्ण रीतिसे नियमित करता है, उस समय दीपकके प्रकाशके जरिये घटादि पदा-र्थोंकी आकृतिके समान उसके समीप आत्मा प्रकाशित होता है। सब जीवोंका ही जिस समय मोह दूर होता है, तब मानो वास्तविक सब बिषय ही उनके समीप मालूम हुआ करते

हैं, वैसे ही कण्ठगत विस्मृत चामीकरकी भांति अज्ञानके दूर होनेसे ही आत्माकी प्राप्ति हुआ करती है। जैसे जलचारी पक्षी पानीमें विचरते हुए उसमें लिप्त नहीं होते, वैसे ही विमुक्त स्वभाववाले योगी लोग पूर्व्वकृत पुण्यपापसे लिप्त हुआ करते हैं। इस ही प्रकार शुद्धचित्तवाले मनुष्य विषयोंको सेवन करनेसे भी पापस्पर्शसे रहित हुआ करते हैं। वह पुत्र कलत्र आदि स्वजनोंमें आसक्त रहके भी उनके नाशके निमित्त शोक आदिसे अभिभूत नहीं होते, इस ही प्रकार देहासक्त पुरुष देहकृत कर्म्मसे लिप्त नहीं होते। पूर्व्वकृत कर्मोंको परित्याग करके सत्यस्वरूप आत्मामें जिसका अनुराग होता है वह सब भूतोंका आत्मभूत सब विषयोंमें असंसक्त पुरुषकी बुद्धि सतोगुणमें विचरती है कभी विषयोंमें प्रवेश नहीं करती। इन्द्रियें आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं हैं, परन्तु आत्मा सदा ही उन्हें जानता है, वह इन्द्रियोंका परिदर्शक और यथायोग्य रीतिसे उनकी सृष्टि किया करता है। सूक्ष्म सत् रूप परब्रह्म और चेत्रात्माका यह प्रभेद मालूम करो कि इनमेंसे एकने सब विषयोंका सृजा है, दूसरेने कुछ भी नहीं किया है। वे दोनों प्रकृतिके वशमें होके पृथक् रहने पर भी सर्व्वदा सम्प्रयुक्त हैं, जैसे मछली जलसे स्वतन्त्र होनेपर भी दोनों ही सदा सम्प्रयुक्त हैं, जैसे मशक और उडुम्बर पृथक् होने पर भी एकत्रित हैं, जैसे सींक मूंजमें पृथक् रहके भी संयुक्त रहती है, वैसे ही जीव और ब्रह्म एक होनेपर भी परस्परमें प्रतिष्ठित हैं।

२४७ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, सत्स्वरूप आत्मा विषयोंको उत्पन्न करता है, जीव उसमें अधिष्ठित हुआ करता है। ईश्वर उदासीनकी भांति विकृत प्राप्त हुए विषयोंका अधिष्ठाता है। जैसे उर्णनाभी अभिन्न निमित्त उपादान स्वरूपसे सूत निर्म्माण करती है, वैसे ही ईश्वर जिन गुणोंको उत्पन्न करता है, वे उसहीके स्वभावयुक्त होते हैं। सत्वादि सब गुण तत्वज्ञानके जरिये अदर्शनयुक्त होनेपर भी निवृत्त अर्थात् घट आदि बाह्य पदार्थोंकी भांति नष्ट नहीं होते; परन्तु रज्जु सर्पकी भांति बांधको ही प्रध्वंस पदवाच्य कहना होगा। घट आदि नष्ट होनेपर भी जैसे कपालदर्शनके जरिये इस स्थानमें घट नष्ट हुआ है, इस ही भांति घटसत्ताकी उपलब्धि होती है, सत्वादि गुणोंके प्रध्वंस होनेपर उस प्रकार उनकी प्रवृत्तिकी प्राप्ति नहीं होती; इसलिये सत्वादि गुणोंके नाशको निरवयव नाश कहा जाता है। तार्किक लोग कहा करते हैं, कि आत्यन्तिकी दुःखकी निवृत्ति होनेसे ही आत्मगुणकी निवृत्ति होती है। सांख्यमतवाले दार्शनिक पण्डित लोग भी दृग्दृश्य संयोगसे अनादि भावका भी नाश स्वीकार करते हैं। इस ही प्रकार निवृत्ति और बाध इन दोनों पक्षोंको बुद्धिसे आलोचना करके यथामतिके अनुसार निश्चय करे; पुरुष इस प्रकारके विधानके जरिये महान् आत्माश्रय हुआ करता है। आत्माका आदि और अन्त नहीं है, इसे जानकर मनुष्य क्रोध हर्षसे रहित और मत्सरहीन होकर सदा विचरण करे। इस ही प्रकार बुद्धिके धर्म्मचिन्ता आदि दृढ़ हृदयग्रन्थिको जिन्होंने अतिक्रम किया है, वह शोकरहित और संशयहीन होकर सुखसे समय व्यतीत किया करते हैं। पृथ्वीपरसे भरी हुई नदीमें गिरे हुए मनुष्य डूबते हैं, इस लोकमें तरनेकी विद्यासे रहित मूर्खोंकी गति भी उस ही प्रकार जाननी चाहिये, तरनेकी विद्यासे युक्त तत्ववित् पुरुष उन्मज्जन निमज्जनके सहारे क्लेशित न होकर स्थलमें विचरते हैं, इसी प्रकार जिन्होंने अपने आत्माको शुद्ध चिन्मात्र

अर्थात् केवल ज्ञान स्वरूप जाना है, वे ही आत्माका स्वरूप और लक्षण जानते हैं। इस ही प्रकार मनुष्य सब भूतोंकी उत्पत्ति और लयके विषयको जानके और आकाश आदि भूतोंको विषमता अवलोकन करके अत्यन्त उत्तम सुख लाभ किया करते हैं। मनुष्य जन्म ग्रहण करने विशेष करके ब्राह्मण होनेसे यह सामर्थ प्राप्त होती है, कि आत्मज्ञान और शान्ति अवलम्बनके जरिये मुक्ति लाभ हुआ करती है। मनुष्य इसे ही जानके पापरहित होता है, निष्पाप होनेका दूसरा लक्षण और क्या है? कृतकृत्य मनीषी पुरुष इसे ही जानकर मुक्त होते हैं। अज्ञानियोंके परलोकमें अधःपतनसे जो अत्यन्त महत् भय उपस्थित होता है, ज्ञानियोंको उस भयकी सम्भावना नहीं है। ज्ञानियोंकी जो उत्तम महती गति हुआ करती है, उससे बढ़के उत्तम गति और किसीकी भी नहीं होती। कोई मनुष्य उपभोग्य स्त्री आदिको दोषसे आक्रान्त समझके उन्हें दोषदृष्टिसे देखते हैं, कोई दूसरेका वैसे दोषाक्रान्त विषयमें अनुराग देखकर शोक किया करते हैं, परन्तु ज्ञानी और अज्ञानीके बीच महत् विलक्षणता है; इसे जानके जो लोग आरोपित वा अनारोपित शोक तथा शोकभावको विषय जानते हैं, उन्हें ही जानना चाहिये, कि वे निश्चय ही कुलीन हैं। जो लोग अनभिसन्धिपूर्व्वक अर्थात् निष्काम होकर कर्म्म करते हैं, उनका वही निष्काम कर्म्म पहिलेके किये हुए पापोंको खण्डन करता है, निष्काम कर्म्म करनेवाले मनुष्योंके इस जन्म और पूर्व्व जन्मके किये हुए सब कर्म्म प्रिय वा अप्रियजनक नहीं होते; इसलिये तत्वविद्या अवश्य सिद्ध करनी उचित है।

२४८ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, हे भगवन्! इस लोकमें जिस धर्म्मसे बढ़के श्रेष्ठ धर्म्म और कुछ भी न हो और जो सब धर्म्मोंसे उत्तम है, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

व्यासदेव बोले, ऋषियोंने जिस पुराण धर्म्मको स्थापित किया है और जो सब धर्म्मोंसे उत्तम है, वह तुम्हारे समीप विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, तुम चित्त एकाग्र करके सुनो। जैसे पिता आत्मज सन्तानोंको यत्नपूर्व्वक संयत करता है, वैसे ही सब भांतिसे निष्पतनशील और प्रमथनकारी इन्द्रियोंको बुद्धिके जरिये संयत करके मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता साधन ही परम तपस्या है, वेही सब धर्म्मोंसे उत्तम और वही परम धर्म्मरूपसे महर्षियोंके जरिये वर्णित हुआ करता है। मनके सहित इन्द्रियोंको मेधाके सहारे सन्धान करके त्रिपुटी चिन्तनमें अनासक्त होकर आत्मतृप्तकी भांति निवास करे। जब इन्द्रियें बाह्य और आभ्यन्तरिक विषयोंसे निवृत्त होके सर्व्वाधिष्ठान परब्रह्ममें निवास करेंगी, तब तुम स्वयं ही शाश्वत परमात्माको देख सकोगे। जो सब महाभाग मनीषी पुरुष ब्रह्मवित् होते हैं, वे उस धूमरहित अग्निकी भांति उपाधिरहित सर्व्वमय महान् आत्माको देखते हैं। जैसे फल फूलसे युक्त अनेक शाखावाले बड़े वृक्ष अपने फल फूलोंको यह नहीं जानते कि कहां हैं, वैसे ही अचेतन बुद्धिवाले "मैं कहां जाऊंगा, कहांसे आया हूं," इसे कुछ भी नहीं जान सकते; तब इस देहके बीच बुद्धि-व्यतिरिक्त अन्तरात्मारूपसे जो विराजता है, वही बुद्धि आदि सबका ही अभिन्न है और सबको ही देखता रहता है। आत्मवित् पुरुष प्रकाशमान ज्ञानदीप स्वरूप आत्माके जरिये ही आत्माको देखते हैं, इसलिये तुम आप ही अपना दर्शन करके उपाधिरहित और सर्व्ववित् होजाओ। तुम्हें केंचुलीसे मुक्त सर्पकी भांति छूटकर और इस लोकमें परम ज्ञान

प्राप्तकर सुखी होके अनेक प्रकारसे बहनेवाली लोकप्रवाहिनी, पञ्चेन्द्रिय ग्राहसे युक्त, मनके सङ्कल्प तटवाली, लोभ मोहरूपी तृणसे परिपूरित काम क्रोधरूपी सर्पसे युक्त, सत्य तीर्थवाली, मिथ्यासे अक्षोभ, क्रोधपङ्कसे संयुक्त, अव्यक्त प्रभव, शीघ्रगामिनी और अकृतात्म लोगोंसे दुस्तर और काम ग्राहसे परिपूरित नदीके जरिये संसारनदीको ज्ञानके सहारे तरना चाहिये। हे तात! कृतप्रज्ञ धृतिमान् मनीषी पुरुष संसारसागर गामिनी, बासना पाताल दुस्तरा, आत्म जन्मोद्भव जिह्वावार्त्ता जिस दुरासद नदीके पार जाते हैं, तुम उस ही नदीको तरके सर्व्वसङ्गरहित, विधूत स्वभाव, आत्मवित्, पवित्र और समस्त संसारसे पार होके प्रसन्नात्मा तथा पापरहित होकर परम श्रेष्ठ ज्ञान अवलम्बन करके ब्रह्मलाभ करोगे। तुम ज्ञानरूपी पर्व्वतपर चढ़के भूमिष्ट मूर्खोंको देखो। तुम क्रोधरहित, हर्षहीन और अनृशंस बुद्धि होनेसे सब भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलय देख सकोगे। धार्म्मिकप्रवर तत्वदर्शी विद्वान् महर्षियोंने योगके जरिये अज्ञान रूपी नदीकी सन्तरणस्वरूप इस धर्म्मको सब धर्म्मोंसे श्रेष्ठ समझा है।

हे तात! सर्व्वव्यापी आत्माका ज्ञानस्वरूप यह अनुशासन सदा हितकारी वा अनुगत पुत्र शिष्योंसे कहना चाहिये। हे तात! यह आत्मसाक्षिक आत्मज्ञानका विषय इतना ही जो तुमसे कहा है, यह सबसे महत् और गुप्त है। यह परब्रह्म न स्त्री है, न पुरुष है, और न नपुंसक ही है; यह अदुःख, असुख तथा भूत-भव्य वर्त्तमान स्वरूप है; स्त्री वा पुरुष उसे जाननेसे फिर जन्म नहीं लेते, पुनर्जन्मकी प्राप्ति न होनेके ही निमित्त यह धर्म्म विहित हुआ है। हे तात! मैंने जो किसी स्थलमें जैसे सब दर्शनोंके मतोंको कहा है, वैसे ही इस आत्मज्ञानके विषयको भी वर्णन किया है, परन्तु अधिकारी भेदसे वे सब बचन किसी स्थानमें फलित और किसी स्थलमें विफल होते हैं। हे सत्पुत्र! इसलिये प्रीति, गुण और दमसे युक्त पुत्रके पूछनेपर पिता प्रसन्न होकर इस विषयको यथार्थ रीतिसे पुत्रके निकट इस प्रकार बर्णन करे, जैसे मैंने तुमसे कहा है।

२४८ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, गन्ध रस और सुखका अनुसरण तथा गन्ध आदि समलंकृत आभूषणोंका अननुरोध और उक्त भोग्य बस्तुओंमें विशेष प्रकाश न करके उदासीन भावसे निवास, मान, कीर्त्ति, तथा यश लाभमें अभिलाष रहित होना और उन सबमें उदासीनता अवलम्बन करना ही विद्वान् ब्राह्मणोंके व्यवहार हैं। गुरु सेवामें रत, ब्रह्मचर्य्य ब्रत करनेवाला पुरुष यदि सब वेदोंको पढ़े, तथा ऋग, यजु और साम वेदको मालूम करे; तौभी उसे मुख्य ब्राह्मण नहीं कहा जाता, जो सर्व्वज्ञ और सब वेदोंके जाननेवाले होकर सब प्राणियोंके विषयमें स्वजनवत् व्यवहार करते हैं, और जो लोग आत्मज्ञानसे तृप्त होते हैं, कभी जिसकी मृत्यु नहीं होती, उनके वैसे कर्म्मके सहारे भी मुख्य ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति नहीं होती। जिन्होंने बिबिध इष्टि और अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञ किये हैं, उनमें दया और निष्कामता न रहनेसे कदापि ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति नहीं होसकती; जब पुरुषको किसी प्राणीसे भय नहीं होता और उससे भी कोई नहीं डरते, जब वह किसी विषयकी कामना और किसी विषयमें विद्वेष नहीं करता, तब वह ब्रह्मत्व लाभ करनेमें समर्थ होता है। जब पुरुष मन, बचन और धर्म्मके जरिये किसी जीवके विषयमें अनिष्ट आचरण नहीं करता, तभी ब्रह्मत्व लाभ करनेमें समर्थ होता है। इस लोकमें एकपात्र काम

बन्धन ही विशिष्ट है। उससे बढ़के दूसरा कोई बन्धन दृढ़ नहीं है, जो लोग उस काम-बन्धनसे छूटे हैं, वेही ब्रह्मत्व लाभमें समर्थ होते हैं।

जैसे धूमाकार बादलोंसे चन्द्रमा मुक्त होता है, वैसे ही रजोगुणसे रहित धीर पुरुष काम बन्धनसे छूटकर समयकी प्रतीक्षा करते हुए धीरज अवलम्बन करके निवास करते हैं। अचलके समान स्थिर भाव, भली भांतिसे पूरित समुद्रमें दूसरे सब जल जिस प्रकारसे प्रविष्ट होते हैं, वैसे ही सब काम जिस पुरुषमें प्रविष्ट हुआ करते हैं, वेही शान्तिलाभ करते हैं; वैसे पुरुष कभी विषयके अभिलाषी नहीं होते। वे विद्वान् पुरुष सङ्कल्पमात्रके सहारे समुपस्थित सुखोंमें मनोहर होते हैं, वेही इच्छा करनेसे स्वर्ग लाभ करनेमें समर्थ हुआ करते हैं; नहीं तो स्वर्गकी इच्छा करनेवाले मनुष्य इच्छामात्रसे ही स्वर्ग लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। वेदका रहस्य सत्य है, सत्यका रहस्य दम है, दमका रहस्य त्याग है, त्यागका रहस्य सुख है, सुखका रहस्य स्वर्ग है, और स्वर्गका रहस्य शान्ति है। सन्तोंके कारण यदि चित्तप्रसाद लाभका अभिलाषा हो, तो वासनाके सहित भी शोक मोहको सन्तापित करके छेदन करो, यही शान्तिका उत्तम लक्षण है। शोकरहित ममताहीन, शान्त, प्रसन्नचित्त, मत्सररहित और सन्तोषयुक्त होकर जो लोग समस्त ज्ञानसे तृप्त हुए हैं, वे इन छहों लक्षणोंसे सबके ही कामनीय हुआ करते हैं। बुद्धिमान् पुरुष सत्य, दम, दान, तपस्या, त्याग और शम नामक छहों सत्वगुणसे युक्त श्रवण, मनन निदिध्यासनके जरिये जिस आत्माको जान सकते हैं जीवित देहमें उस ही आत्माको जिन्होंने बुद्धि स्वरूपसे जाना है, वेही पूर्वोक्त मुक्त लक्षणको प्राप्त हुए हैं। जो बुद्धिमान् पुरुष अकृत्रिम अर्थात् अजन्य हैं, इसहीसे असंहार्य्य, स्वभावसिद्ध और गुणाधान मलापकर्षणात्मक संस्कार-रहित शरीरमें अधिष्ठित सुकृत आत्माको जाना है, वही अव्यय सुख उपभोग करते हैं। मनको विषयोंसे रोकके आत्मविचारमें प्रतिष्ठित करते हुए योगी पुरुष आत्मासे जो तुष्टिलाभ करते हैं, दूसरे किसी प्रकारसे भी वैसी तुष्टिलाभ नहीं होती। अभुक्तान मनुष्य जिसके जरिये तृप्त होते हैं, वृत्तिहीन पुरुष जिससे तृप्तिलाभ करते हैं, स्नेहरहित पुरुष जिसके सहारे बलवान् होते हैं,—जो लोग उस ब्रह्मको जानते हैं, वेही वेदवित् है। जो शिष्ट ब्राह्मण प्रमादसे इन्द्रियोंकी पूर्ण रीतिसे रक्षा करते हुए ध्यान अवलम्बन करके निवास करते हैं, उन्हें ही आतमरति कहते हैं। जो परम तत्वमें तत्पर और वासनारहित होकर स्थित रहते हैं, चन्द्रमाकी भांति उनका सुख बढ़ता रहता है। जैसे सूर्य्यके जरिये अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही जो मननशील योगी पञ्चतन्मात्रा, महत्तत्व और प्रकृतिको परित्याग करते हैं, वे सहजमें ही संसारके दुःखोंसे छूट जाते हैं। वे अतिक्रान्त कर्म्म करनेवाले अतिक्रान्त गुण, ऐश्वर्य्य और विषयोंसे असंश्लिष्ट ब्राह्मणको जरा तथा मृत्यु स्पर्श नहीं कर सकती। वे जब सब तरहसे विरक्त और राग द्वेषसे रहित होके निवास करते हैं, उस समय जीवित शरीरसे ही इन्द्रिय और इन्द्रियोंके विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिन्होंने प्रकृतिको परित्याग करके परम कारण परब्रह्मको जाना है, उन परम पद पानेवाले पुरुषोंको फिर संसारमें लौटकर नहीं आना पड़ता।

२५० अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, सुख, दुःख, मान अपमान सहनेवाला मनुष्य अर्थ और धर्म्मका अनुष्ठान करके शेषमें यदि मोक्ष जिज्ञासु हो, तो गुणवान्

वक्ता उस शिष्यको पहले यही महत् अध्यात्म विषय सुनावे। आकाश, वायु अग्नि, जल और पृथ्वी, ये पञ्चभूत और द्रव्य गुण, कर्म्म सामान्य, समवाय और विशेष, ये कई एक भाव पदार्थ, इनके अतिरिक्त अभाव पदार्थ तथा काल पञ्चभूतात्मक जरायुज आदि जीव मात्रमें ही वर्त्तमान् है। तिसके बीच आकाश अवकाश भाग है, श्रवणेन्द्रिय आकाशमय है; शारीरिक शास्त्र विधानवित् पुरुष आकाशको-शब्द गुण कहा करते हैं। गमन आदि कार्य्य वायुसे उत्पन्न होते हैं, प्राण और अपान आदि वायुमय है, स्पर्शइन्द्रिय और स्पर्श को भी वायुमय जानो। ताप, पाक प्रकाश, उष्णता और नेत्र, ये पांचो अग्निस्वरूप हैं, उसका गुण रूप, लाल, श्वेत और असितात्मक है। क्लेश, संकोच और स्नेह ये तीनों जलके धर्म्म हैं; अस्वक, मज्जा आदि जो कुछ स्निग्ध पदार्थ हैं, वे सब जलमय हैं, रसनेन्द्रिय, जिह्वा वा रस जलके गुण कहे गये हैं। धातु, संघात, पार्थिव पदार्थ, हड्डी, दांत, नख, रोम, श्मश्रु, केश, शिरा और चर्म्म, ये सब पृथ्वीमय हैं। घ्राणेन्द्रियका नाम नासिका है, गन्ध ही इस इन्द्रियका विषय है। पूर्व्व पूर्व्वभूतोंके गुण उत्तरोत्तर भूतोंमें वर्त्तमान हैं; इसलिये आकाशमें केवल शब्दगुण है, वायुमें शब्द और स्पर्श है, अग्निमें शब्द, स्पर्श और रूप है; जलमें शब्द, स्पर्श रूप तथा रस है और पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध, ये पांचो ही विद्यमान है; ये पांचो गुण प्राणिमात्रमें ही विद्यमान रहते हैं। मुनि लोग इस पञ्चभूत सन्तति और अविद्या, काम तथा धर्म्मको अष्टम गिना करते हैं, मनको इन सबके बीच नवां कहा करते हैं, बुद्धिको दशवीं कहते हैं, अनन्तर आत्मा ग्यारहवां है, वह सबसे श्रेष्ठ कहके वर्णित होता है। बुद्धि निश्चय करनेवाली है और मन संशयात्मक है, वह अनन्त आत्मा कर्म्मानुमान निबन्धन अर्थात् सुख, दुःख लक्षणयुक्त कर्म्मोंके आश्रयत्वके कारण क्षेत्रसंज्ञक जीवस्वरूपसे अनुमित होता है, सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग; इन कालात्मक जीवोंसे युक्त समस्त प्राणिपुञ्जको जो लोग स्वरूपसे पापरहित देखते हैं। वह मोहका अनुसरण नहीं करते।

२५१ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, शास्त्रवेत्ता लोग स्थूल शरीरसे मुक्त, सूक्ष्म भूत और दुर्लक्ष्य, सूक्ष्म शरीरी आत्माको शास्त्रोक्त कर्म्म योगानुष्ठान आदिके जरिये दर्शन करते हैं अर्थात् योगी लोग समाधिके समय लिङ्गात्माका दर्शन किया करते हैं, जैसे सूर्य्यकी किरण आकाशमण्डलमें निबिड़ भावसे निवास करनेपर भी जैसे स्थूलदृष्टिके सहारे नहीं दीख पड़ती, परन्तु गुरूपदेशसे उन्हें सर्व्वत्र बिचरते हुए देखा जाता है, वैसेही स्थूल देहसे युक्त लिङ्ग शरीर स्थूल दृष्टिसे नहीं दीखता। देहसे छूटनेपर वह अतिमानुष लिङ्ग देह सब लोकोंमें विचरती है; इसे योगी लोग देखा करते हैं। जैसे सूर्य्यके किरणमण्डलका प्रतिबिम्ब जलमें भी दीखता है, वैसेही योगी पुरुष सत्ववन्त पुरुष मात्रमें ही प्रतिरूपसे लिङ्ग शरीरको अवलोकन किया करते हैं। संयतेन्द्रिय सत्वज्ञ योगी लोग शरीरसे विमुक्त होके उन समस्त सूक्ष्म शरीरोंको निज लिङ्ग देह स्वरूपसे देखते हैं। जिन योगयुक्त पुरुषोंने आत्मामें कल्पित कामादि व्यसनोंको परित्याग किया है और जिन्होंने जगत्कारक प्रकृतिका अद्वैध अर्थात् प्रकृतिके तदात्म योग ऐश्वर्य्यसे भी विमुक्त हुए हैं, उन्हें क्या स्वप्नके समयमें क्या जाग्रत अवस्थामें, जैसे दिन वैसे ही रात्रिके समयमें, जैसे रात्रि वैसेही दिनके समयमें अर्थात् सब अवस्था तथा सब समयमेंही लिङ्गदेह वशीभूत रहती है। उन सब योगियोंका जीव

महदहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा, इन सातों गुणोंसे सदा संयुक्त रहके इन्द्रादि लोकोंमें सदा विचरते हुए तीनों कालमें भी मिथ्यात्व निवन्धनसे धावित होनेसे भी अजर और अमर हुआ करता है। स्वदेह और परदेह विद्व योगी यदि मन तथा बुद्धिके जरिये पराभूत हो, तो वह थोड़े समयमें भी सुख दुःखका अनुभव किया करता है। वह जब सपनेमें भी कभी सुख लाभ करता, कभी दुःख भोग किया करता है, तब वह क्रोध और लोभके वशमें होकर विपदग्रस्त होता है, वह स्वप्न समयमें बहुत सा धन प्राप्त करके प्रसन्न होता, पुण्यकर्म्मोंका अनुष्ठान करता और जैसे जाग्रत अवस्थामें सब विषयोंका दर्शन किया जाता है, वैसेही उस समयमें भी उसहोके अनुरूप सब वस्तुओंको देखा करता है। स्वप्नकालकी भांति जीव गर्भमें जठर उष्माके बीच शयन किया करता है। कोखके बीच दश महीनेतक वास करके भी जीव अन्नकी तरह जीर्ण नहीं होता। वह अत्यन्त तेजस्वी परमेश्वरके अंशभूत हृदयमें स्थित जीवात्माको तमोगुण और रजोगुण युक्त पुरुष देहके बीच देखनेमें समर्थ नहीं हैं। जो लोग योग शास्त्रपरायण होके उस आत्माको प्राप्त करनेकी अभिलाष करते हैं, वे अचेतन स्थूल शरीर, अमूर्त्य सूक्ष्म शरीर और वज्रकी भांति अर्थात् ब्रह्माके प्रलयमें भी अविनाशी कारण शरीरोंको अतिक्रम करनेमें समर्थ होते हैं। विभिन्न रूपसे विहित सन्न्यास धर्म्मके बीच समाधिके समयमें मैंने जो यह योगका विषय कहा, शाण्डिल्य मुनिने इसे सन्न्यासियोंके शान्तिका हेतु कहा है। इन्द्रिय इन्द्रियोंके विषय, मन, बुद्धि, महत्तत्व, प्रकृति और पुरुष, ये सातों सूक्ष्म विषय तथा सर्व्वज्ञता, तृप्ति अनादिका बोध, स्वतन्त्रता, सदा अलुप्त दृष्टि और अनन्त शक्ति, इस षड़ङ्गयुक्त महेश्वरको जानके, यह जगत् त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका विपरिणाम है,—इसे जो लोग जानते हैं, वे गुरु और वेदान्त वचनके अनुसार परब्रह्मका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं।

२५२ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, हृदयक्षेत्रमें मोहमूलक एक विचित्र कामतरु विराजमान हुआ करता है; क्रोध और मान उसके महास्कन्ध, विधित्सा उसके आलवाल, अज्ञान उसका आधार है; प्रमाद उसे सिंचन करनेवाला जल असूया उसका पत्र और वह पूर्व्वकृत दुष्कृतोंके जरिये सारवान हुआ करता है। सम्मोह और चिन्ता उसके पल्लव, शोक उसकी शाखा और भय उसका अङ्कुर होता है; वह तृष्णमोहनी पिपासारूपी लताजालके जरिये परिपूरित हुआ करता है। अत्यन्त लोभी मनुष्य लोग आयस अर्थात् लोहमयके समान दृढ़पाशके जरिये संयत होकर उन्हीं सब वृक्षोंके फललाभको अभिलाष करके उसे घेरकर उसकी सेवा किया करते हैं। जो लोग उन सब वासोंको वशमें करके उक्त वृक्षको छेदन करते हैं, वेही वैषयिक सुख दुःख त्यागनेकी वासना करनेपर सहजमेंही सुख दुःखसे पार होनेमें समर्थ होते हैं। अकृतबुद्धि मूर्ख लोग जो स्रक्चन्दन वनिता आदिके जरिये सदा उस कामतरुको सम्वर्द्धित करते हैं, विषग्रन्थिके आतुरघातकी भांति वही स्रकचन्दन वनिता आदिही उस वर्द्धकका विनाश किया करती हैं। कृती पुरुष योग प्रसादसे बलपूर्व्वक निर्व्विकल्पक समाधि स्वरूप उत्तम खड्गके जरिये उस मूलानुगत महावृक्षका मूल उद्धार किया करते हैं। इस ही प्रकार जो लोग केवल कामका निवर्त्तन करना जानते हैं, वे कामशास्त्रके बन्धनको छुड़ाके सब दुःखोंको अतिक्रम करते हैं। महर्षि लोग भोगायतन इस शरीरको पुर कहा करते हैं; भोगजनित सुख दुःख आदिके अभिमानित्व निवन्धन बुद्धिको इसकी स्वामिनी

कहते हैं। शरीरस्थ मन निश्चयात्मिका बुद्धिके अमात्य स्थानीय है ; क्यों कि विचार परायण मन बुद्धिको भोगके लिये इन्द्रिय विषयस्वरूप समस्त धनको अर्पण करता है, इन्द्रियें पुरवासी स्वरूप हैं, इन्द्रिय स्वरूप पौरजनोंको पालनेके लिये मनकी महती क्रियाप्रवृत्ति अर्थात् यज्ञ दानं आदि रूपसे दृष्टादृष्ट फलोंको साधन करनेवाली कर्म्म-प्रवृत्ति हुआ करती है। राजस और तामस नाम दोनों दारुण दोष कर्म्मफलोंको अन्यथा करते हुए चित्त-आमात्यको कलुषता सिद्ध करते हैं. पुरेश्वर मन, बुद्धि और अहङ्कारके सहित इन्द्रियस्वरूप पौरगण तथा दोषयुक्त चित्त अमात्यके जरिये निर्म्मित कर्म्मफल सुखदुःख आदिको उपजीव्य किया करता है। ऐसा होनेसे राजस और तामस दोनों दोष अविहित मार्ग अर्थात् परदारा आदि भोगके जरिये सुखादिरूपी अर्थको उपजीव्य समझा करता है, शुद्ध सत्वमयत्व निबन्धन बुद्धि रजोगुण और सतोगुणके वशमें न होनेपर भी मनको प्रधानताके कारण दोषकलुषित मनके सहित उसकी समता होजाती है। इन्द्रियरूपी पौरगण मनसे डरके चञ्चल होजाते हैं अर्थात् मन दुष्ट होनेपर इन्द्रियें भी दोष स्पष्ट होकर किसी स्थानमें भी स्थैर्य्य अवलम्बन नहीं करतीं। दुष्टबुद्धि पुरुष जिस विषयको हितकर कहके निश्चय करता है, वह भी दुःखदायी अनर्थ होकर परिणाममें विनष्ट होता है। नष्ट अर्थ भी दुःखदायक हैं ; क्यों कि बुद्धिके सहित मन अर्थहानि स्मरण करके भी अवसन्न होजाता है। जब सङ्कल्परूपसे मन बुद्धिसे पृथक् होता है, तब उसे केवल मन कहा जाता है, यथार्थमें वही बुद्धि है ; इसलिये उसके तापसे बुद्धि भी सन्तापित हुआ करती है। बुद्धिमें गया हुआ दुःखका फल देनेवाला रजोगुण उस बुद्धिके बीच विम्बित अर्थात् प्रतिबिम्ब रूपसे स्थापित इस आत्माको आवरण करता है अर्थात् परिच्छेद परिताप आदि बुद्धिके धर्म्म तदुपहित आत्मामें प्रकाशित होते हैं, इससे मन रजोगुणके सङ्ग मिलकर सख्यता करता है अर्थात् प्रवृत्ति विषयमें उन्मुख होता है। सङ्गत मन उसही आत्मा और पौरजन इन्द्रियोंको वशमें करके रजोगुणके फल दुःखके निकट अर्पण करता है, अर्थात् जैसे कोई दुष्ट मन्त्री राजा और नगरवासी प्रजाको अपने अधीनमें करके शत्रुके निकट समर्पण करता है, वैसेही राजसिक मनके जरिये आत्मा बुद्धि और इन्द्रियां बद्ध होती हैं।

२५३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे तात युधिष्ठिर! आकाश आदि भूतोंका निर्द्धारण गर्भ जो शास्त्र द्वैपायन मुनिके मुखसे वर्णित हुआ है, हे पापरहित! तुम अपनेको परम श्लाघायुक्त समझके उसे फिर मेरे समीप सुनो, प्रकाशमान अग्निके समान अर्थात् अज्ञानसे रहित भगवान द्वैपायनने जिसका वर्णन किया है,—हे तात! मैं उसही अज्ञानको नष्ट करनेवाले शास्त्रको फिर कहता हूं। स्थैर्य्य, गरुआई, कठोरता, प्रसवार्थता अर्थात् धान्य आदिके उत्पत्तिको निमित्तता, गन्ध, गुरुत्व, गन्ध ग्रहण करनेकी सामर्थ्य। शिष्ठावयवत्व, स्थापन अर्थात् मनुष्य आदिके आश्रयत्व और पञ्चभौतिकमनमें जो धृतिके अंश हैं, वे सब भूमिके गुण हैं। शीतता, ह्लाद, द्रवत्व, स्नेह, सौम्यता, रसनेन्द्रिय, प्रस्रवण और भूमिसे उत्पन्न हुए चावल प्रभृतिके पचानेकी शक्ति, ये जलके गुण हैं। दुर्द्धर्षता ; ज्योति, ताप, पाक, प्रकाश, शोक, राग लघुता, तीक्ष्णता और सदा ऊर्द्ध ज्वलन, ये कई एक अग्निके गुण हैं। अनुष्ण, शीत, स्पर्श वागिन्द्रिय-गोलक, गमन आदि विषयोंमें स्वतन्त्रता, बल, शीघ्रता, मूत्र आदिका त्याग उत्क्षेपण आदि कर्म्म, श्वास प्रश्वास आदिकी चेष्टा,

प्राणरूपसे चिदुपाधिता और जन्म, मरण, ये कई एक वायुके गुण हैं। शब्द, व्यापकता, छिद्रता, आश्रयत्वाभाव, आश्रयान्तर, शून्यता, रूपस्पर्श शून्यता निबन्धन अव्यक्तता अविकारिता, अप्रतिघातिता, श्रवणेन्द्रियकी उपादानता और देहान्तर्गत छिद्र स्वरूपता, ये कई एक आकाशके गुण हैं। पञ्चभूतोंके यही पचास गुण प्राचीन महर्षियोंके जरिये वर्णित हुए हैं। धीरज, उपपत्ति अर्थात् उपापोह, कौशल, स्मरण, भ्रान्ति, कल्पना अर्थात् मनोरथ वृत्ति, क्षमा, वैराग्य, राग, द्वेष और अस्थिरत्व, ये नव मनके गुण हैं। इष्ट और अनिष्ट वृत्ति विशेषका विनाश, उत्साह, चित्तकी स्थिरता, संशय और प्रतिपत्ति अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणवृत्ति, इन पांचोंको पण्डित लोग बुद्धिका गुण समझते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! बुद्धि किस कारणसे पञ्चगुणान्वित हुई और इन्द्रियां ही किस लिये गुणरूपसे वर्णित हुई; आप इस सूक्ष्म ज्ञानका सब विषय मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! साधारण रीतिसे बुद्धिके पांच गुण वर्णित होनेपर भी वेद वचनके अनुसार उसे षष्टि-गुणयुक्त कहा जाता है, क्यों कि पञ्च भूतोंके पहले कहे हुए पचास गुण और स्वयं पञ्चभूत भी बुद्धिके गुणस्वरूप कहे गये हैं, बुद्धि अपने पञ्चगुणोंके सहित पूर्व्वोक्त पचपनगुणों मिलकर साठगुणोंसे संयुक्त होती है। वे सब गुण नित्य चैतन्यके सङ्ग मिलनेसे सबवृत्तियोंके जड़ होनेपर भी चैतन्यसम्बन्धसे उनके ज्ञानरूपत्व व्यवहार हुआ करते हैं सब भूतोंकी समस्त विभूति अक्षर परब्रह्मके जरिये उत्पन्न हुई हैं; परन्तु वह उत्पत्ति नित्य नहीं है,—यह वेदमें वर्णित है। हे तात! जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयके विषयमें दूसरे वादियोंने जो वेदविरुद्ध युक्ति कही हैं वे विचारसे दूषित हैं; इससे तुम इस लोकमें मेरे कहे हुए नित्य सिद्ध परब्रह्मके तत्वको जानकर और ब्राह्मऐश्वर्य्य प्राप्त करके शान्त बुद्धि होजाओ।

२५४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, ये जो सब महाबलवान् राजा सेनाके बीच चेतरहित होकर पृथ्वीपर शयन कर रहे हैं, इनके बीच एक एक पुरुष अत्यन्त बलवान थे। कोई कोई दश हजार हाथीके समान बलशाली थे; ये सब युद्धभूमिमें समबल तथा तुल्य तेजवाले वीरोंके जरिये मारे गये हैं युद्धभूमिमें इनसब महाप्राणियोंको संहार करे, ऐसा मैं किसीको भी नहीं देखता हूं। ये सब बहुत विक्रमसे युक्त और वीर्य्य तथा बलसे भरे थे; तौभी ये महाबुद्धिमान् पुरुष प्राण रहित होके पृथ्वीपर सो गये हैं, और इन सब प्राणहीन मनुष्योंके विषयमें मृत शब्द व्यवहृत होरहा है। ये सब भयङ्कर विक्रमी राजा लोग प्रायः बहुतेरे ही मर गये हैं; इसलिये इस विषयमें मुझे यह संशय उत्पन्न हुआ है, कि 'मृत' यह नाम कहांसे उत्पन्न हुआ है; हे देव तुल्य पितामह! स्थूल शरीर वा सूक्ष्म शरीर अथवा आत्मा, इन कई एकके बीच किसकी मृत्यु होती है। किस पुरुषसे उत्पन्न होकर मृत्यु किस लिये सब प्रजासमूहको हरण करती है। आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! पहिले समय सतयुगमें अनुकम्पक नाम एक राजा था, वह युद्धमें वाहनरहित होकर शत्रुओंके वशमें होगया। बल विक्रममें नारायणके समान उसके हरि-नाम एक पुत्र था, वह युद्धमें शत्रुओंके जरिये सेनाके सहित मारा गया। शत्रुओंके वशीभूत और पुत्र शोकसे युक्त राजा अनुकम्पकने दैव संयोगसे शान्तिपरायण होकर एक बार पृथ्वी-

मण्डलपर महर्षि नारदका दर्शन किया। उस राजाने पुत्रका मरना और शत्रुओंके जरिये जिस प्रकार बन्धन प्राप्त हुआ था, वह सब उनके निकट निवेदन किया। अनन्तर तपोधन नारदमुनि उनका वह सब वचन सुनके उस समय पुत्र शोकको दूर करनेवाला यह लम्बायमान अख्यान कहने लगे।

नारदमुनि बोले, हे पृथ्वीनाथ महाराज! यह बहुत बड़ा उपाख्यान जिस प्रकार कहा गया था, और मैंने जैसे सुना है, उसे इस समय तुम सुनो। महातेजस्वी पितामहने प्रजा उत्पन्न करनेके समय बहुतसी प्रजाकी सृष्टि की; उस समय वे सब प्रजा अत्यन्त बुद्धिमान हुईं परन्तु कोई पुरुष मृत्युके वशीभूत न हुए। उस समय कोई स्थान भी प्राणियोंसे सूना नहीं था, मानो तीनों लोक प्रजासमूहसे भर गया था; इसलिये प्रजापतिके अन्तःकरणमें संहारकी चिन्ता उत्पन्न हुई उन्होंने चिन्ता करते ही संहार विषयमें हेतुयुक्त कारण पाया। हे महाराज! क्रोध वशसे उनकी इन्द्रिय छिद्रोंसे अग्नि उत्पन्न हुई। हे राजन्! पितामह उस ही अग्निके जरिये सब दिशाओंको जलानेमें प्रवृत्त हुए। हे महाराज! अनन्तर ब्रह्माके कोपसे उत्पन्न हुई अग्नि द्युलोक, भूलोक और आकाशमण्डलमें स्थित ग्रह, नक्षत्र तथा स्थावर जङ्गमके सहित समस्त जगत्को जलाने लगी। पितामहके महाक्रोधके वेगसे कुपित होनेपर उनकी क्रोधाग्निसे स्थावर जङ्गम सब जीव जलने लगे। तब पिंगल वर्ण जटासे युक्त वेदपति और यज्ञपति परवीरहन्ता महादेव पितामहके निकट उपस्थित हुए, जब भगवान् महादेव प्रजासमूहके हितकी इच्छासे पितामहके निकट उपस्थित हुए उस समय मानो ब्रह्मा तेजसे प्रज्वलित होकर महादेवसे बोले, हे शम्भु! आज मैं तुम्हें वर ग्रहण करनेके योग्य समझता हूं; इसलिये तुम्हारी कौनसी अभिलाषा पूरी करूं; तुम्हारे हृदयमें जो प्रिय विषय विद्यमान है, आज मैं उसे पूर्ण करूंगा।

२५५ अध्याय समाप्त।

महादेव बोले, हे प्रभु पितामह! प्रजा सृष्टिके लिये ही मेरी यह प्रार्थना समझिये; आपने समस्त प्रजाकी सृष्टिकी है; इसलिये इनके ऊपर कोप न करिये। हे देव जगत्प्रभु! आपकी तेजरूपी अग्निसे सारी प्रजा सब भांतिसे जली जाती है, उसे देखके मुझे करुणा हुई है, इसलिये आप इन लोगोंके ऊपर क्रोध न करिये।

ब्रह्मा बोले, मैंने क्रोध नहीं किया है और सब प्रजा न रहे,—यह भी मेरी इच्छा नहीं है केवल पृथ्वीके भारको हलका करनेके ही लिये इनके संहारकी इच्छा करता हूं। हे महादेव! इस भारसे दुःखित वसुन्धराने बहुतसे बोझके कारण जलमें डूबती हुई सदा संहारके लिये मुझे उत्तेजित किया है, मैंने इन वृद्धिको प्राप्त हुई प्रजासमूहके संहारके विषयमें जब बुद्धिसे बहुत विचार करके भी कोई उपाय न देख सका तब मेरे शरीरसे क्रोध उत्पन्न हुआ।

महादेव बोले, हे विबुधेश्वर! आप प्रसन्न होइये, प्रजाके संहारके निमित्त क्रोध न करिये स्थावर, जंगम जीव विनष्ट न होवें, समस्त पल्वल तथा वल्वज, तृण वा स्थावर जङ्गम आदि चार प्रकारके उत्पन्न हुए जीव, ये सभी भस्म प्राय हुए हैं इससे सब जगत् उपप्लुत हुआ है। हे साधु! हे भगवन्! इसलिये आप प्रसन्न होइये, मैंने यही वर मांगा, ये सब प्रजा जो कि नष्ट हुई हैं, वे किसी प्रकार फिर आगमन न करेंगी, इससे निज तेजके जरिये ही इस तेजकी निवृत्ति होवे। हे पितामह! ये सब जन्तु जिसमें भस्म न हो जावें, आप जीवोंकी हितकामनासे वैसा दूसरा उपाय अवलोकन करिये, हे लोकनाथेश्वर! आपने मुझे अहङ्काराधिष्ठानमें नियुक्त किया है; इससे प्रजासमूहका

प्रजननके उच्छेद निबन्धनसे जिसमें अभाव न हो, आप वैसेही किसी उपायका विधान करिये। हे नाथ! यह स्थावर जङ्गम जगत् आपसेही उत्पन्न हुआ है। हे देवोंके देव! इसलिये मैं आपको प्रसन्न करके यह प्रार्थना करता हूं, कि सब जीव मरनेके अनन्तर बार बार जन्म ग्रहण किया करें।

नारदमुनि बोले, नियत वाक्य और संयत-चित्त देव प्रजापतिने महादेवके उक्त वचनको सुनकर अन्तरात्मामें उस तेजको समेट लिया। अनन्तर सर्व्वलोक पूजित भगवान् प्रभु पितामहने अग्निको उपसंहार करके जीवोंके जन्म और मरणकी व्यवस्था कर दी। महानुभाव प्रजापतिके क्रोधज अग्निको उपसंहार करनेके समय उनके निखिल इन्द्रिय रन्ध्रोंसे एक स्त्री उत्पन्न हुई वह नारी काले और लाल वस्त्र पहने हुए दिव्य कुण्डलोंसे युक्त दिव्य आभूषणोंसे भूषित और उसके दोनों नेत्र और करतल काले थे; वह इन्द्रिय छिद्रोंसे निकलते ही उनकी दहनी ओर बैठ गई। विश्वेश्वर ब्रह्मा और रुद्र दोनों ही उस कन्याको देखने लगे। हे महाराज! उस समय सब लोकोंके ईश्वर आदिभूत ब्रह्मा उस कन्याको मृत्यु नामसे आवाहन करके बोले, तुम इन सब प्रजाको संहार करो। हे कामिनी! तुम शीघ्र प्रजाको संहार करनेमें प्रवृत्त होजाओ मेरे नियोगके अनुसार तुम्हारा परम कल्याण होगा। जब कमलमालिनी मृत्यु देवीसे प्रजापतिने ऐसा कहा, तब वह कन्या अत्यन्त दुःखित होकर आंसू बहाती हुई चिन्ता करने लगी। मृत्युके आंसू गिरनेसे इकबारगी सब भूतोंका नाश न होजाय, इस ही आशङ्कासे प्रजापतिने अपने दोनों हाथकी अञ्जलीमें उसके आंसुओंको ग्रहण किया और मनुष्योंके हितके लिये फिर उसके निकट प्रार्थना की।

२५६ अध्याय समाप्त।

नारदमुनि बोले, वह विशाल नैनी अबला स्वयं ही दुःख दूर करके उस समय आवर्ज्जित लताकी भांति हाथ जोड़के बोली, हे वक्तृवर! आपने मेरे समान स्त्री क्यों उत्पन्न की; मेरे समान अबलाके जरिये भयङ्कर रौद्रकर्म्म किस प्रकार साधित होवेगा मैं अधर्म्मसे अत्यन्त डरती हूं; इसलिये आप मेरे विषयमें धर्म्मविहित कर्म्म करनेकी आज्ञा करिये; आप मुझे भयार्त्त देख रहे हैं; इससे कल्याणकारी नेत्रसे अवलोकन करिये। हे प्रजेश्वर! मैं निरपराधिनी बाला हूं, बूढ़े वा युवा प्राणियोंको हरण न कर सकूंगी, मैं आपको नमस्कार करती हूं, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। जिसके प्रिय पुत्र, सखा, भाई, माता और पिता आदिको मैं हरण करूंगी वह यदि मुझे शाप देवें,—उस ही निमित्त मैं अत्यन्त भयभीत हुई हूं; दुःखित प्राणियोंको आंखोंके आंसू मुझे सदा जलावेंगे इसलिये मैं वैसे प्राणियोंसे अत्यन्त भयभीत होकर आपकी शरणागत हुई हूं। हे देव! पाप कर्म्म करनेवाले मनुष्य ही यम लोकमें गमन करें; हे बरदायक! इससे आप मुझपर कृपा करिये। हे लोकपितामह महेश्वर! मैं आपके निकट यही प्रार्थना करती हूं, कि आपकी प्रसन्नताके लिये मुझे तपस्या करनेको इच्छा है, आप इस विषयमें आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, हे मृत्यु! मैंने प्रजा संहार करनेके लिये तुम्हें उत्पन्न किया है, इससे जाके सब प्रजाको संहार करो, इस विषयमें और वितर्क मत करो; मैंने जैसा सङ्कल्प किया है, वह अवश्य वैसा ही होगा, उसमें कभी उलट फेर न होगा। हे पापरहित अनिन्दिते! मैंने जो बचन कहा है, उसे प्रतिपालन करो। हे पराये देशको जीतनेवाले महाबाहु महाराज! मृत्यु प्रजापतिका ऐसा बचन सुनके कुछ भी न बोली, केवल नम्रभावसे भगवानके निकट सिर झुकाकर स्थिति करने लगी; बार बार कह-

नेपर भी जब वह भामिनी चेतरहितकी भांति चुपी साध गई ; तब देवेश्वर ब्रह्मा आपसे आप ही प्रसन्न हुए और उन लोकनाथने बिस्मित होकर सब लोकोंको देखा। अनन्तर उन पराजयरहित भगवान्का क्रोध निवृत्त होनेपर वह कन्या उनके निकटसे चली गई—ऐसा हमने सुना है। हे राजेन्द्र! मृत्यु उस समय वहांसे गमन करके प्रजा संहार विषयको अनंगीकार करती हुई शीघ्रताके सहित धेनुक तीर्थमें गई, वह देवी धेनुक तीर्थमें परम दुष्कर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुई। वह पन्द्रह पद्म-वर्ष परिमाणसे एक चरणसे खड़ी होके स्थिति करने लगी। जब मृत्यु उस स्थानमें इस प्रकार दुष्कर तपस्या कर रही थी, उस समय महातेजस्वी ब्रह्मा फिर उससे यह बचन बोले, हे मृत्यु! मेरा बचन प्रतिपालन करो। मृत्यु उनके बचनका अनादर करके शीघ्रता-पूर्व्वक फिर सातपद्म वर्ष परिमाण एक चरणसे खड़ी रही। हे मानद! इसी प्रकार पर्य्याय क्रमसे उसने तेरह पद्म वर्ष व्यतीत किया। शेषमें वह फिर अयुतपद्म वर्ष पर्य्यन्त मृगसमूहोंके सहित घूमती रही। हे महाबुद्धिमान् महाराज! मृत्यु बीसहजार वर्ष तक वायु पीके रही थी। हे राजन्! अनन्तर उसने अत्यन्त कठोर मौनव्रत अवलम्बन किया, सातहजार एक वर्षतक जलमें निवास किया। हे नृपसत्तम! अनन्तर उस कन्याने गण्डकी नदीमें गमन किया, वहां वायु और जल पीके फिर नियमाचरण करने लगी, अन्तमें वह महाभागा गङ्गानदी और सुमेरु पर्व्वतपर गई। वहां प्रजासमूहको हितकामनाके लिये स्थाणुकी भांति केवल निश्चेष्ट होरही। हे राजेन्द्र! अनन्तर हिमालयकी शिखरपर जहां कि देवताओंने यज्ञ किया था; वहांपर वह निखर्व्व वर्ष पर्य्यन्त अंगूठेके बल स्थित रही और परम यत्नसे प्रजापतिको प्रसन्न किया। उस समय सब लोकोंकी सृष्टि और प्रलयके कारण प्रजापति उससे बोले, हे पुत्री! यह क्या होरहा है? मेरा पहला बचन प्रतिपालन करो।

पितामहका बचन सुनके मृत्युने उन भगवान्से फिर कहा, हे देव! मैं प्रजासमूहका संहार न करूंगी, मैं फिर आपको प्रसन्न करती हूं। देवोंके देव पितामहने उस कन्याको अधर्म्मके भयसे डरी हुई तथा फिर प्रार्थना करती हुई देख निज वाक्यका निग्रह करके यह बचन बोले, हे शुभे! तुम इन सब प्रजाको संयत करो, इससे तुम्हें अधर्म्म न होगा। हे कल्याणि! मैंने जो कुछ कहा है, वह मिथ्या न होगा; सनातन धर्म्म इस समय तुम्हें अवलम्बन करेगा; मैं तथा दूसरे देवता लोग सब कोई तुम्हारे हितमें रत रहेंगे। तुम्हारी यह अभिलाषा तथा और जो कुछ तुम्हारे मनमें अभिलषित विषय है; उसे प्रदान करता हूं; व्याधिसे पीड़ित प्रजा तुम्हें दोषी न करेंगी। तुम प्रांत पुरुषमें निज स्वरूपसे पुरुषत्वको प्राप्त होगी; स्त्रियोंमें स्त्रीरूपी होगी और नपुंसकोंमें नपुंसकत्व लाभ करोगी।

हे महाराज! मृत्यु प्रजापतिका ऐसा बचन सुनके फिर उस अव्यय महात्मा देवेश्वरके समीप हाथ जोड़के प्रजासंहारके विषयमें अनङ्गीकार बचन ही कहने लगी। देव पितामह उस समय उससे बोले, हे मृत्यु! तुम मनुष्योंको संहार करो। हे शुभे! जिसमें तुम्हें अधर्म्म न हो, मैं उसही उपायको सोचूंगा। हे मृत्यु! तुम्हारे जिन सब आंसुओंकी बूंदोंको गिरती हुई देखके मैंने तुम्हारे सम्मुखमें ही अञ्जली धारण की थी, वेही भयङ्कर व्याधि होकर समय उपस्थित होनेपर मनुष्योंको तुम्हारे वशीभूत करेंगी। तुम सब प्राणियोंके अन्तकालमें इकबारगी मरणके निदान काम और क्रोधको प्रेरणा करोगी; ऐसा होनेके नित्य धर्म्म तुम्हें अवलम्बन करेगा अर्थात् काम क्रोधको प्रकट कर उसहीके जरिये जीवोंका संहार करके तुम

राग द्वेषसे रहित होनेके कारण अधर्म्मभाजन न होगी। तुम इस ही प्रकार धर्म्म पालन करोगी, किसी भांति आत्माको अधर्म्ममें निमग्न न करोगी; इसलिये तुम इच्छानुसार निज अधिकारकी अभिलाष करो और कामको प्रकट करके सब जीवोंकेसंहार करनेमें प्रवृत्त होजाओ।

मृत्यु नामी कामिनीने उस समय शापभयसे डरके ब्रह्मासे बोली, "वैसाही करूंगी"। अनन्तर वह प्राणियोंके अन्तकालमें काम क्रोधको प्रेरणा कर और सबको मोहित करके प्राणियोंका नाश किया करती है। पहले मृत्युके जो सब आंसू गिरे थे वेही व्याधि स्वरूप हुए हैं, उन्ही व्याधियोंके जरिये मनुष्योंका शरीर रोगयुक्त हुआ करता है, इससे प्राणियोंके जीवन नष्ट होनेपर शोक करना उचित नहीं है इसलिये तुम शोक मत करो, विचारके जरिये यथार्थ विषय मालूम करो। हे राजन्! जैसे इन्द्रियां सुषुप्ति अवस्थामें सत् वस्तुके सङ्ग लीन होके जाग्रत अवस्थामें फिर लौटती हैं, वैसेही मनुष्य लोग जीवन शेष होनेपर गमन करके इन्द्रियोंकी भांति पुनरागमन किया करते हैं। भयङ्कर शब्दके युक्त महा तेजस्वी भयानक वायु सब प्राणियोंका प्राणभूत है, वह वायु देहधारियोंके देहभेदसे नाना वृत्ति अर्थात् अनेक शरीरगत हुआ करता है; इसलिये वायुही सब इन्द्रियोंसे श्रेष्ठ है। देवता लोग पुण्य-क्षीण होनेसे मनुष्य होते और मनुष्य पुण्यात्मा होनेसे देवत्व लाभ करते हैं। हे राजन्! इसलिये पुत्रके निमित्त शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र स्वर्गलाभ करके आनन्दित होरहा है। इसही प्रकार देवसृष्ट मृत्यु समय उपस्थित होनेपर प्रजाको संहार करती है, उसके वेही सब आंसू व्याधि होकर समयके अनुसार जीवोंको हरण किया करते हैं।

२५७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! ये सब मनुष्य आर्य्य, जैन, म्लेच्छ आदि शास्त्रीय धर्म्मके नानाप्र निबन्धनसे उस विषयमें सन्देहयुक्त होते हैं; इससे धर्म्मका स्वरूप और लक्षण क्या है। यथा कहांसे धर्म्मकी उत्पत्ति हुआ करती है, आप मेरे समीप उसे वर्णन करिये; और धर्म्म इसलोकके लिये, वा परलोकके लिये अथवा दोनों लोकोंके निमित्त है, यह भी आप मुझसे विशेष रीतिसे कहिये।

भीष्म बोले, वेद, स्मृति और सदाचार ये तीन प्रकार धर्म्मके लक्षण हैं, और प्रयोजनको भी पण्डित लोग चतुर्थ लक्षण कहा करते हैं। महर्षि लोग धर्म्मके निमित्त हितकर कर्म्मोंको न्यूनाधिक भावसे निश्चय करते हैं, गार्हस्थ्य आश्रममें भी मोक्ष होतो है, आलसी लोग सन्न्यास अवलम्बन करते हैं, त्याग करनेसे ही मुक्ति हुआ करती है; विषय लम्पट मनुष्य गार्हस्थाश्रमकी अभिलाष करते हैं इस ही प्रकार विषयभेदसे लोकयात्रा निबाहनेके लिये धर्म्मका नियम निर्णीत हुआ है। इस लोक और परलोक दोनों ओर धर्म्मके फल दीख पड़ते हैं। पापी मनुष्य निपुण भावसे धर्म्म प्राप्तिमें असमर्थ होकर पापयुक्त होता है। कोई कोई ऐसा कहा करते हैं, कि पाप करनेवाले पुरुष आपद कालमें भी पापोंसे नहीं छूटते। धर्म्मवित् पुरुष पापवादी होनेपर भी अपापवादी हुआ करते हैं, आचार ही धर्म्मकी निष्ठा है; इसलिये तुम उस आचारको अवलम्बन करनेसे ही धर्म्मको जान सकोगे। धर्म्म समाविष्ठ तस्कर जब परधनको हरता है, अथवा अराजक समयमें पराये वित्तको अपना कर लेता है, उस समय वह परम सुखी होता है; परन्तु जब तस्करके धनको दूसरे लोग हर लेते हैं, तब वह राजद्वारमें उपस्थित होता है, तब जो लोग निज धनसे सन्तुष्ट हैं, वह उनकी स्पृहा किया करता है; वह निर्भय, पवित्र

और अशंकित होकर राजद्वारमें प्रवेश करता है। अन्तरात्मामें कुछ भी दुश्चरित्र नहीं देखता। सत्य कहना ही उत्तम है, सत्यसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है, सत्यसे सारा संसार विधृत हुआ करता है, समस्त जगत् सत्यसे ही प्रतिष्ठित है। रौद्र कर्म्म करनेवाले पापाचारी मनुष्य भी पृथक् पृथक् शपथ करके सत्यके आश्रयसे अद्रोह और अविसम्वादमें स्थित रहते हैं, वे लोग यदि परस्परको प्रतिज्ञा भङ्ग करें, तो निश्चयही विनष्ट होवें, परधन हरना उचित नहीं,—यह सनातन धर्म्म है। बलवान् पुरुष पूर्व्वोक्त धर्म्मको निर्ब्बलोंके जरिये प्रवर्त्तित समझते हैं, जिस समय बलवानोंको दैवकी प्रतिकूलतासे निर्ब्बलता प्राप्त होती है, तब उन लोगोंकी भी धर्म्ममें रुचि हुआ करती है। अत्यन्त बलवान् पुरुष भी सुखी नहीं होते, इसलिये अनार्ज्जव अर्थात् कुटिल कार्य्योंमें बुद्धि लगानी तुम्हें उचित नहीं है। सत्यवादी पुरुष असाधु, तस्कर और राजासे भयभीत नहीं होता, वह किसी पुरुषका कुछ अनिष्ट नहीं करता; इसहीसे निर्भय और पवित्र हृदयसे निवास किया करता है। गांवमें आये हुए हरिनकी भांति तस्कर सब लोगोंके समीप शङ्कित होता है, जैसे वह स्वयं बहुतसा पाप कार्य्य करता है, दूसरेको भी वैसाही दीखता है। जो शठ होता है, वह दूसरेको भी शठ समझता है; और शुद्ध हृदय तथा सदाशयवाले पुरुष सदा आनन्दित और निर्भय होकर सब ठौर बिचरते हैं, अपने दुश्चरितके विषय आत्मासे पृथक् नहीं देखते। सब भूतोंके हितमें रत महर्षियोंने "दान करना चाहिये,"—इसेही धर्म्म कहा है; धनवान् मनुष्य उसही धर्म्मको निर्द्धनोंसे प्रवर्त्तित समझता है, दैववशसे जब वह भी दीनदशासे युक्त होजाता है, उस समयमें उसे भी उस ही धर्म्ममें रुचि उत्पन्न होती है; इसलिये अत्यन्त धनवान पुरुष भी कदाचित सुखी नहीं होते। जब मनुष्य दूसरेके किये हुए कर्म्मको आत्मकृत कर्म्म कहनेकी अभिलाषा नहीं करता, तब वह जिस कर्म्मको अपना प्रिय समझता है, दूसरेके लिये उसे कभी न करेगा।

जो पुरुष पराई स्त्रीका उपपति होता है; वह स्वयं दोषी है, इसलिये वह दूसरेको क्या कह सकेगा। वह यदि दूसरे पुरुषको उक्त कार्य्य करते हुए देखे तो मुझे बोध होता है, उसे कुछ न कह सकनेसे क्षमा किया करेगा। जो पुरुष स्वयं जीवित रहनेकी इच्छा करता है, वह किस प्रकार दूसरेका बधकर सकेगा; इसलिये अपने लिये जैसी अभिलाष करे, दूसरेके वास्ते भी वैसी ही इच्छा करनी उचित है। स्वीकार आवश्यकके अतिरिक्त भोगसाधन धन आदिके जरिये दीनजनोंका भरणपोषण करे, इस ही निमित्त बिधाताने कुसीद अर्थात् वृद्धिके निमित्त धन-प्रयोग प्रवर्त्तित किया है; दीन-दरिद्रोंके पालने पोषनेके लिये ही धनकी वृद्धि करनी चाहिये, नहीं तो केवल धनकी वृद्धि हो, यह उद्देश्य अत्यन्त निकृष्ट है। जिस सन्मार्गमें निवास करनेसे देवता लोग भी सम्मुखवर्त्ती हुआ करते हैं, वैसे सन्मार्गमें सदा बिचरता रहे, अर्थात् सदा दम, दान और दयायुक्त होवे, अथवा लाभके समय यज्ञ, दान आदि धर्म्ममें अनुरक्त होना उत्तम कार्य्य है। हे युधिष्ठिर! प्रिय वाक्यसे जो कुछ प्राप्त होता है, मनीषी लोग उसेही धर्म्म कहा करते हैं, जो अपनेको प्रिय है, दूसरेके विषयमें वैसा ही करना चाहिये; जो अपनेको प्रिय नहीं है, दूसरेके सम्बन्धमें वैसा करना योग्य नहीं है। यह जो मैंने धर्म्म अधर्म्मका लक्षण वर्णन किया है, तुम उसकी आलोचना करो। पहले समयमें बिधाताने साधुओंके दया प्रधान सत् चरित्रकी ही सूक्ष्म धर्म्म लाभकी बिधि निमित्तरूपसे बिधान की थी। हे कुरु सत्तम! यही तुम्हारे निकट धर्म्मका लक्षण वर्णन किया

गया,— इसे सुनकर तुम किसी प्रकार अना-र्ज्जव कार्य्योंमें बुद्धि निविष्ट न करना।

२५८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! वेदैकगम्य, साधु समुद्दिष्ट धर्म्मका लक्षण अत्यन्त सूक्ष्म है, हमारी कोई प्रतिभा है, उसहीको अवलम्बन करके अनुमानके जरिये मैं यह सब प्रश्न करता हूं; मेरे हृदयमें बहुतसे प्रश्न थे, उनमेंसे आपने अधिकांशके उत्तर दिये हैं, अब दूसरी प्रकारका एक प्रश्न करता हूं, उस विषयमें कुतर्क करनेका मुझे आग्रह नहीं है, पूंछना ही मुख्य प्रयोजन है। हे भारत! यह प्रसिद्ध ही है, कि ये समस्त शरीरयुक्त प्राणी स्वयं ही जीवन लाभ करते हैं, स्वयं ही उत्पन्न होते हैं और स्वयं ही उत्तीर्ण अर्थात् देहाकारसे च्युत होते हैं; ऐसी जन-श्रुति है, कि अन्नसे ये सब जीव जन्म ग्रहण करते हैं, जन्म ग्रहण करके अन्नसे ही जीवित रहते हैं, और अन्त समय अन्नमें जाके प्रविष्ट किया करते हैं; आपने कहा है दूसरोंके सुख दुःख उत्पादनसे जो धर्म्माधर्म्म उत्पन्न होता है वह कालान्तरमें अपना सुख दुःखप्रद हुआ करता है; इसलिये केवल वेदाध्ययनसे ही धर्म्मका निश्चय नहीं किया जा सकता; क्यों कि व्यवस्थाके अभाव निबन्धनसे वैदिक धर्म्म अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। सब पुरुषोंके धर्म्म स्वतन्त्र हैं और विषमस्थ लोगोंका स्वतन्त्र धर्म्म है; आपदका अन्त नहीं है; इसलिये धर्म्मको भी अनन्त कहना होगा। अनन्त होनेसे ही धर्म्म दुर्ज्ञेय हुआ; इसलिये अव्यवस्थित वैदिक धर्म्मका धर्म्मत्व किस प्रकार सिद्ध हो सकेगा। और सदाचारको आपने धर्म्म कहा है, परन्तु धर्म्माचरणसे ही लोगोंमें सत् हुआ करता है; इसलिये लक्ष्य और लक्षणके अन्योन्याश्रय दोष-सम्पर्कसे सदाचारकी धर्म्मलक्षण रूपसे किस प्रकार स्वीकार किया जावे; यह दीख पड़ता है, कि कोई प्राकृत पुरुष धर्म्मस्वरूपसे अधर्म्म करता है और कोई असाधारण मनुष्य अधर्म्म-रूपसे धर्म्माचरण करता है। शूद्र जातिको वेद सुनना शास्त्रमें मना होनेपर भी प्राकृत शूद्र धर्म्मबुद्धिके कारण मुमुक्षु होकर वेदान्त सुना करते हैं और अगस्त्य आदि असाधारण महर्षियोंने बहुतसे हिंसायुक्त अधर्म्माचरण किये हैं, इसलिये भ्रष्ट लोगोंमें शिष्ट लक्षण दीख पड़नेसे सदाचारका भी निर्णय करना अत्यन्त दुःसाध्य है; परन्तु धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंने धर्म्मके यही प्रमाण निर्देश किये हैं। मैंने सुना है युग युगमें वेदोंकी घटती हुई जाती है, इसलिये कालभेदसे जब कि वेदमें भी अन्यथा देखी जाती है, तब वह अनवस्थित वेदवाक्य भी अश्रद्धेय होसकता है। सतयुगका धर्म्म स्वतन्त्र है; त्रेता, द्वापरके स्वतन्त्र धर्म्म हैं और कलियुगका धर्म्म उनसे पृथक् है, मानो यह शक्तिके अनुसार विहित हुआ है। "वेदके सब वचन सत्य हैं,"—यह केवल लोकरञ्जन मात्र है, और वेदसे निकली हुई स्मृतियें सर्व्व-मुख हुई हैं; इसलिये किस प्रकार स्मृतिवाक्य प्रमाण किया जा सकता है। सबका प्रमाण वेदवाक्य सारी स्मृतियोंके प्रमाणको सिद्ध करता है, यदि यह अङ्गीकार किया जावे, तो वेदवाक्यका निरपेक्षत्व निबन्धन प्रमाण स्वीकार करना होगा और सब स्मृतियें श्रुति-संक्षेप कहके अप्रमाण रूपसे परिगणित हुआ करती हैं; परन्तु अप्रमाणरूपी स्मृतिके सङ्ग जब श्रुतिका विरोध दीख पड़ता है, तब मूलभूत वेदवाक्यका भी अप्रमाणत्व-निबन्धन एक पक्ष-पातिनी युक्तिके बिना प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रुति तथा स्मृति दोनोंके ही अप्रमाणके कारण शास्त्रत्व सिद्धि किस प्रकार हो सकती है।

बलवान् दुरात्मा पुरुषोंके जरिये क्रियमाण धर्म्मका जो जो स्वरूप विकृत होता है, वही

प्रनष्ट होजाता है। हम स्वयं इस धर्म्मको जानें वा न जानें अथवा जानने सकें, वा न जान सकें; तो भी धर्म्म चूरधारसे भी सूक्ष्म और पहाड़से भी गुरुतर है। पहले धर्म्म गन्धर्व्वनगरकी भांति अद्भुतरूपसे दीख पड़ता है, अर्थात् धर्म्मकाण्डमें कहा है, कि "चातुर्म्मास-याजीको अक्षय सुकृत होता है। हम सोमपान करेंगे, अमर होंगे"—इत्यादि श्रुतिका गन्धर्व्व नगरके समान अद्भुतत्व दीख पड़ता है। अनन्तर कवियोंके जरिये उपनिषत्के बीच वच्यमाण कर्म्म फिर अदृश्यताको प्राप्त होता है, अर्थात् कार्य्यमात्र ही अनित्य हैं; कर्म्मसे जो लोक जय किया जाता है, उसका भी नाश होता है इत्यादि उपनिषत् वाक्यसे धर्म्म अत्यन्त तुच्छ बोध होता है।

हे भारत! जैसे पशुओंके पीने योग्य क्षुद्र तालावके जलको खेतमें सींचने पर सारा तालाव सूख जाता है, वैसेही शाश्वत धर्म्म अङ्गहीन होकर कलियुगके शेषमें अदृश्य होगा। इस ही प्रकार भविष्य विषयकी स्मृति है, कि निज इच्छा वा पराई इच्छा तथा दूसरे किसी कारणसे बहुतेरे असत् पुरुष वृथा आचार किया करते हैं, साधुओंके आचरित कर्म्मही धर्म्म रूपसे मालूम होते हैं परन्तु मूढ़ दृष्टिसे देखनेसे वही धर्म्म साधुओंमें प्रलापमात्र मालूम हुआ करता है। मूढ़ लोग साधुओंको उन्मत्त कहा करते हैं, और उनकी हंसी करते हैं। द्रोणाचार्य्य आदि महाजनोंने ब्राह्मणोंके कर्त्तव्य कार्य्यका अनादर करके क्षत्रियधर्म्म अवलम्बन किया था; इसलिये सर्व्व हितकर कोई व्यवहार प्रवर्त्तित नहीं होता। इसके अतिरिक्त आचारके जरिये निकृष्ट जाति भी उत्कृष्ट होती है, और उत्तम वर्ण भी निकृष्ट हुआ करते हैं। कभी कोई पुरुष दैवइच्छासे आचारके जरिये समान रूपसे ही रहते हैं, विश्वामित्र, जमदग्नि और वशिष्ठ आदि इस विषयमें विस्पष्ट दृष्टान्त स्थल हैं जिस आचारके जरिये एक पुरुष उन्नत होता है, वही आचार दूसरेको अवनत करता है, इसकी पर्य्यालोचना करनेसे सब आचारोंमें ही अनैक्यता अर्थात् व्यभिचारित्व मालूम हुआ करता है। प्राचीन पण्डित लोग सदासे जिस धर्म्मको स्वीकार करते चले आते हैं, आपने वह विषय ही वर्णन किया; इसलिये उस प्राचीन आचारके जरिये शाश्वती मर्य्यादा स्थापित हुआ करती है, परन्तु मुझे ऐसा मालूम होता है, कि अनादि अविद्या प्रवृत्त स्वभावसे ही सुख-दुःख कार्य्याकार्य्यकी व्यवस्था हुआ करती है। वेद प्रमाणक धर्म्मके जरिये सुख दुःख आदि कार्य्याकार्य्यकी व्यवस्था नहीं होती।

२५९ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, धर्म्म विषयमें जाजलीके सङ्ग तुलाधारकी जो सब वार्त्ता हुई थी, इस विषयमें प्राचीन लोग उस ही पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। जाजली नाम कोई वनचारी ब्राह्मण जङ्गलमें वास करते थे, उस महातपस्वीने समुद्रके किनारे बहुत तपस्या की थी। वह धीमान् मुनि संयत और नियताहारी होकर अनेक वर्ष पर्य्यन्त चीर, मृगछाला और जटा धारण करके मलिन हुए थे। हे राजन्! किसी समय वह महातेजस्वी विप्रर्षि समुद्रके जलमें वास करते हुए सब लोकोंको देखनेके लिये उत्सुक होकर मनकी भांति वेग धारण करके विचरने लगे। अनन्तर उन्होंने वन सहित समुद्र पर्य्यन्त पृथ्वीको देखकर फिर चिन्ता की, कि स्थावर जङ्गमयुक्त संसारके बीच मेरे समान वा मेरे सहित जलके बीच तथा आकाशमण्डलके नक्षत्रादि लोकोंमें गमन कर सके, ऐसा कोई भी नहीं है। वह जब जलके बीच राक्षसोंसे अदृश्यमान रहके ऐसा कह रहे थे, तब पिशाचोंने उनसे कहा, हे द्विजसत्तम!

तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है, वाराणसी (काशी) में तुलाधार नाम वणिक् व्यवसायी एक महायशस्वी मनुष्य है, तुम जैसा कहते हो, वह भी वैसा वचन नहीं कह सकता। महातपस्वी जाजलीने पिशाचोंका ऐसा वचन सुनके उन्हें उत्तर दिया, कि बहुत अच्छा, मैं बुद्धिमान यशस्वी तुलाधारका दर्शन करूंगा। ऋषि जब ऐसा वचन बोले, तब पिशाचोंने उन्हें समुद्रसे उठाकर कहा, हे द्विजवर! तुम इस ही मार्गको अवलम्बन करके गमन करो। जाजली मुनि भूतोंका ऐसा वचन सुनकर मलिन-मन होकर काशीमें तुलाधारके समीप वक्ष्यमाण वचन कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जाजली मुनिने पहिले कौनसा दुष्कर कर्म किया था, जिससे कि उन्होंने परम सिद्धि पाई; आप मेरे समीप उसीको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, महातपस्वी जाजली मुनि घोर तपस्यायुक्त हुए थे, वह सन्ध्या और सबेरेके समय स्नान और आचमनमें रत रहते थे। वह स्वाध्यायमें रत द्विजश्रेष्ठ यथानियमसे अग्निकी परिचर्य्या करते थे, वाणप्रस्थ विधान जानके वेदविद्यासे प्रदीप्त हुए थे, वह वर्षाकालमें आकाशशायी और हेमन्तमें जल संश्रयी होकर तपस्या करते थे; परन्तु यह न जानते थे, कि मैं धर्म्मवान् हूं। ग्रीष्मकालमें वायु और घाम सहते थे, तौभी अपनेको धार्म्मिक समझके अभिमान नहीं करते थे। वह भूमिपर अनेक दुःखकरी शय्यापर शयन करते थे।

अनन्तर किसी प्रावृट्कालमें उस मुनिने आकाशको अवलम्बन करके अन्तरीक्षसे बार बार गिरते हुए जलको शिरपर धारण किया था। उससे उनकी सब जटा क्लिन्न और ग्रथित हुई थी। वह सदा वनमें घूमनेसे मलिन और मलयुक्त हुए थे। उस महातपस्वीने कभी कभी निराहारी और वायुभक्षी होकर काठकी भांति अव्यग्र भावसे निवास किया था, किसी प्रकार विचलित नहीं हुए थे। हे भारत! उसही शाखारहित वृक्षकी भांति चेष्टाहीन मुनिके शिरपर चटकपक्षी-दम्पतीने घोसला बनाया; जब पक्षीदम्पती तृणोंसे घोसला बना रही थी, तब उन दयावान् महर्षिने उसे निवारण न किया। वह स्थाणुस्वरूप महातपस्वी जब किसी प्रकार विचलित न हुए, तब वह विहंग-दम्पती विश्वस्त होकर सहजमें ही उन महर्षिके शिर पर बास करने लगी। वर्षाकालके बीतने और शरत्काल उपस्थित होनेपर काम मोहित पक्षी मिथुन प्राकृतिक धर्म्मके अनुसार विश्वासके वशमें होकर उस मुनिके शिरपर अण्डा प्रसव किया। उस संशितव्रती तेजस्वी विप्रने उसे जाना और जानके भी वह महातेजस्वी जाजली कुछ भी विचलित नहीं हुए; वह सदा धर्म्मनिष्ठ रहनेके कारण कभी अधर्म्ममें अभिलाष नहीं करते थे। अनन्तर वे दोनों पक्षी प्रतिदिन उनके शिरपर आके आश्वासित और हर्षित होकर बास करते थे कालक्रमसे अण्डोंके परिपुष्ट होने पर उनमेंसे बच्चे उत्पन्न हुए और जन्म लेकर वहां क्रमसे बढ़ने लगे; तौभी जाजली विचलित नहीं हुए। वह चेष्टा रहित, समाधिनिष्ठ, धृतव्रत, धर्म्मात्मा चटकपक्षीके बच्चोंकी रक्षा करते हुए उस ही प्रकार स्थिति करने लगे। समयके अनुसार चटकशावकोंके पङ्ख जमे, मुनिने उसे जान लिया। अनन्तर किसी समयमें बुद्धिमान् यतव्रती महर्षि उन पक्षियोंको देखकर परम प्रसन्न हुए। पक्षी-दम्पती भी अपने बच्चोंको पूरीरीतिसे बढ़ते देख हर्षित होकर निर्भयताके सहित उनके सहित मुनिके शिर पर बास करने लगी। जब पक्षी शावकोंके पङ्ख जम गये, तब वह उड़नेवाले होकर स्थानान्तरमें गमन करके फिर सन्ध्याके समय मुनिके शिरपर आके बास करते थे; विप्रवर जाजली उससे भी

विचलित न हुए, किसी समय वे बच्चे जनक-जननीसे परित्यक्त होके भी मुनिके शिरपर आगमन करके फिर स्थानान्तरमें गमन करते थे। सदा उनके ऐसा आचरण करने पर भी जाजली निज स्थानसे विचलित न हुए। हे राजन्! इस ही प्रकार सारा-दिन बिताकर पक्षीशावक सन्ध्याके समय निवासके लिये उस ही स्थानमें लौट आते थे किसी समय पक्षी-वृन्द स्थानान्तरमें पांचदिन बिताकर छठवेंदिन जाजलीके शिर पर आके उपस्थित होते थे, इससे भी मुनि विचलित न हुए। क्रम क्रमसे वे बच्चे बलवान् होनेसे स्थानान्तरमें कई दिन बिताके भी नहीं लौटते थे, कभी एक महीनेके लिये उड़के चले जाते थे; फिर लौट कर नहीं आते थे, परन्तु जाजली उस ही भांति निवास करतेथे। अनन्तर उन पक्षियोंके एक समय उड़के चले जाने पर जाजलीने विस्मययुक्त होके समझा कि'मैं' सिद्ध हुआ हूं। ऐसा ज्ञान होनेके अनन्तर उनके चित्तमें अभिमान उत्पन्न हुआ। व्रतनिष्ठ जाजली उन पक्षियोंको एकबारही निज मस्तकसे निकलते देखकर अपनेको सत्कारके योग्य समझके अत्यन्त प्रसन्न चित्त हुए। उस महा तपस्वीने नदीमें स्नान करके अग्निमें आहुति देनेके अनन्तर सूर्य्यको उदय होते देखकर उनकी उपासना की। जापकश्रेष्ठ जाजलीने शिरके बीच चटकशावकोंको पूरीरीतिसे बर्द्धित करके "मैंने धर्म्म लाभ किया है" ऐसा बचन कहते हुए शून्य स्थलमें बाहुस्फोट करने लगे।

अनन्तर यह आकाशवाणी हुई कि, हे जाजली! तुम धर्म्म विषयमें तुलाधारके समान नहीं हुए। काशीपुरीमें तुलाधार नाम एक पुरुष बसता है। हे विप्र! तुमने जैसा कहा वह भी वैसा बचन नहीं कह सकता। हे राजन्! जाजली मुनि उस आकाशबाणीको सुनके क्रोध-वश होकर तुलाधारका दर्शन करनेके लिये सारी पृथ्वीपर घूमने लगे और जहांपर सन्ध्याका समय उपस्थित होता था, वहांपर निवास करते थे, बहुत समयके अनन्तर वह काशीपुरीमें पहुंचे, वहां पहुंचके तुलाधारको पुण्य-वस्तुओंको बेचते हुए देखा। मूलधनोपजीवी तुलाधार विप्रवर जाजलीको आते देखकर हो परम सन्तुष्ट होकर उठ खड़े हुए और स्वागत प्रश्नसे उनका सत्कार किया।

तुलाधार बोले, हे ब्रह्मन्! आप अभी आये हैं, इसे मैंने निःसन्देह जाना है। हे द्विजवर! अब मैं जो कहता हूं, उसे सुनो। आपने समुद्रके तटपर सजल स्थानमें महती तपस्या की है, पहले कभी धर्म्मका नाम भी नहीं जानते थे, अर्थात् "मैं धार्म्मिक हूं" आपको ऐसा ज्ञान नहीं था। हे विप्र! अन्तमें जब आप तपस्यासे सिद्ध हुए, तब पक्षियोंके बच्चे शीघ्रही तुम्हारे शिरपर उत्पन्न हुए, आपने उनका यथायोग्य सत्कार किया। हे द्विज! जब बच्चे पक्षवाले होकर आहारके लिये उड़के चले गये, तब आपने मनमें यह निश्चय किया, कि "चटक पक्षियोंका पालन करनेसे धर्म्म हुआ है।" हे द्विजसत्तम! अनन्तर मुझे उद्देश्य करके जो आकाशवाणी हुई, तुम उसे सुनके क्रोधके वशमें हुए और उसही निमित्त इस स्थानमें आये हो। हे द्विजवर! इसलिये मैं आपका कौनसा प्रियकार्य्य सिद्ध करूं, उसे ही कहिये।

२६० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, उस समय जब बुद्धिमान् तुलाधारने जापकप्रवर जाजलीसे ऐसा बचन कहा, तब उन्होंने वक्ष्यमाण वचनसे उसे उत्तर दिया।

जाजली बोले, हे बणिक्पुत्र! तुम समस्त रस, गन्ध, बनस्पति औषधी और फलमूलोंको बेचा करते हो, तुमने नैष्ठिकी बुद्धि कहांसे पायी और किस प्रकार तुम्हें ऐसा ज्ञान

हुआ। हे महाप्राज्ञ! तुम इस ही विषयको विस्तारपूर्व्वक मेरे समीप वर्णन करो।

भीष्म बोले, हे राजन्! यशस्वी ब्राह्मणके ऐसा पूछनेपर धर्म्म अर्थके तत्वको जाननेवाला तुलाधार वैश्य उस समय ज्ञानतृप्त कठोर तपस्वी जाजलीसे सब सूक्ष्म धर्म्म कहने लगा।

तुलाधार बोला, हे जाजली! लोकमें सब भूतोंके हितकर जो पुराण-धर्म्मको जानते हैं, मैं रहस्यके सहित उस सनातन धर्म्मको जानता हूं; जीवोंसे द्रोह न करके अथवा आपदकालमें अल्प द्रोह आचरण करके जो जीविका निवाही जाती है, वही परम धर्म्म है। हे जाजली! मैं वैसा ही वृत्ति अवलम्बन करके जीवन व्यतीत किया करता हूं। मैंने परच्छिन्न तृणकाठोंसे यह गृह बनाया है। हे विप्रर्षि! अलक्त, पद्मक और तुङ्गकाष्ठ, कस्तूरी आदि विविध सुगन्धित वस्तु और नमक आदि रसकी वस्तुयें, मद्यके अतिरिक्त इन सब वस्तुओंको मैं दूसरेके हाथसे खरीदके कपटरहित होकर वचन, मन और कर्म्मके जरिये वेचा करता हूं। हे जाजली! जो सब प्राणियोंके सुहृत् तथा सब जीवोंके हितमें रत रहते हैं, वेही धर्म्म जाननेवाले हैं।

हे जाजली! मैं किसीको किसी विषयमें अनुरोध नहीं करता, किसीके सङ्ग विरोध नहीं करता, किसीसे द्वेष नहीं करता और किसीके समीप किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता। मैं सब भूतोंमें समदर्शी हूं, इसलिये तुम मेरा व्रत अवलोकन करो। हे जाजली! सब भूतोंमें मेरा तुलादण्ड समान भावसे खड़ा है। हे विप्रवर! मैं आकाशमण्डलमें स्थित विविध रूपवाले बादलसमूहोंकी भांति जगत्की विचित्रता देखकर दूसरेके किये हुए कार्य्योंकी प्रसंसा नहीं करता और निन्दा भी नहीं करता हूं। हे बुद्धिमान् जाजली! इस ही भांति तुम मुझे सब भूतों और ढेले, पत्थर तथा सुवर्णमें समदर्शी समझो। जैसे अन्धे, बहरे और उन्मत्त आदि पुरुषोंके इन्द्रियगोलक उस ही इन्द्रियाधिष्ठात देवताओंके जरिये आच्छादित होनेपर भी वे लोग श्वास लेते हुए जीवन धारण किया करते हैं, मैं उसे देखकर अपनेमेंही वैसी उपमा दिया करता हूं। जैसे बूढ़े, आतुर और दुर्व्वल पुरुष विषयोंसे निस्पृह होते हैं, वैसे ही अर्थ और काम्य वस्तुके उपभोग विषयमें मुझेभी स्पृहा नहीं है। जब यह जीव किसी प्राणीसे नहीं डरता और इससे भी दूसरे भयभीत नहीं होते; जब जीव किसी विषयकी कामना नहीं करता और किसीसे भी द्वेष नहीं करता, तब वह ब्रह्मत्वलाभ किया करता है। जिसका भूत भविष्य कोई धर्म्म नहीं है, जिससे किसी भूतको भय नहीं होता, वही अभयपद पाता है। मृत्यु मुखके समान क्रूर वचन कहनेवाले कठोर दण्डधारी जिस पुरुषसे सब लोग व्याकुल होते हैं, उसे महत् भय प्राप्त होता है। मैं यथावत् बर्त्तमान पुत्र पौत्रोंके सहित अहिंसामय महानुभव बूढ़ोंके चरित्रका अनुवर्त्तन किया करता हूं। किसी अंशमें विरुद्ध सदाचारसे मोहित शाश्वत वैदिक धर्म्म अनुदिष्ट हुआ है, इस ही निमित्त चाहे विद्यावान् हों, चाहे जितेन्द्रिय ही हों, वा काम क्रोध विजयी बलवान् हो क्यों न हों, सब पुरुष ही धर्म्म विषयमें मोहित हुआ करते हैं। जो दान्त पुरुष द्रोहरहित अन्तःकरणसे साधुओंके सङ्ग सदाचरण करता है, हे जाजली! वह बुद्धिमान् पुरुष आचारके जरिये शीघ्र ही धर्म्मलाभ करनेमें समर्थ होता है। जैसे नदीके प्रवाहमें बहता हुआ काठ यदृच्छावशसे दूसरे काठके सङ्ग मिल जाता है और उस स्थानमें दूसरे काष्ठ परस्पर मिल जाते हैं; कभी तृण काठ करीष आदि नहीं दीख पड़ते, मनुष्योंके कर्म्मप्रवाहके जरिये पुत्र स्त्री आदि संयोग वियोग भी वैसा ही है। जिससे कोई जीव भी किसी प्रकार व्याकुल नहीं होते, हे

मुनि! वेही सब भूतोंसे सदा अभय लाभ करते हैं। हे विद्दन्! जैसे वाड़वानलसे किनारेपर रहनेवाले सब जलचर और चिल्लार करनेवाले हिंसक मेड़ियेसे बनचर जीव डरते हैं, वैसे ही जिससे सब लोक उद्वेगयुक्त हुआ करते हैं उसे महत् भय प्राप्त होता है इस ही प्रकार जीवोंको अभय दानरूपी आचार जिसमें सब तरहके उपायसे उत्पन्न हो, उस विषयमें यत्न करना उचित है। जो लोग सहायसम्पत्तिसे युक्त होते हैं, वे इस लोकमें ऐश्वर्य्यशाली और परलोकमें परम सुखी होते हैं। इस हीसे कवि लोग सब शास्त्रोंमें अभयदाता पुरुषोंको ही सबसे श्रेष्ठ कहा करते हैं। जिनके अन्तःकरणमें थोड़ा सा वाह्यसुख शिखाकी भांति प्रतिष्ठित है, वे भी कीर्त्तिके लिये अभयदान करें और निपुण मनुष्य भी परब्रह्मकी प्राप्तिके लिये अभयदानमें दीक्षित होवें। तपस्या, यज्ञ, दान और बुद्धियुक्त वचनसे इस लोकमें जो सब फल भोग हुआ करते हैं, अभयदानके सहारे वे सब फल प्राप्त होते हैं। जगत्‌में जो लोग सब प्राणियोंको अभयदक्षिणा दान करते हैं, वे सब यज्ञयाजनके फलस्वरूप अभयदक्षिणा पाते हैं। सब प्राणियोंकी अहिंसासे बढ़के श्रेष्ठ धर्म्म और कुछ भी नहीं है। हे महामुनि! जिससे कोई जीव कभी किसी प्रकार व्याकुल नहीं होते, उसे सब प्राणियोंसे अभय प्राप्त होता है; और जिससे गृहगत सर्पकी भांति सब लोग व्याकुल होते हैं, वह ऐहिक और पारलौकिक धर्म्म प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता, जो सब प्राणियोंके आत्मभूत और समान भावसे सब जीवोंको देखते हैं, देवता लोग भी उस ब्रह्मलोक आदिके अनभिलाषी साधक पदके इच्छुक होकर उनके आचरित मार्गमें विचरण करते हुए मोहित होते हैं। हे जाजली! जीवोंको अभय दान सब दानसे उत्तम है; यह मैं तुम्हारे समीप सत्य ही कहता हूं; इसलिये आप इस विषयमें श्रद्धा करिये। सब कार्य्य कर्म्म स्वर्गफल साधनके हेतु कभी सुभग होते, कभी स्वर्गफल भोगान्तर पतन आदिके निमित्त दुर्भग हुआ करते हैं; इसलिये कार्य्य कर्म्मोंकी क्षयिष्णुता देखकर सज्जन लोग सदा उसकी निन्दा किया करते हैं। हे जाजली! स्थूल धर्म्म यज्ञ आदिसे सूक्ष्म अभयदान धर्म्मका अनुष्ठान करनेसे फलहीन नहीं होता, ब्रह्मप्राप्ति और स्वर्गलाभके लिये वेदमें शम दम आदिके साधन और यज्ञ आदि धर्म्म विहित हुए हैं। अभय दान धर्म्म अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे वह पूर्ण रीतिसे जाना नहीं जाता; वेदके बीच किसी स्थलमें वैधहिंसाकी विधि है, कहीं पर अहिंसाकी विधि बलवती हुई है; इससे वैदिक धर्म्म अत्यन्त ही अन्तर्गूढ़ है। सब आचार जाननेके लिये उद्यत होने पर भी उसके बीच अनेक प्रकारके विभिन्न व्यवहार मालूम हुआ करते हैं। जिन सब बैलोंको वृषण-काटे जाते हैं, और नासिकामें छेद किया जाता है। वे बहुत सा बोझा ढोनेमें समर्थ हुआ करते हैं; मनुष्य उनका बन्धन और दमन करते हैं। जो जीवोंको मार कर भक्षण करते हैं, उनकी निन्दा क्यों नहीं करते; मनुष्य लोग मनुष्योंको दासत्व शृङ्खलमें बांध रखते हैं। दूसरी जातकी बात तो दूर रहे, वे लोग स्वजातिके लोगोंको रात दिन बध, बन्धन और निरोध करके दुःख भोग कराते हैं; इसके अतिरिक्त अपने बध, बन्धनसे जो दुःख होता है, उस विषयमें भी वे लोग अनभिज्ञ नहीं हैं; पञ्चइन्द्रियुक्त जीवोंमें सब देवता ही निवास किया करते हैं। सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, ब्रह्मा, प्राण, ऋतु और यम, ये सब देवता जिस जीवदेहमें निवास करते हैं, उन जीवोंके बेचनेमें जब कोई फल नहीं है, तब मृतजीवोंके विषयमें विचारकी क्या आवश्यकता है। बकरे, अग्नि; भेड़े, घोड़े, जल, पृथ्वी, गौ, बछड़े और सोमरस

बेचनेसे मनुष्य सिद्ध नहीं होता। हे ब्रह्मन्! इसलिये तेल, घृत, मधु और औषधि बेचनेकी वार्त्ता कुछ कार्य्यकरी नहीं है। मनुष्य लोग दंश मच्छरोंसे रहित स्थानमें सहजमें ही सम्वर्द्धित पशुओंको उनकी माताके प्रिय जानके भी अनेक भांतिसे आक्रमण करके बहुतसे कीचड़युक्त देश तथा मशकोंसे परिपूरित स्थानमें स्थापित करते हैं, दूसरे धूर्त्त लोग वाहनोंके जरिये पीड़ित होकर अवसन्न होते हैं; मुझे बोध होता है, ऐसे पशु पीड़न कर्म्मकी अपेक्षा भ्रूणहत्या अधिक पापयुक्त नहीं है। जो लोग कृषिकर्म्मको उत्तम समझते हैं, मैं उनकी भी प्रशंसा नहीं करता; क्यों कि कृषि कर्म्म भी अत्यन्त दारुण है। हे जाजली! लोहमुख हल भूमि और भूमिमें रहनेवाले सर्प आदि प्राणियोंको नष्ट करता है, और हलमें जुते हुए वृषभोंकी ओर देखो वे कितना क्लेश सहा करते हैं। गऊ अवध्य हैं, इसहीसे उनका नाम अघ्नी है; इसलिये कौन पुरुष उन्हें मारनेमें समर्थ हुआ करता है। जो पुरुष वृषभ अथवा गऊको हिंसा करता है वह बहुत ही अमङ्गल किया करता है। जितेन्द्रिय ऋषियोंने नहुषके समीप यह विषय कहा था। उन्होंने कहा था, गऊ मातृस्वरूप और वृषभ प्रजापति स्वरूप है; तुमने उनका वध किया है। हे नहुष! इससे तुमने बहुत ही अकार्य्य किया है, तुम्हारे निमित्त हम सब कोई व्यथित हुए हैं। हे जाजली! जैसे इन्द्रका ब्रह्महत्याका पाप स्त्रियोंमें रज रूपसे निक्षिप्त हुआ था, वैसेही उन महाभाग ऋषियोंने नहुषके किये हुए गो-वृषभ हत्याके पापको सब प्राणियोंके बीच एक सौ एक रोग रूपसे निक्षेप किया। ब्रह्महत्या और गोहत्याका पाप समान है, इसीसे लोग नहुषको भ्रूणहत्या करनेवाला कहा करते हैं,—इससे हम लोग उसका होम न करेंगे। उन समस्त तत्वार्थदर्शी महानुभाव जितेन्द्रिय शान्त महर्षियोंने नहुषके विषयमें ऐसा कहकर तथा ध्यानपूर्व्वक उसे गोहत्या करनेमें प्रवृत्त न देखकर उसके किये हुए पापोंको प्रजासमूहमें रोगरूपसे संक्रामित किया था। हे जाजली! इस लोकमें ऐसा घोर अकल्याणकर आचारके प्रचलित रहनेपर भी अर्थात् मधुपर्कमें पशुवध आदि प्रथित रहनेपर भी तुम निपुण भावसे उसे समझनेमें समर्थ नहीं होते हो। कारणके अनुसार धर्म्माचरण करे, जिससे जीवोंको भय न हो, उसे ही धर्म्म जाने; गतानुगतिक होके लोक व्यवहार न करे। हे जाजली! सुनो जो लोग मुझपर प्रहार करें, अथवा जो प्रशंसा करें, वे दोनों ही मेरे पक्षमें समान हैं; मुझे हर्ष-विषाद कुछ भी नहीं है। मनीषी लोग इस ही प्रकार धर्म्मकी प्रशंसा किया करते हैं, यति लोग भी युक्तिपूरित उक्त धर्म्मकी सेवा किया करते हैं, धर्म्मशील मनुष्य सदा निपुण नेत्रसे उक्त धर्म्मको अवलोकन करते हैं।

२६१ अध्याय समाप्त।

जाजली मुनि बोले, तुमने तुला धारण करके यह धर्म्म प्रवर्त्तन किया है, इससे जीवोंके स्वर्गद्वार और जीविकाका अवरोध होता है। कृषिसे अन्न उत्पन्न होता है, तुम भी उसहीसे जीवन धारण किया करते हो; पशु हिंसा न करनेसे यज्ञ पूर्ण नहीं होता, तुम उसही यज्ञकी निन्दा करके नास्तिकता प्रकाशित करते हो। लोग प्रवृत्ति मूलक धर्म्मको परित्याग करके कदाचित् जीवन धारण करनेमें समर्थ नहीं होते।

तुलाधार बोला, हे द्विज जाजली! मैं निज वृत्तिका विषय कहता हूं, मैं नास्तिक नहीं हूं और यज्ञकी भी निन्दा नहीं की है, यज्ञवित् पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं; मैं ब्राह्मण यज्ञको नमस्कार करता हूं। जो सब ब्राह्मण यज्ञ प्रक-

रण जानते हैं, उन्होंने योगरूप निज यज्ञ परित्याग करके इस समय हिंसामय क्षत्रिय यज्ञ अवलम्बन किया है। हे ब्रह्मन्! वित्तपरायण लोभी आस्तिक लोगोंने वेद वा ऋषियोंको न जानके सत्यकी भांति भासमान मिथ्याके प्रवर्त्तन करनेसे "कारण इस यज्ञमें यह दक्षिणा दान करनी योग्य है," इस ही प्रकार यज्ञका प्रशस्तता साधन की है। हे जाजलो! इसहो निमित्त यजमानके साध्य सत्वमें भी यथायोग्य दक्षिणा दान न करनेसे चोरी और अकल्याणकर विपरीत कार्य्योंकी उत्पत्ति हुई है। नमस्कार स्वरूप हवि, स्व-शाखोक्त वेदपाठ और औषध स्वरूप सुकृतसे प्राप्त हुआ जो हव्य है, उसहोके जरिये देवता लोग प्रसन्न हुआ करते हैं, शास्त्र निदर्शनके अनुसार देवताओंकी पूजा हुआ करती है। कामनावान् मनुष्योंके इष्टापूर्त्तसे त्रिगुण सन्तानोंकी उत्पत्ति होती है। यजमानके लोभी होनेसे उसकी सन्तान भी लोभी होती है; यजमानके रागद्वेषसे रहित होनेसे उसकी सन्तान भी वैसीही हुआ करती है। यजमान अपनेको जैसा समझता है, सन्तान भी वैसीही होती है। आकाशसे निर्म्मल जल बरसनेकी भांति यज्ञसे ही प्रजा समूहकी उत्पत्ति हुआ करती है। हे ब्रह्मन्! अग्निमें डाली हुई आहुति सूर्य्यमण्डलमें पहुंचती है, सूर्य्यसे वृष्टि उत्पन्न होती है, वर्षासे अन्न उत्पन्न हुआ करता है, और अन्नसे ही प्रजासमूहकी उत्पत्ति होती है। यज्ञनिष्ठ मनुष्योंने फलानुसन्धान न करके यज्ञसे ही सब काम्य वस्तुएं पायी हैं। उस समय यज्ञके प्रभावसे पृथ्वीमें बिना जोते ही शस्य उत्पन्न होते और वृक्षोंमें अनायास ही फल लगते थे; इसहीसे लोग कृषिकार्य्यके निमित्त भूमिमें रहनेवाले सर्प आदि प्राणियोंकी हिंसामें लिप्त नहीं होते थे। तिसके अनन्तर मनुष्य यज्ञ आदि कर्म्मोंके फल, कर्त्ताकी नहीं देखते थे। जो लोग "यज्ञ करनेसे फल है, वा नहीं"—इसही भांति सन्देहयुक्त होकर किसी प्रकारका यज्ञ करते हैं, वे लोग असाधु, दम्भी, धन लोलुप और लोभी कहके विख्यात होते हैं। हे द्विजवर! जो पुरुष कुतर्कसे वेदोंका अप्रमाण सिद्ध करता है, वह उसही अशुभ कर्म्मसे पापाचारियोंके लोकमें गमन किया करता है, और उसेही इस लोकमें पापात्मा वा अत्यन्त अकृतप्रज्ञ कहा जाता है, वैसे पुरुषकी कभी मुक्ति नहीं होती। नित्य कर्म्मोंको अवश्य करना चाहिये, उनके न करनेसे भय होता है, इसे जो लोग जानते हैं, वेही ब्रह्मनिष्ठ हैं। इस लोकमें जो पुरुष अपनेमें वयोवर्णका अध्यास करके कर्त्तृत्व मालूम नहीं करते वेही ब्राह्मण हैं; अर्थात् कर्त्तृत्वभिमान और फलाभिलाष परित्याग करके कर्म्माङ्गोंमें ब्रह्मदृष्टि करते हुए जो लोग अशन पान आदिकी भांति कर्म्म किया करते हैं, उन्हें ही ब्रह्मनिष्ठ कहा जाता है। ऐसे ब्राह्मणोंके कर्म्म द्विगुण होने और अपवित्र कुत्ते, शूकर आदि पशुओंके जरिये विघ्नित होनेपर भी श्रेष्ठ रूपसे परिगणित हुआ करते हैं, यह श्रुतिमें वर्णित है; परन्तु मेरा यह कर्म्म इस विघ्नसे नष्ट हुआ है, ऐसा ज्ञान होनेपर उसके लिये प्रायश्चित्त करना होगा, यह भी वेदमें वर्णित है। जो सब पुरुष सत्य कहने और इन्द्रिय संयमकोही यज्ञ समझते हैं, परम पुरुषार्थ प्राप्त करनेमें जिन्हें लोभ होरहा है; वित्त वा विषयोंसे जिनकी तृप्ति हुई है और जो दूसरे दिनके लिये अर्थसंग्रह नहीं करते, वेही अमत्सरी हुआ करते हैं। जो सब योगनिष्ठ पुरुष क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके तत्वको जानते तथा प्रणव अध्ययन करते हैं, वे दूसरोंको सन्तुष्ट किया करते हैं। सब देवता और समस्त वेदस्वरूप प्रणव ब्रह्मवित पुरुषमें प्रतिष्ठित होरहे हैं। हे जाजलो! उसही ब्रह्मवित् पुरुषके तृप्त होनेसे आदित्य आदि देवता तृप्त और सन्तुष्ट होते हैं। जो सब रसोंसे तृप्त

हुए हैं, वे जैसे कोई दूसरे रसान्तरका अभिनन्दन नहीं करता, वैसेही प्रज्ञान तृप्ति पुरुषोंको अनायास ही नित्यतृप्ति हुआ करती है।

धर्म्महो जिनका एक मात्र अवलम्ब है, धर्म्मसे ही जो लोग सुखो हुआ करते हैं, उन्होंने ही समस्त कार्य्याकार्य्योंके निश्चय किये हैं, और कर्म्मके जरिये जिनका अन्तःकरण शुद्ध हुआ है वह प्राज्ञ पुरुष हमारे स्वरूपसे बुद्धिके बीच चिदाभासमय पुरुषसे बढ़के और कोई भी नहीं है,—इसे ही अवलोकन करते हैं। जो सब ज्ञान विज्ञानसे युक्त सात्विक पुरुष संसारके पार जानेकी अभिलाष करते हैं, वे लोग जिस स्थानमें जानेसे शोक नहीं करना होता च्युत नहीं होना पड़ता, व्यथित नहीं होना पड़ता, उस ही पुण्याभिजन नाम अत्यन्त पुण्यप्रद पवित्र ब्रह्मलोक पाते हैं। वे स्वर्गकी कामना नहीं करते, धनसाध्य कर्म्मोंसे परब्रह्मकी पूजा करनेके अभिलाषी नहीं होते, केवल साधु-मार्ग अर्थात् योगमें निवास करते हुए अहिंसाके जरिये ईश्वरकी आराधना किया करते हैं। वे लोग वनस्पति, फलमूलोंको हवनीय रूपसे जानते हैं, धनार्थी ऋत्विक् वेसे निर्द्धन यजमानोंका याजन नहीं करते; उक्त द्विजातियोंके सब कर्म्म समाप्त होनेपर भी वे लोग प्रजासमूहके विषयमें अनुग्रहको अभिलाष करके अपनेको हो अर्थ कल्पना करते हुए मानसयज्ञ पूर्ण किया करते हैं। लोभी ऋत्विक तब वैसे निर्द्धन पुरुषोंका याजन नहीं करते, तब अवश्यही वे लोग मोक्षकी इच्छासे रहित पुरुषोंका ही याजन किया करते हैं। साधु लोग स्वधर्म्माचरणके जरिये दूसरोंका उपकार करते हैं, वे लोग समबुद्धिके कारण धर्म्मफलकी कामना नहीं करते। हे जाजली! इस ही लिये मैं सर्व्वत्र समबुद्धि होरहा हूं, अर्थात् सत् और असत् वृत्तिकी विभिन्नता निबन्धनसे मैं सदाचरणका ही अनुसरण किया करता हूं। हे महामुनि! कर्म्मठ वा उपासक ब्राह्मण लोग इस लोकमें सदा जो सब पुनरावृत्तिप्रद मार्ग प्रदर्शक और अपुनरावृत्ति प्रदमार्ग पदर्शक यज्ञ याजन करते हैं वे उस ही देवयान पथके जरिये पितृलोक और देवलोकमें गमन किया करते हैं। हे जाजली! देवयान् पथसे गमन करनेपर भी कर्म्मठ पुरुषोंका पुनरागमन हुआ करता है, और मनको निग्रह करनेवाले उपासकोंको पुनरावृत्ति नहीं होती, अर्थात् दिव्य पथसे गमन करनेपर भी दोनोंके सङ्कल्पभेद निबन्धनसे कर्म्मठ ब्राह्मणोंकी आवृत्ति और उपासकोंको अनावृत्ति हुआ करती है; इसलिये कर्म्ममें रत कर्म्मठ ब्राह्मणों और मनको निरोध करनेवाले उपासक ब्राह्मणोंमें बहुत हो विलक्षणता है। सत्य सङ्कल्प उपासकोंकी मनकी सङ्कल्पसिद्धिके जरिये वृषभ स्वयं जुतके हल खींचते हैं और गौवें दूध दोहन किया करती हैं; उनके मानसिक यज्ञ सङ्कल्पसे ही सिद्ध होते हैं; वे लोग सङ्कल्प सिद्ध होनेसे यूप-दक्षिणा आदि यज्ञके द्रव्योंको मनसे ही उत्पन्न किया करते हैं। जिन्होंने इसही प्रकार योगाभ्यासके जरिये चित्तशोधन किया है, वे मधुपर्कमें गो हिंसा कर सकते हैं। हे ब्रह्मन्! जो लोग उस प्रकार विशुद्धचित्तवाले नहीं हैं, वे लोग पशुहिंसा करनेसे अवश्यही प्रत्यवायभागी होंगे, इसलिये उनके लिये औषधियोंसे ही यज्ञसाधन विहित हुआ करता है। त्यागका ऐसा माहात्म्य होनेसे ही मैंने त्यागका पुरस्कार करके तुम्हारे समीप वैसा वचन कहा है। जिसे आशा और आरम्भ नहीं है, वे किसीको नमस्कार वा प्रशंसा नहीं करते, जो क्षीण नहीं हैं, परन्तु जिनके सब कर्म्म क्षीण हुए हैं, देवता लोग उन्हें ब्राह्मण जानते हैं। जो पुरुष वेद श्रवण, देवजप्रन ब्राह्मणोंको दान नहीं करता और स्त्रियोंकी वृत्ति लाभकी इच्छा किया करता है, वह असुर स्वभाववाला मनुष्य देव-

मार्ग वा पितर मार्ग किसी पथमें भी गमन करनेमें समर्थ नहीं होता। आशाहीनता आदि पूर्व्वोक्त वाक्यको देवताकी भांति सेवनीय समझनेसे यथा विधि यज्ञस्वरूप परमात्माको प्राप्त किया जाता है।

जाजली मुनि बोले, हे वणिक्! मैंने आत्मयाजी योगियोंके तत्वको नहीं सुना है, इस ही निमित्त तुम्हारे निकट यह दुर्ज्ञेय विषय पूछता हूं। पहलेके महर्षियोंने इस प्रकार योगधर्म्मकी आलोचना नहीं की है, इससे लोकके बीच यह रहस्य धर्म्म प्रवर्त्तित नहीं हुआ है। हे महाप्राज्ञ वणिक्! यद्यपि आत्मतीर्थ अर्थात् आत्मस्वरूप यज्ञभूमिमें पशुतुल्य मन्दबुद्धि मनुष्य मानसिक यज्ञजनित सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होते, तब वे लोग किस कर्म्मके जरिये सुखलाभके अधिकारी होंगे उसे तुम मेरे समीप वर्णन करो। मैं तुमपर अत्यन्त श्रद्धा करता हूं।

तुलाधार बोले, जिन सब दम्भिकोंके यज्ञ श्रद्धाहीनताके कारण अयज्ञरूपसे प्रतिपन्न हुआ करते हैं, वे लोग आन्तरिक वा बाह्य कोई यज्ञ करनेके योग्य नहीं हैं। श्रद्धावान् मनुष्योंकी एक ही गऊके जरिये बाह्यक्रतु सिद्ध हुआ करता है; क्यों कि घृत, दूध, दही, विशेष करके पूर्णाहुति, असमर्थके विषयमें गोपूंछसे पितृतर्पणके निमित्त पूंछके रोम, अभिषेक आदि निबन्धनमें गोश्टङ्ग और खुररज, इन सात प्रकारकी वस्तुओंसे गोयज्ञके कार्य्य सिद्ध हुआ करते हैं। इस पशुहिंसारहित घृतादिके बीच यज्ञविधिसे घृत आदि वस्तु देव उद्देश्यसे बिनियोगके लिये मानसिक श्रद्धाको पत्नीरूपसे कल्पना करनी होती है; क्यों कि अपत्निक पुरुषका वैदिक यज्ञ सिद्ध नहीं होता। यज्ञको अत्यन्त सेवनीय-देवत समझनेसे यज्ञरूपी विष्णुकी यथावत् प्राप्त किया जाता है। अपवित्र पशुओंसे पुरोडास ही पवित्ररूपसे वर्णित हुआ करता है। हे जाजली! जिससे आत्मसाधन होता है, वही यज्ञभूमि है, आत्माही सरस्वती आदि समस्त नदी और पवित्र शैलस्वरूप है; इसलिये आत्माको न जानके अन्य तीर्थोंका अतिथि मत बनो। हे जाजली! इस लोकमें जो लोग इस ही भांति अहिंसामय धर्म्माचरण करते हैं और अर्थित्व वा समर्थित्व तारतम्यके अनुसार धर्म्मानुष्ठान किया करते हैं, वे शुभलोकोंको पाते हैं।

भीष्म बोले, तुलाधार इस ही प्रकार युक्तिसङ्गत वा सदा साधुओंसे सेवित इस समस्त धर्म्मकी प्रशंसा किया करता है।

२६२ अध्याय समाप्त।

तुलाधार बोला, साधु वा असाधुओंसे अवलम्बित इस पथको उत्तम रीतिसे मालूम करो, ऐसा होनेसे ही उसका जैसा फल है उसे जान सकोगे। ये सब अनेक जातीय पक्षी इस स्थानमें विचर रहे हैं तुम्हारे उत्तम अङ्गसे जो उत्पन्न हुए थे, वे सब और बाज तथा दूसरी जातिके पक्षी भी इनके बीच विद्यमान हैं, इन सबोंने अपने घोसलोंमें प्रवेश करनेके निमित्त हस्तपदादि संकुचित किये हैं। हे ब्रह्मन्! इस लिये इस समय तुम इन्हें आवाहन करके देखो। यह देखिये, पक्षीवृन्द तुमसे समादृत होके तुम्हारा सम्मान कर रहे हैं। हे जाजली! पुत्रोंको आह्वान करो, तुम इनके पिता हुए हो, इसमें सन्देह नहीं है।

भीष्म बोले, अनन्तर उस जाजली मुनिके बुलाने पर पक्षियोंने अहिंसामय धर्म्म वचनके अनुसार प्रत्युत्तर दिया। हे ब्रह्मन्! हिंसाके जरिये किया हुआ कर्म्म इसलोक और परलोकमें श्रद्धा नष्ट करता है, श्रद्धा नष्ट होनेपर श्रद्धाहीन मनुष्यको बिनष्ट किया करता है, लाभ हानिमें समदर्शी, श्रद्धावान्, शान्त, दान्त पुरुष "यज्ञ करनायोग्य है"—ऐसे ही अभिसन्धि करके अर्थात्

कर्त्तृत्वाभिमान अथवा फलाभिसन्धि न करके यदि यज्ञका अनुष्ठान करें, तो उनके अनुष्ठित यज्ञसे कदापि अनिष्ट फलकी उत्पत्ति न होवे। हे द्विज! ब्रह्मविषयणी श्रद्धाको सूर्य्यके समान प्रकाशमान सत्वकी पुत्री अर्थात् सात्विकी कहा जाता है; वह श्रद्धा पालन करनी है, इसहीसे सावित्री और शुद्ध जन्म प्रदान करती है, इसीसे प्रसवित्री रूपसे कही जाती है। वाक्य, मन वा श्रद्धाके उस बहिरङ्ग अर्थात् जप और ध्यानजनित धर्म्मसे श्रद्धा ही सब प्रकार श्रेष्ठ है। हे भारत! मन्त्र आदि उच्चारण करनेके समय स्वर-वर्ण विपर्य्ययके जरिये जो वाक्य नष्ट होता है, और व्यग्र चित्तसे जो देवताओंके ध्यान आदि विनष्ट होते हैं, श्रद्धा उसका समाधान करती है; परन्तु वचन, मन और कर्म्म, श्रद्धाहीन पुरुषको परित्राण करनेमें समर्थ नहीं होते। पुराण जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें ब्रह्माकी कही हुई यह गाथा कहा करते हैं, कि पवित्र और अश्रद्धावान् तथा श्रद्धावान् और अपवित्र पुरुषके वित्तको देवता लोग यज्ञ कर्म्ममें समानही समझते हैं। श्रोत्रिय होके भी जो पुरुष कृपणता व्यवहार करता है, और धान्य बेचके भी जो वदान्य होता है, देवताओंने विचार करके उन दोनोंके अन्नको समान भावसे कल्पना किया था। प्रजापतिने उस ही लिये उनसे कहा था, हे देवतावृन्द! तुम सबने जो कुछ कहा है, वह अत्यन्त विषम हुआ है। वदान्य पुरुषके श्रद्धायुक्त अन्न भक्षणीय हैं, अश्रद्धासे सिद्ध हुए अन्न भक्षणीय नहीं हैं, और कृपण तथा वृद्धि जिवीका अन्न न खाना चाहिये। केवल अश्रद्धावान् मनुष्य देवताओंको हवि दान करनेके योग्य नहीं हैं, उनका भी अन्न अभक्षणीय है; ऐसा धर्म्म जाननेवाले पुरुष कहा करते हैं। अश्रद्धा ही परम पाप स्वरूप है, और श्रद्धा ही पापको दूर किया करती है। जैसे सांप अपनी पुरानी केचुली परित्याग करता है, श्रद्धावान् मनुष्य उस ही प्रकार पाप परित्याग किया करते हैं। श्रद्धाके सहित निवृत्ति मार्गको अवलम्बन करना ही सब पवित्रताके बीच श्रेष्ठ है, राग आदि दोषोंसे जो लोग निवृत्त हुए हैं, वेही श्रद्धावान् और पवित्र हैं, उन्हें तपस्या, शीलता और धर्म्म अभ्याससे क्या प्रयोजन है। ये श्रद्धामय पुरुष सात्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन प्रकारकी श्रद्धाके बीच जैसी श्रद्धासे युक्त होते हैं, तब वह उस ही नामसे अर्थात् सात्विक, राजसिक और तामस नामसे प्रसिद्ध हुआ करते हैं। धर्म्मार्थदर्शी साधुओंने इसही प्रकार धर्म्म वर्णन किया है; धर्म्मदर्शन नाम मुनिसे पूछकर उससेही हम लोगोंने इस प्रकार धर्म्मका लक्षण जाना है। हे महाप्राज्ञ जाजले! तुम श्रद्धा करनेसे परम पदार्थ पाओगे; जो वेदवाक्यमें श्रद्धावान् और वेदार्थ अनुष्ठान करनेमें श्रद्धा किया करते हैं, वेही धर्म्मात्मा हैं। हे जाजले! जो लोग कर्त्तव्य मार्गमें निवास करते हैं, वेही गौरवयुक्त हैं।

भीष्म बोले, अनन्तर महाप्राज्ञ तुलाधार और जाजली मुनि थोड़े ही समयमें सुर लोकमें जाके निज कर्म्मके उपार्ज्जित अपने अपने स्थानको पाके सुख पूर्व्वक विहार करने लगे। तुलाधारके जरिये इसही प्रकार अनेक तरहके विषय कहे गये थे; तुलाधारने पूर्णरीतिसे सनातन धर्म्म जाना था, और जाजली मुनिके समीप कहा था।

हे कौन्तेय! द्विजश्रेष्ठ जाजलीने उस विख्यात् वीर्य्य तुलाधारका सब वचन सुनके शान्तिमार्ग अवलम्बन किया था। तुलाधारने यथा विहित दृष्टान्तके जरिये मौनव्रती विप्रवर जाजलीके निकट इस ही प्रकार अनेक भांतिके विषय कहा था; तुम अब फिर किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो।

२६३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, पुरुष-पशुओंके विषयमें कृपा करनेके निमित्त महा राजा विचख्नु ने जो कुछ पहले कहा था, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। उक्त राजा गोमेध यज्ञमें वृषभोंके शरीरको कटे हुए देखने और गौवोंका अत्यन्त विलाप सुननेसे कातर होके यज्ञभूमिको देखकर लोकके बीच गौवोंको "स्वस्ति होवे"—यही वाक्य निश्चय किया था। गोहिंसा आरम्भ होनेपर उक्त राजाके जरिये यही आशीर्व्वचन कल्पित हुआ था। जिनकी मर्य्यादा विचलित हुई है वैसे विमूढ़ शरीर ही आत्मा है, वा देहके अतिरिक्त कोई दूसरा आत्मा है ऐसे संशययुक्त चित्तवाले नास्तिक पुरुषोंने यज्ञादिके जरिये बड़ाई पानेको अभिलाष करते हुए पशुहिंसाको प्रशंसा की है; परन्तु सब अर्थ और वेदोंके तत्वको जाननेवाले धर्म्मात्मा मनुने सब कर्म्मोंमें ही अहिंसाको प्रशंसा की है। इच्छानुसारी मनुष्य यज्ञके अतिरिक्त स्थलमें भी पशुहिंसा किया करते हैं, इसलिये प्रमाणके जरिये हिंसा और अहिंसा दोनोंके बलाबलको जान कर सूक्ष्म धर्म्म अवलम्बन करे, सब प्राणियोंके विषयमें हिंसा न करना ही धर्म्मावर्म्मोंमें उत्तम है। गांवके समीप निवास करते हुए संश्रितव्रती होकर वेदविहित चतुर्म्मास याजियोंको अक्षयपुण्य होता है, इत्यादि फलश्रुति परित्याग करके आचारबुद्धिके जरिये पुरुष गृहस्थाचार रहित होवे, सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करे, पुरुषोंके विषयमें यही कल्याणकारी है, ऐसा ही समझके निष्कर्म्म अवलम्बन करना चाहिये, और जो फलकी इच्छा करके कर्म्म करनेमें प्रवृत्त होते हैं, वे अत्यन्त क्षुद्र मनुष्य हैं।

यदि मनुष्य यज्ञवृक्ष-यूपोंको उद्देश्य करके वृथा मांस भक्षण करें, तो वह कुछ भी प्रशंसनीय धर्म्म नहीं है। यज्ञ करनेवाले मनुष्य कभी वृथा मांस भक्षण नहीं करते, मद्य, मांस, मछली, मधु, अरक, कृश रोदन अर्थात् तिल मिले हुए चावलोंका भक्षण करना धूर्त्तोंके जरिये प्रवर्त्तित हुआ है, यह वेदके बीच वर्णित नहीं है। अभिमान, मोह और लोभके वशमें होकर मनुष्योंको मद्य सेवनमें इच्छा हुआ करती है। ब्राह्मण लोग सब यज्ञोंमें सर्व्वव्यापी आत्माको ही जानके तृप्त होते हैं; दूध और फूलोंसे उसको पूजा हुआ करती है, उसमें मधु मांस आदिका प्रयोजन नहीं है। जो सब यज्ञीय वृक्ष वेदमें वर्णित हैं, और जो कुछ करने योग्य यथा जो कुछ शुद्ध आचारके सहारे संस्कारयुक्त हुआ करता है, महत् सत्व और शुद्ध अन्तःकरणके सहित वह सभी देवाई रूपसे विहित हुआ है।

युधिष्ठिर बोले, शरीर और समस्त आपदा आपसमें विवाद किया करती हैं, अर्थात् आपदा शरीरको अवसन्न करती हैं, और शरीर भी आपदको नष्ट करनेको इच्छा किया करता है; इससे अत्यन्त हिंसारहित पुरुषको शरीरयात्राका निर्व्वाह किस प्रकार सिद्ध होसकताहै?

भीष्म बोले, जिससे शरीर ग्लानि युक्त वा मृत्यु के वशीभूत न हो, वैसे ही कार्य्योंमें प्रवृत्त होना चाहिये, समर्थ होनेपर धर्म्माचरण करे, अर्थात् शरीरके अनुकूल धर्म्म कार्य्य करे, धर्म्मके अनुरोधसे शरीर नष्ट न करे।

२६४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आप हमारे परम गुरु हैं, इससे हिंसामय कार्य्यदुष्कर होनेसे भी गुरु वचनके अनुसार यदि उसे अवश्य करना पड़े, तो विलम्ब वा शीघ्रताके सहित किस प्रकारसे उसको परीक्षा करनी होगी, उसे ही कहिये।

भीष्म बोले, पहिले समयमें अङ्गिरा-वंशमें चिरकारीके किये हुए कर्म्मके जरिये जो घटना हुई थी, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही

पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। हे चिरकारिन्! तुम्हारा ही मङ्गल हो, हे चिरकारिन्! तुम्हारा ही कल्याण हो,—मेधावी चिरकारी कभी किसी कर्म्ममें अपराधी नहीं होते थे। महाप्राज्ञ चिरकारी गौतमके पुत्र थे, वह बहुत समयतक बिचार करके कार्य्य करते थे, बहुत समयतक सब विषयोंको सोचते थे, बहुत देरतक जागते रहते थे और बहुत देर पर्य्यन्त सोते रहते थे तथा विलम्ब करके कार्य्यमें प्रवृत्त होते थे, इस निमित्त उन्हें चिरकारी कहा जाता है। थोड़ी बुद्धिवाले और अदूरदर्शी लोग उन्हें आलसी और मन्दबुद्धि कहते थे।

किसी समय गौतमने अपनी स्त्री अहल्याका कुछ व्यभिचार देखकर कोपित होके दूसरी सन्तानोंको अतिक्रम करते हुए चिरकारीसे कहा था, हे चिरकारी! तुम अपनी माताका बध करो। चिरकारी स्वभावसे ही बहुत देरके अनन्तर "वही करूंगा" ऐसा बचन कहके चिरकारिलके सबब बहुत देरतक बिचार करके सोचने लगा, कि पिताकी आज्ञा किस प्रकार प्रतिपालन न करूं; किस प्रकारसे ही मातृहत्या करूं। और दुष्टोंकी भांति किस प्रकार इस धर्म्म-सङ्कटमें निमग्न होऊं। पिताकी आज्ञा माननी परम धर्म्म है, तथा माताकी रक्षा करना भी स्वधर्म्म है, और पुत्रत्व भी एकबारही स्वतन्त्र नहीं है; इन दोनोंके बीच मुझे कौन विषय पीड़ित नहीं करता है। स्त्रीहत्या विशेष करके माताका बध करनेसे कौन पुरुष सुखी होसकता है और पिताकी अवज्ञा करके किस पुरुषको प्रतिष्ठा प्राप्त हुआ करती है। पिताकी अवज्ञा न करनी ही उचित है और माताकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये, इन दोनों धर्म्मोंके परस्पर विरुद्ध होनेपर भी मुझे दोनों कार्य्यका अनुष्ठान करना उचित मालूम होता है, इसलिये मैं इन दोनों धर्म्मोंको किस प्रकार अतिक्रम न करूं। पिता अपने सद्‌वृत्त चरित्रके नाम और वंशकी रक्षाके लिये जायाके जरिये जन्म लेकर आत्माको धारण करता है। मैं माता पिता दोनोंसे ही उत्पन्न हुआ हूं दोनोंको ही अपनी उत्पत्तिका कारण जानता हूं; ऐसा ज्ञान मुझे क्यों न होगा। जातकर्म्म संस्कारके समय पिता कहता है, कि 'प्रस्तर हो' अर्थात् पत्थरकी भांति अच्छेद्य हो 'तथा परशु हो' अर्थात् परशेकी भांति मेरे शत्रुओंके नाशक बनो। उपनयनके अनन्तर गुरुगृहसे लौटनेपर पिता पुत्रका मस्तक छूके "आत्मा ही पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ है," इत्यादि बचन कहा करता है, पिताके गौरव-निश्चयके विषयमें वही दृढ़ और पर्य्याप्त है। पिता प्रतिपालन और शिक्षा देनेसे परम धर्म्मस्वरूप है। पिता जैसी आज्ञा दे, वही धर्म्म है, यह वेदोंमें भली प्रकार निश्चित है; पुत्र ही पिताका प्रीतिपात्र है और पिता ही पुत्रका सर्व्वस्व है। शरीर आदि जो कुछ देय-पदार्थ हैं, उन्हें केवल पिता ही पुत्रको प्रदान किया करता है; इसलिये पिताकी आज्ञा अवश्य प्रतिपालन करनी चाहिये, कभी उसमें बिचार न करना चाहिये, जो पिताकी आज्ञा पालन करते हैं, वे पापोंसे छूटके पवित्र हुआ करते हैं। वस्त्रादि भोग्य-विषय अन्न प्रभृति भोज्य-पदार्थ, वेदाध्ययन, लौकिक शिक्षाके विषय तथा गर्भाधान सीमन्तोन्नयन आदि सब संस्कारोंके करनेसे पिता धर्म्मस्वरूप है, पिता ही स्वर्गरूपी है और पिता ही परम तपस्या स्वरूप है; पिताके प्रसन्न होनेपर सब देवता प्रसन्न हुआ करते हैं। पिता पुत्रसे जो कहे वही पुत्रके विषयमें आशीर्व्वाद बचन है; यदि पिता पुत्रका आदर करे, तो पुत्र सब पापोंसे छूट जाता है। किलयोंसे फूल और वृक्षोंसे फल गिरा करते हैं, परन्तु पिता दुःख पानेपर भी प्रीतिके बशमें

होकर सन्तानको परित्याग नहीं कर सकता। पुत्रके विषयमें पिताका जैसा गौरव है, उसका मैंने विचार कर लिया, पिता साधारण पदार्थ नहीं है ; जो हो, अब माताके विषयका विचार अवश्य करूं ।

मनुष्य शरीर धारण करनेसे मुझमें जो पाञ्चभौतिक समष्टि है, अग्निके प्रकट होनेके कारण अरणीकी भांति माता ही मेरे इस शरीरका हेतु है। माता ही मनुष्य शरीरके विषयमें अरणी-स्वरूप है, माता ही सब सुखोंको विधान करनेवाली है, माताके रहते सभी सनाथ और उसके विपर्य्यय होनेसे सभी अनाथ हुआ करते हैं। पुरुष श्रीहीन होके भी यदि "मा" कहके गृहमें प्रवेश करे, तो उसे शोक करना न पड़े और मातृमान् पुरुषको स्थविरता आकर्षण नहीं कर सकती। पुत्र पौत्रसे युक्त पुरुष भी यदि जननीका आश्रित होवे, तो वह एक सौ वर्षकी अवस्थाका होनेपर भी दिहायनकी भांति आचरण करता है। पुत्र समर्थ हो, वा असमर्थ होवे, दुबला हो वा हिष्टपुष्ट ही होवे, माताही उसे विधिपूर्व्वक पोषण किया करती है ; उस प्रकार पालन करनेमें दूसरा कोई भी समर्थ नहीं है। जब मनुष्योंकी मातृवियोग होता है तभी वह वृद्ध होता, तभी वह दुःखित होता है, उसही समय उसे सब जगत् सूना बोध होता है ; जननीके समान दुःख हरनेवाला कोई भी नहीं है, माताके समान आश्रय स्थान दूसरा कोई भी नहीं है, प्रसूतिके समान त्राण करनेवाली कोई नहीं है, माताके समान प्रियवादिनी और कोई नहीं है। जननी सन्तानको कुक्षिमें धारण करती है। इसहीसे उसका नाम धात्री है ; उससे जन्म होता है, इस ही कारण उसे जननी कहा जाता है ; उससे अङ्गोंकी पुष्टि होती है, इसहीसे उसे अम्बा कहा जाता है, और वह वीर पुरुष प्रसव करती है, इसीसे उसे वीरसू कहते हैं। माता शिशुकी सेवा करती है; इस ही लिये उसे शुश्रू कहा जाता है, माता ही अव्यवहित शरीर स्वरूप है, इसलिये जिसका मेद और मज्जारहित मस्तक सूखे हुए अलाबूकी भांति मार्गके बीच पतित नहीं हुआ है, वैसा कौन चैतन्य मनुष्य मातृहत्या करनेमें प्रवृत्त होसकता है। दम्पतीके प्राणसंश्लेष समयमें अर्थात् मैथुनकालमें जो अभिसन्धि की जाती हैं, अर्थात् हमारा पुत्र गौरवर्ण तथा सम्पूर्ण परमायुयुक्त होवे ; पिता-माता दोनोंकी ऐसी अभिलाषा होनेपर भी माताकी ही वैसी अभिलाषमें यथार्थ कर्त्तृत्व है। पुत्र जिस गोत्रमें जिसके औरससे उत्पन्न होता है, उसे माता ही जानती है। माता पुत्रको गर्भमें धारण करती है, इसहीसे उसके ऊपर उसकी प्रीति तथा स्नेह हुआ करता है ; इसलिये प्रत्युपकारके लिये माताके विषयमें भक्ति तथा स्नेह पुत्रको अवश्य करना चाहिये।

"धर्म्म, अर्थ और काम विषयमें व्यभिचार न करूंगा," स्वयं ऐसी प्रतिज्ञा कर पाणिग्रहण और सहधर्म्म आचरण करके यदि पुरुष परस्त्रीमें प्रवृत्त हो, तो वैसा पुरुष कभी आदरके योग्य नहीं है ; परन्तु मेरा पिता वैसा नहीं है ; इसलिये उसकी आज्ञा अवश्य प्रतिपालन करनी चाहिये। तब क्या पिताकी आज्ञासे मातृहत्यामें प्रवृत्त होऊंगा ? नहीं, वह भी किस प्रकार सम्भव होसकता है, पत्नीके भरण करनेसे पतिका नाम भर्त्ता है, और पालन करता है, इस ही निमित्त पति नाम हुआ है। जिसके भर्त्तृत्व और पतित्व धर्म्मकी निवृत्ति होती है, वह भर्त्ता नहीं है, और पति भी नहीं है ; इसलिये जिन्होंने पालनीय भार्य्याके प्राणनाशकी आज्ञा दी है, इस भर्त्तृत्व आदि गुणोंसे रहित उन्मत्त समान पिताका आज्ञासे माताकी हिंसा करनी कदापि न्याय नहीं है। यदि पुरुष प्रार्थयिता न हो, वा स्त्री कभी व्यभिचारिणी नहीं हो सकती ; इसलिये

व्यभिचार दोषमें स्त्री अपराधिनी नहीं है, पुरुष ही अत्यन्त महत् व्यभिचार दोषका आचरण करनेसे अपराधी हुआ करता है। भर्त्ता ही स्त्रियोंके लिये परम श्रेष्ठ और परम देवता स्वरूप है; इसलिये उसहीके वेषधारी इन्द्रको अवलोकन करने पर पुरुष न मालूम होनेसे निज पति जानके ही जब मेरी माताने इन्द्रको अङ्ग समर्पण किया है, तब उसका इसमें कुछ अपराध नहीं हो सकता; देवराज ही इस विषयमें सब तरहसे अपराधी हैं। स्त्रियां अल्प-बलवाली होनेसे सब कार्य्योंमें ही पुरुषोंके अधीन हैं; इसलिये उनके कुछ अपराध नहीं हो सकते। पुरुष सब विषयोंमें अपराधी है, क्यों कि जबर्दस्ती किये हुए व्यभिचार विषयमें स्त्रियोंका अपराध नहीं है; पुरुष ही उस विषयमें सब प्रकारसे दोषी हैं। मैथुन जनित तृप्तिके निमित्त किसी स्त्रीने इन्द्रके विषयमें जो वचन कहा था, देवराज उन्हीं सब वचनोंको व्यक्त रूपसे स्मरण करा देनेसे सब तरहसे निःसन्देह अपराधी हुआ है; इसलिये इन्द्रके अपराधसे मुझे मातृहत्या करनी योग्य नहीं है। जो हो, एक तो स्त्री, उस पर भी समधिक गौरवशालिनी माता अवध्य है, इसे पशुके समान मूर्खपुरुष भी विशेष रूपसे जानते हैं; इसलिये मैं किस प्रकार माताका जीवन नष्ट करूंगा। पण्डित लोग पिताको देवताओंका समवाय कहा करते हैं, अर्थात् पिताको सन्तुष्ट करनेसे स्वर्ग मिलता है और मर्त्य-तथा अमर्त्योंके समवाय स्नेहके कारण माताके निकटवर्त्ती हुआ करता है, अर्थात् माता इस लोकमें पालयित्री और अदृष्टके अनुसार परलोकमें परम सुख प्रदान किया करती है।

चिरकारीके चिरकारित्व निबन्धनसे इस ही प्रकार बहुत विचार करते हुए बहुत समय बीत गया। तिसके अनन्तर उसका पिता उसहीके सम्मुख आ पहुंचा। महाबुद्धिमान् मेधातिथि गौतम तपस्यामें समय बिताते थे, उस समय वह निज पत्नीका मरना अनुचित समझकर अत्यन्त सन्तापित होकर दुःखसे आंसू बहाने लगे, वह शास्त्रके पढ़ने और धीरजके प्रभावसे पश्चाताप करके बोले, तीनों लोकके ईश्वर इन्द्र अतिथि-व्रत अवलम्बन करके ब्राह्मणका रूप बनाकर मेरे आश्रमपर आये थे, मैं उन्हें वचनसे प्रसन्न करके स्वागत प्रश्नसे आदर करके यथा रीतिसे पाद्य अर्घ प्रदान किया और कहा, कि आज मेरे आश्रममें तुम्हारा आगमन होनेसे मैं सनाथ हुआ हूं। देवराज प्रसन्न होंगे, ऐसा समझके मैंने ये सब वचन कहे थे, इस विषयकी चिन्ता करनेसे मालूम होता है, यह अमङ्गल उपस्थित हुआ है, अर्थात् इन्द्रकी चपलतासे मेरी स्त्रीमें दोषस्पर्श होनेसे अहल्याका उसमें कुछ अपराध नहीं हुआ है। इसलिये इस विषयमें अहल्या, मैं और स्वर्गपथगामी इन्द्र, इन तीनोंके बीच कोई भी अपराधी नहीं है, धर्म्मसम्बन्धीय प्रमाद ही इस विषयमें अपराधी है। ऊर्द्ध्वरेता मुनि लोग कहते हैं, प्रमादसे ही ईर्षाजनित विपद उपस्थित होती है, मैं ईर्षासे आकर्षित होकर पापसागरमें डूबा हूं; सती सीमन्तिनी भरणीयभार्य्याने न जाननेसे ही पर पुरुषका संसर्ग किया, मैंने उसे मारनेकी आज्ञा दी है, इस समय कौन मुझे उस पापसे परित्राण करेगा। मैंने प्रमादके वशमें होकर उदारबुद्धि चिरकारीको मातृहत्या करनेकी आज्ञा दी है, आज यदि वह चिरकारी हो तो वही मुझे इस पापसे परित्राण करेगा। हे चिरकारिन्! तुम्हारा कल्याण होवे, हे चिरकारी! तुम्हारा मङ्गल हो, आज यदि तुम चिरकारी बनो, तभी तुमने यथार्थ चिरकारी नाम धारण किया है। आज तुम मुझे और अपनी माताको परित्राण करो; मैंने जो तपस्या उपार्ज्जनकी है उसकी रक्षा करो और आत्माको पापपुञ्जसे परित्राण करके

चिरकारी नामसे विख्यात् होजाओ। तुम्हारी असाधारण बुद्धिमत्तासे चिरकारित्व गुण स्वभावसिद्ध है, आज तुम्हारा वह गुण सुफल होवे, तुम चिरकारी होजाओ। हे चिरकारी! माताने तुम्हें प्राप्त करनेकी लालसासे बहुत समयतक आशा की थी, बहुत समय तक गर्भमें धारण किया था; इसलिये अब तुम अपने चिरकारित्व गुणको सुफल करो। हे चिरकारी! हम लोगोंका चिरसन्ताप देखके तुम मेरी आज्ञाको पालन करनेमें प्रवृत्त होकर भी बोध होता है, विलम्ब कर रहे हो।

हे राजन्! महर्षि गौतमने उस समय इस ही प्रकार अत्यन्त दुःखित होकर निकट आये हुए चिरकारी पुत्रको देखा, चिरकारी भी पिताको देखकर अत्यन्त दुःखित हुआ और शस्त्र त्यागके सिर झुकाकर पिताको प्रसन्न करनेकी इच्छा की। अनन्तर गौतम उसे सिर झुकाके पृथ्वीमें गिरते और पत्नीको लज्जासे पत्थरके समान देखकर अत्यन्त हर्षित हुए, परन्तु महात्मा गृहस्थ गौतमने निर्ज्जन जङ्गलके बीच उस पत्नी और समाहित पुत्रके सहित उस समय पृथक् भाव अवलम्बन नहीं किया। उनके "बध करो"—ऐसी आज्ञा देकर निज कर्म्म साधन करनेके लिये प्रवासमें चले जानेपर उनका पुत्र माताके निमित्त हाथमें शस्त्र लेकर भी विनीतभावसे खड़ा था, अनन्तर उन्होंने आश्रममें आके अपने दोनों चरणोंपर गिरे हुए पुत्रको देखकर यही समझा, कि चिरकारी भयसे शस्त्र ग्रहण करनेकी चपलताको रोकता है। अनन्तर पिताने बहुत समयतक प्रशंसा करके मस्तक सूंघकर दोनों भुजा पसारके पुत्रका आलिङ्गन किया और "चिरजीवी हो" ऐसा बचन कहके उसे आशीर्व्वाद दिया। प्रीति और हर्षसे युक्त होकर महाप्राज्ञ गौतम इस ही प्रकार पुत्रको अभिनन्दित करते हुए बच्चमाण रीतिसे कहने लगे। हे चिरकारी! तुम्हारा कल्याण होवे; तुम सदाके वास्ते चिरकारी बनो। हे सौम्य! सदाके वास्ते तुम्हारा चिरकारित्व हुआ, मैं कभी दुःखित न होऊंगा, मुनिसत्तम विद्वान् गौतमने धीरबुद्धिवाले चिरकारी लोगोंके गुणोंको वर्णन करके यह सब गाथा कही थी। सदा विचार करके लोगोंके संग मित्रताबन्धन करे, बहुत समयतक विचार करके किये हुए कार्य्यको परित्याग करे, बहुत समयतक सोचके मित्रता करनेसे वह चिरस्थायी हुआ करती है। राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पापकर्म्म, अप्रिय कार्य्य और कर्त्तव्यके अनुष्ठान विषयमें चिरकारी मनुष्य श्रेष्ठ होता है। सुहृत, बन्धु, सेवक और स्त्रियोंके अव्यक्त अपराधके विषयमें चिरकारी पुरुष उत्तम हुआ करता है। हे कुरुवंशवर्द्धन भारत! इस ही प्रकार गौतम पुत्रके चिरकारित्व निबन्धनसे वैसे कर्म्मके जरिये उस समय प्रसन्न हुए थे; इसलिये पुरुषको कार्य्यमात्रमें ही इस ही प्रकार विचार करके निश्चय करनेसे कभी परितापग्रस्त नहीं होना पड़ता, जो लोग सदा दोषको धारण किया करते हैं, चिरकाल ही कर्म्ममें नियमित रहते हैं, वे तनिक भी पश्चातापयुक्त कार्य्यमें लिप्त नहीं होते, सदा बृद्धोंकी उपासना करे, सदा उनके पश्चात् बैठकर उनका सत्कार करे, सदा धर्म्मकी सेवामें नियुक्त रहे और सदा धर्म्मकी खोज करे। सदा विद्वानोंका सङ्ग, शिष्ट पुरुषोंकी सेवा और आत्माको विनीत करनेसे सदाके लिये अनवज्ञता प्राप्त हुआ करती है, दूसरेके बहुत समयतक पूछनेपर धर्म्मयुक्त बचन कहे, ऐसा होनेसे सदाके लिये दुःखित नहीं होना पड़ेगा। महातपस्वी द्विजश्रेष्ठ गौतम उस आश्रममें कई वर्ष व्यतीत करके अन्तमें पुत्रके सहित स्वर्गमें गये।

२६५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे साधुप्रवर पितामह! राजा किस प्रकार प्रजाकी रक्षा करे, किस भांतिसे ही दण्डविधान रहित करके प्राणिहिंसासे निवृत्त रहे; उसे ही आपसे पूछता हूं, आप ऊपर कहे हुए विषयको मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, राजा सत्यवानके संग द्युमत्सेनके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्राचीन लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं। हमने सुना है, पिताकी आज्ञासे सत्यवानके जरिये दण्डार्ह पुरुष बधके लिए उपस्थित होने पर "दण्डनीय पुरुषोंके दण्ड न होनेका विषय पहले किसीने नहीं कहा है," सत्यवानने ऐसा ही कहा था। कभी अधर्म्म धर्म्म होता है और धर्म्म भी कभी अधर्म्म हुआ करता है; परन्तु प्राणिहिंसा करना धर्म्म है,—यह कभी सम्भव नहीं होसकता।

द्युमत्सेन बोले, हे सत्यवान! अहिंसा ही यदि धर्म्म हुआ, तो राजा डाकुओंके दमन करनेके लिये उनका बध न करनेसे वर्णसङ्कर आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, जबकि हिंसा न करनेसे धर्म्मकी रक्षा नहीं होती, तब केवल अहिंसाको ही किस प्रकार धर्म्म कहा जासकता है। और अधर्म्म प्रधान कलियुगमें "यह वस्तु मेरी है, यह उसकी है," ऐसा निश्चय नहीं होसकता; और डाकुओंको न मारनेसे तीर्थयात्रा तथा वाणिज्य व्यवहार आदिका निभना अत्यन्त कठिन है; इसलिये हिंसाके जरिये जिसमें वर्णसङ्कर न हो, वह विषय यदि तुम्हें विदित हो, तो उसे तुम मेरे समीप वर्णन करो।

सत्यवान बोले, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीनों वर्णोंको ब्राह्मणोंके अधीन करना उचित है, ऊपर कहे हुए तीनों वर्णोंके धर्म्मपाशमें बद्ध होनेपर दूसरे प्रतिलोम और अनुलोमजात सूत मागध आदि सङ्कर जातीय पुरुष क्षत्रियादिकोंकी भांति धर्म्माचरण करेंगे। उनके बीच जो पुरुष ब्राह्मणोंका बचन अतिक्रम करेगा, ब्राह्मण उसका विषय राजासे कहे कि यह पुरुष मेरा बचन नहीं सुनता; इससे राजा उसके लिये दण्ड विधान करे, नीतिशास्त्रकी विधिपूर्व्वक आलोचना न करके शरीरके अविनाश विषयमें जो शास्त्र विहित हुआ है; उसमें अन्यथा करना उचित नहीं है। जब राजा डाकुओंके मारनेमें प्रवृत्त होता है, तब उनके पिता, माता, भार्य्या और पुत्र आदि निहत हुआ करते हैं; इसलिये दूसरेके अपकार करनेपर भी राजाको अवश्य पूरी रीतिसे विचार करना चाहिये। दुष्ट पुरुष किसी समय साधु चरित्रवाले होते हैं, और असाधुओंसे भी साधु सन्तान उत्पन्न हुआ करती हैं; इसलिये मूल सहित संहार न करना चाहिये, यह सनातन धर्म्म है; हिंसा न करनेसे भी दूसरे कार्य्योंके कारण प्रायश्चित्त विहित होता है, यह निश्चय बचन है। उद्वेजन अर्थात् सर्व्वस्व हरना, भय दिखाना, बांधना विरूप करना और बध दण्डसे डाकुओंकी स्त्री आदिको पुरोहित समाजमें कष्ट देना उचित नहीं है। जब डाकू लोग पुरोहितके समीप शरणागत होके कहें, कि "हे ब्रह्मन्! हम अब फिर ऐसा कार्य्य नहीं करेंगे," तब उन्हें छोड़ना उचित है, यही बिधाताका शासन है। दण्ड और मृगछालधारी सिरमुंडे सन्न्यासी यदि निन्दित कर्म्म करें, तो उन्हें भी अवश्य शासन करना चाहिये, बड़े लोग भी यदि शासन कर्त्ताके निकट बार बार अपराध करें तो उन्हें डाकुओंकी भांति बधदण्डमें दण्डित न करके देशसे निकाल देना चाहिये।

द्युमत्सेन बोले, निज निज नियमोंसे प्रजापालन किया जा सकता है, वे सब नियम जब तक लङ्घित न हों, तब वही धर्म्मरूपसे वर्णित हुआ करते हैं। बध दण्ड न करके राजा सबकोही पराभूत कर रखे, ऐसा होनेसे ऊपर कहे हुए डाकू लोग उत्तम रीतिसे सुशासित हुआ

करेंगे, मृदुस्वभाव, सत्यनिष्ठ, अल्पद्रोह करनेवाले और अवमन्यु पुरुषोंके अपराधी होनेपर पहले उन्हें धिक्कारके जरिये दण्ड देना विहित था। अनन्तर उन लोगोंको वाक् दण्डसे शासन करना व्यवहृत हुआ था, कुछ समयके अनन्तर उक्त अपराधियोंके विषयमें सर्व्वस्व हरण रूपी दण्डप्रचलित हुआ; अब कलियुगके प्रारम्भसे बधदण्ड व्यवहृत हुआ है। एक पुरुषके मारे जानेपर भी दूसरा नहीं डरता; इसलिये डाकुओंके पक्षवाले सब लोग ही बधके योग्य हैं। सुना है कि दस्यु पुरुष मनुष्य देवता, गन्धर्व्व और पितरोंमेंसे किसीका भी आत्मीय नहीं है; इसलिये डाकुओंके बध करनेसे उनकी भार्य्या आदिका बध नहीं होता; क्योंकि उन लोगोंके सङ्ग किसीका भी सम्बन्ध नहीं है। जो मूर्ख पुरुष श्मशानसे मुर्देका अलङ्कार और पिशाच तुल्य मनुष्योंसे देवताओंकी शपथ करके वस्त्र आदि हरण करता है, उस नष्टबुद्धि पुरुषके विषयमें सदाचार निर्देश करनेमें कौन पुरुष समर्थ होसकता है।

सत्यवान् बोले, अहिंसाके जरिये यदि दुष्टोंको साधु बनानेमें सामर्थ न हो, तो कोई यज्ञ आरम्भ करके उनका नाश करना चाहिये, क्योंकि पापी लोग यज्ञके पशु होकर स्वर्गमें गमन किया करते हैं, यह वेदमें वर्णित है; इसलिये बधाई पुरुषोंको भी यज्ञके बीच प्रवेश कराके उनका उपकार करना उचित है। राजा लोग लोकयात्रा निबाहनेके लिये परम तपस्या किया करते हैं, वे उत्तम चरित्रवाले होनेपर भी "हमारे राज्यमें डाकू हैं," ऐसा जाननेसे, वैसे डाकुओंसे लज्जित होते हैं। भय दिखानेसे ही प्रजा साधु होती है, राजा इच्छानुसार दुष्कृतशाली प्रजाको नहीं मारता। यज्ञमें प्रयोजन होनेसे सुकृतके जरिये उन्हें प्रचुर रीतिसे शासन किया करता है। राजाके सदाचार करनेसे प्रजा उसहीके अनुसार सदाचार अवलम्बन करती है; श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, साधारण पुरुष भी उसहीके अनुसार चला करते हैं। लोग इस ही प्रकार क्रमसे कल्याण लाभ करते हैं, मनुष्य बड़े लोगोंके अनुवर्त्तनमें सदा निरत हुआ करते हैं। जो राजा अपने चित्तको सावधान न करके दूसरेको शासन करनेकी इच्छा करता है, उस विषयेन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले राजाकी प्रजा हंसी किया करती है, जो पुरुष दम्भ और मोहके वशमें होकर राजाके सङ्ग तनिक भी अनुचित व्यवहार करे, उसे जिस उपायसे होसके, शासन करना उचित है; ऐसा होनेसे वह पापसे निवृत होगा। जो पापकर्म्म करनेवाले पुरुषको पूर्ण रीतिसे शासन करनेकी इच्छा करे, पहले उसे आत्म-नियमित करना योग्य है। अनन्तर पुत्र सहोदर आदिको महत् दण्डके सहारे शासित करना उचित है। जिस राज्यमें पाप करनेवाले नीच लोग अत्यन्त महत् दुःख नहीं पाते, अवश्य ही वहां पापकी बढ़ती और धर्म्मकी घटती हुआ करती है; करुणाशील विद्वान् ब्राह्मणोंने ऐसेही अनुशासन किये हैं। हे तात! अत्यन्त करुणाके सबब प्रजासमूहके विषयमें धीरज देनेवाले पितामहके जरिये मैं इस ही प्रकार अनुशिष्ट हुआ था। सतयुगमें राजाओंने इस ही प्रथम कल्प शासन अर्थात् अहिंसामय दण्डसे ही पृथ्वी मण्डलको वशमें किया था। त्रेतायुगमें तीनपाद धर्म्मके सहारे प्रजा शासन होता था, द्वापरमें दोपाद धर्म्म और कलियुगमें एकपाद धर्म्म प्रवृत्त हुआ है। धिगदण्ड, वाक् दण्ड, आदान दण्ड और बधदण्ड युगके क्रमसे प्रजासमूहके विषयमें प्रवृत्त हुआ करते हैं। कलियुगके उपस्थित होनेपर समय-विशेषमें राजाके दुश्चरित्रसे धर्म्मके सोलह अंशोंका एक अंश मात्र, शेष रहेगा। हे सत्यवान्! यदि अहिंसामय प्रथम कल्प दण्डविधानसे धर्म्म शङ्कर हो, तो परमायु, शक्ति और काल निर्देश

करके राजा दण्डकी आज्ञा करे। सत्यके निमित्त अर्थात् ब्रह्म प्राप्तिके हेतु इस लोकमें अत्यन्त महत् धर्म्मफलकी त्यागना न चाहिये जीवोंके ऊपर कृपा करके स्वयम्भु मनुने उसे कहा है।

२६६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! समस्त ऐश्वर्य्य, ध्यान, यश, श्री, वैराग्य और धर्म्म, इन छहों गुणोंका हेतु जो योग धर्म्म जीवोंके विषयमें अविरोध भावसे जिस प्रकार उभयभागी अर्थात् गार्हस्थ और सन्न्यास, इन दोनोंमें उपयोगी होता है, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये। गार्हस्थ पञ्चसूना अनिवार्य्य है, जो धर्म्ममें समस्त विषय सब भांतिसे परित्यज्य है, उक्त दोनों धर्म्म एक ही कार्य्यकेलिये प्रवृत्त होने पर अर्थात् गृहस्थ पुरुष न्यायसे प्राप्त हुए धनके जरिये जीविका निर्व्वाह करनेसे तत्त्वज्ञाननिष्ठ, अतिथिप्रिय, श्राद्ध करनेवाले तथा सत्यवादी होनेसे मुक्त होंगे। और योगी पुरुष प्राणायामसे पापोंको जलाकर धारणासे किल्विष नाश, प्रत्याहारके जरिये सङ्ग परिहार और ध्यानके सहारे जीवत्व आदि गुणोंको परित्याग करें; इसलिये उक्त दोनों धर्म्मोंके तुल्यअर्थ होनेपर भी उनके बीच कौन कल्याणकारी है।

भीष्म बोले, गार्हस्थ और योग धर्म्म दोनों ही महा ऐश्वर्य्यसे युक्त तथा अत्यन्त दुश्चर हैं, दोनोंमें ही महत् फल हैं, और दोनों धर्म्म साधुओंके आचरित हैं; इस समय मैं तुम्हारे समीप उक्त दोनों धर्म्मोंका प्रमाण वर्णन करता हूं, एकाग्रचित्त होकर सुननेसे धर्म्म विषयमें तुम्हारा संशय दूर होगा। हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस विषयमें कपिल और गौके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं तुम उसे सुनो। पहले समयमें राजा नहुष नित्य-निश्चय पुरातन वेदविधि देखकर गृहमें आये हुए अतिथियोंके निमित्त गऊ मारनेमें प्रवृत्त हुए थे मैंने ऐसा सुना है; अदीन स्वभाववाले सत्वगुण अवलम्बी, संयममें रत नियताहारी, ज्ञानवान् कपिलने बधके लिये लाई गई उस गऊको देखा था। वह भयरहित सत्यसंश्रयी, अशिथिल और नैष्ठिकी बुद्धिसे युक्त थे—इस ही लिये उस गऊको देखकर 'हा वेद!' ऐसा वचन कहके आक्षेप प्रकाश किया था। स्यूमरश्मि ऋषि योगबलसे उस गऊके शरीरमें प्रवेश करके कपिल मुनिसे बोले, क्याही आश्चर्य है! यदि सब वेद ही गर्हित रूपसे सम्मत हुए तब दूसरा कौन हिंसारहित धर्म्म लोगोंको अभिमत होगा। सन्तोषयुक्त श्रुतिबलसे विज्ञानदर्शी तपस्वी लोग ऋषियोंसे प्रकट हुए वेदवाक्योंको नित्य विज्ञानमय परमेश्वरका वाक्य कहके मान्य करते हैं, इसलिये वेदवाक्यके एक अक्षरको भी अप्रमाणित करनेमें किसीकी सामर्थ नहीं है। जो फलकी आशासे रहित, दोषहीन वीतराग और अव्याप्त समस्त कामत्व निबन्धनसे सब प्रकार निरारम्भ है, उस परमेश्वरके बचन वेदोंमें क्या किसी पुरुषको कुछ कहनेकी शक्ति है।

कपिल बोले, मैंने वेदोंकी निन्दा नहीं की है, और किसी विषयमें कुछ विषम वाक्य कहनेकी इच्छा भी नहीं करता, पृथक् पृथक् आश्रमवालोंके सब कर्म्म एक प्रयोजनके हैं, इसे मैंने सुना है। क्या सन्न्यासी, क्या वाणप्रस्थ, क्या गृहस्थ, क्या ब्रह्मचारी, सब ही परम पद लाभ किया करते हैं। चारों आश्रमोंसे ही आत्माको प्राप्त किया जाता है, इस ही लिये ब्रह्मचर्य्य आदि चारों आश्रम देवयान पथ रूपसे प्रसिद्ध हैं, इन चारोंमें उत्कर्ष और अपकर्ष तथा बलाबलके विषय वर्णित हुए हैं, कि सन्न्यासी मोक्षलाभ करते हैं, वाणप्रस्थ ब्रह्म लोक पाते

है, गृहस्थ पुरुष स्वर्ग लोकमें गमन किया करते हैं, और ब्रह्मचारी ऋषिलोकमें बास करते हैं। ऐसा ही जानके स्वर्गादिप्रद यज्ञादि कर्म्म आरम्भ करे; यही वैदिक मत और वेदके प्रकारान्तरमें कर्म्म न करनेकी भी बिधि है, इस ही प्रकार नैष्ठिकी जनश्रुति भी श्रवणगोचर हुआ करती है, अर्थात् सन्न्यास ही सबके विषयमें परम मोक्ष साधन है। जो सब काम्य वस्तुओंको परित्याग करते हैं, वे परब्रह्मको जानके परमपद पाते हैं। कर्म्म न करनेसे कोई दोष नहीं होता, परन्तु यज्ञ आदि कर्म्मोंके अनुष्ठान करनेसे हिंसा आदिसे बहुतेरे दोष हुआ करते हैं। जब शास्त्र इस प्रकार है, तब कर्म्म त्याग और कर्म्मानुष्ठानके बलाबल अत्यन्त ही दुर्व्विज्ञेय हैं, क्यों कि दोनोंमें ही निन्दा और प्रशंसाको तुल्यता है। आगमशास्त्रोंके अतिरिक्त जो कुछ हिंसाशास्त्र हैं, यदि वे प्रत्यक्ष हों और तुमने उन्हें देखा हो, तो उसे ही कहो।

स्यूमरश्मि बोले, "स्वर्गकी इच्छाकरनेवाले पुरुष यज्ञ करें" सदा ऐसी ही जनश्रुति सुनी जाती है। पहले फलकी कल्पना करके उसके अनन्तर यज्ञ विस्तृत हुआ करता है। बकरे, घोड़े, भेड़, गऊ, पक्षियें और गांव तथा जङ्गलकी सब ओषधियें प्राणियोंके अन्न हैं; यह वेदमें प्रतिपन्न हुआ है; इसलिये जो जिसका अन्न है, उसके खानेमें कोई दोष नहीं है। प्रतिदिन सन्ध्या और भोरके समयमें अन्न निरूपित हुआ करता है; पशुसमूह और समस्त धान्य यज्ञके अङ्ग हैं; यह भी वेदके बीच विहित है। प्रजापतिने ऊपर कहे हुए पशुओंको यज्ञके लिये उत्पन्न किया है, और उन्हींके जरिये देवताओंका यज्ञ कराया था। ऊपर कहे हुए पशु, ग्राम और अरण्यभेदसे सात प्रकारके हैं, वे परस्पर श्रेष्ठ हैं। गऊ, बकरे, मनुज, घोड़े, भेड़े, खच्चर और गदहे, ये सातों ग्रामपशु हैं; और सिंह, बाघ, बराह, अश्व, भैंसे, भालु और बन्दर, ये सातों जङ्गली कहके बर्णित हुआ करते हैं। यज्ञमें बिनियुक्त भूभागको महर्षि लोग उत्तम संज्ञक कहा करते हैं और यह पहलेसे ही पण्डितोंके जरिये अनुज्ञात हुआ है। कौन बिद्वान् पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार मुक्तिके उपाय करनेमें अभिलाषी नहीं होता; सब कोई अपनी सामर्थके अनुसार यज्ञ कार्य्य करें। मनुष्य, पशु, वृक्ष और समस्त ओषधियें स्वर्गकी कामना किया करती हैं, स्वर्गके अतिरिक्त सुख नहीं है। ओषधि, पशु, वृक्ष, वीरुत्, घृत, दूध, दही, हवि भूमि, दिक् श्रद्धा और काल, ये बारह और ऋक्, यजु, साम तथा यजमानको मिलाके सोलह, और अग्निस्वरूप गृहपति सप्तदश रूपसे कहे जाते हैं। येही सत्तरह यज्ञके अङ्ग हैं, यज्ञ ही लोकस्थितिका मूल है, यह वेदमें प्रतिपन्न है। घृत, दूध, दही, शकृत्, अमिक्षा, त्वक्, पुच्छलोम, शींग और खुरके जरिये गोयज्ञका कार्य्य सिद्ध हुआ करता है। सब वस्तुओंमेंसे यज्ञके लिये प्रत्येकमें जो जो बिहित होता है, वह सब एकत्रित होकर दक्षिणायुक्त ऋत्विकोंके सहित यज्ञको पूर्ण करता है। ऊपर कही हुई सब सामग्रियोंको समाप्त करनेसे यज्ञ निवृत्त हुआ करता है। यज्ञके लिये ही सब वस्तुएं उत्पन्न हुई हैं, यह यथार्थ श्रुति कानोंसे सुनी जाती है। प्राचीन मनुष्य इस ही भांति यज्ञके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते थे; वे किसीकी हिंसा नहीं करते थे फलकी कामनासे कोई कर्म्म नहीं करते थे। और किसीसे द्रोह नहीं करते थे। "यज्ञ करना कर्त्तव्य है," ऐसा समझके फलकी इच्छा न करके जो लोग यज्ञ करते हैं, उनके यज्ञमें पहले कहे हुए सब यज्ञाङ्ग और यज्ञमें कहे हुए यपकाष्ठ यथारीतिसे बिधिपूर्व्वक निज निज कार्य्योंसे परस्परका उपकार करते हैं। जिसमें सब वेद प्रतिष्ठित

होरहे हैं, मैं उस ऋषिप्रणीत आम्नाय-वाक्यका दर्शन करता हूं, कर्म्म-प्रवर्त्तक ब्राह्मण वाक्य-दर्शन निबन्धनसे विद्वान् लोग भी उस वेद-वाक्यको अवलोकन किया करते हैं। ब्राह्मणसे यज्ञकी उत्पत्ति होती है और ब्राह्मणमें यज्ञ अर्पित हुआ करता है, सब जगत् यज्ञका आसरा किये हैं, और यज्ञ भी सदा जगत्की अवलम्बन कर रहा है। ओंकार ही वेदका मूल है, इसलिये प्रणवका उच्चारण करके यज्ञादि कार्य्योंको करना चाहिये। नमःस्वाहा, स्वधा, वषट् इत्यादि मन्त्रोंके यथा शक्ति जिसके गृहमें प्रयोग होते हैं; त्रिभुवनके बीच उसे ही परलोकका भय नहीं है; सब वेद और सिद्ध महर्षि लोग इस विषयमें ऐसा ही कहा करते हैं। ऋक्, यजु, साम आदि शब्द, ये सब विधि पूर्व्वक प्रयुक्त होकर जिसमें निवास करते हैं, वेही द्विज-पदवाच्य होते हैं। हे द्विज! आग्नाधान, सोमपान और इतर महायज्ञोंसे जो फल होता है, उसे तो आप जानते हैं। इसलिये बिचार न करके यजन और याजन करना उचित है। स्वर्गप्रद ज्योतिष्ठोमादि अनुष्ठानके जरिये जो यज्ञ करते हैं, परलोकमें उन्हें अत्यन्त महत् स्वर्ग फल प्राप्त हुआ करता है। जो यज्ञ नहीं करते, उनका यह लोक और परलोक नष्ट होता है। जो वेदगत अर्थवाद जानते हैं, उस अर्थवादके दोनों फल सामर्थ्य ही इस विषयमें प्रमाण है, यह भी उन्हें अविदित नहीं है।

२६७ अध्याय समाप्त।

कपिल बोले, सविशेष अवस्थामें स्थित, यम नियम आदिसे युक्त, योगी लोग इस्थल रूपसे परिच्छिन्न ब्रह्माण्ड पर्य्यन्त कर्म्म फल अवलोकन करते हुए परमात्माका दर्शन किया करते हैं; सब लोकोंके बीच इन लोगोंके सङ्कल्प कभी मिथ्या न होवे। जो सर्द्दी, गर्म्मीसे उत्पन्न हुए हर्ष विषादसे रहित हैं, जो किसीको नमस्कार वा आशीर्व्वाद नहीं करते, ध्यानयुक्त होनेसे वासनाके हेतु सब पापोंसे जो लोग मुक्त हुए हैं, वे स्वभावसिद्ध पवित्र और आनेवाले दोषोंसे रहित योगी पुरुष परम सुखसे बिचरते रहते हैं। अपवर्ग और सन्न्यास विषयकी बुद्धिसे जिन्होंने निश्चय किया है, वे ब्रह्माभिलाषी ब्रह्मभूत योगी लोग ब्रह्मको ही अवलम्बन किया करते हैं, जिन्हें शोक नहीं है, और रजोगुण नष्ट हुआ है, उनके निमित्त नित्य सिद्ध सनातन लोक निर्म्मित है, परमपद पाके फिर उन्हें गृहस्थ धर्म्मकी क्या आवश्यकता है।

स्यूमरश्मि बोले, यदि यही परम उत्कर्ष और यही चरम-गति हुई, तौभी बिना गृहस्थोंके आसरेसे दूसरे आश्रमोंके निर्व्वाह नहीं होसकते। जैसे जननीका आसरा करके सब जन्तु जीवन धारण करते हैं, वैसे ही गृहस्थाश्रमके अवलम्बसे सब आश्रमवाले वर्त्तमान रहते हैं। गृहस्थ ही यज्ञ किया करता है, गृहस्थ ही तपस्या करता है; सुखकी इच्छा करके जो कुछ चेष्टा की जाती है, गार्हस्थ ही उसका मूल है। प्राणिमात्र ही सन्तानके उत्पन्न होनेसे सब भांतिसे सुखी होते हैं, गृहस्थाश्रमके अतिरिक्त दूसरे किसी आश्रममें भी वह पुत्रोत्पत्ति सम्भव नहीं होती, वाह्य औषधि धान्य आदि और शैलज ओषधि सोमलता इत्यादि जो कुछ दीख पड़ती हैं, प्राण उन ओषधि स्वरूप है; क्योंकि अग्निमें दी हुई आहुति आदित्यके निकट उपस्थित होती है, सूर्य्यसे वर्षा उत्पन्न होती है, जल बरसनेसे अन्न उपजता है, और अन्नसे प्रजासमूहकी उत्पत्ति हुआ करती है। इसलिये ओषधि स्वरूप प्राणसे पृथक् जब दूसरा कोई पदार्थ नहीं दीखता, तब गृहस्थाश्रम ही जगत्की उत्पत्तिका कारण

है; 'गृहस्थाश्रममें मोक्ष नहीं होती' किस पुरुषका यह वचन सत्य होसकता है। श्रद्धा-रहित, बुद्धिहीन, सूक्ष्म दर्शन विवर्ज्जित, प्रतिष्ठाहीन, आलसी, श्रान्त और निज कर्म्मसे सन्तापयुक्त, कार्य्यत्व आदि दोषोंसे गृहस्थ धर्म्म प्रतिपालन करनेमें असमर्थ मूर्ख पुरुष ही प्रव्रज्याधर्म्ममें शमगुणको अधिकता दर्शन किया करते हैं। तीनों लोकोंके हितके निमित्त यह नित्य निश्चल मर्य्यादा है, कि भगवान् वेदवित् ब्राह्मण जन्म पर्य्यन्त पूजनीय हैं। प्रमाणान्तरोंसे अगम्य स्वर्गादि और ऐहिक कर्म्मफलसिद्धि विषयमें जो सब मन्त्र हैं, वह गर्भाधानके पहलेसे ही द्विजातियोंमें निवास करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

मृत-देहको जलाना, फिर शरीर प्राप्ति, मरनेके अनन्तर श्राद्ध तर्पण आदि वैतरणीके समयमें गऊदान, आद्य श्राद्धके समयमें वृषोत्सर्ग और सब पिण्डोंमें जल सिञ्चन, ये सब मन्त्रमूलक हैं; ज्योतिर्म्मय, कुशापर सोनेवाले क्रव्यात् और पितर लोग मृतकके सम्बन्धमें ऊपर कहे हुए कार्य्योंको मन्त्रसम्मत कहा करते हैं; वेद जब इन मन्त्रोंके कारणताकी घोषणा कर रहे हैं और मनुष्य लोग जब पितर देवता तथा ऋषियोंके निकट ऋणी हैं, तब किसी पुरुषको किस प्रकार मोक्ष होसकती है। सब मन्त्र शरीर होन मुक्त पुरुषोंके उपकारके लिये नहीं हैं; इसलिये उस प्रकार अशरीरता लक्षण मात्र नहीं है। वेदवाक्योंका जिसमें पूर्ण रीतिसे ज्ञान नहीं होता, वह सत्यको भांति आभासमान मिथ्याधर्म्म है; सम्पत्तिरहित आलसी पण्डितोंके जरिये वह मिथ्या धर्म्म प्रवर्त्तित हुआ है, जो वेदवित् ब्राह्मण वेदशास्त्र विहित यज्ञादिकोंका अनुष्ठान करता है, वह पापोंसे आहूत वा आकर्षित नहीं होता; बल्कि वह यज्ञ और यज्ञीय पशुओंके सहित ऊर्द्धलोकमें गमन करता है; और वह स्वयं सर्व्वकामसे तृप्त होकर दूसरोंको तर्पित किया करता है; इसलिये अग्निहोत्र आदि कर्म्म समुचित उपासनारूपी ज्ञानसे ही मोक्ष होती है, इससे वह गृहस्थाश्रममें ही सिद्ध हुआ करती है। वेदोक्त कर्म्ममें अनादर, शठता वा मायासे पुरुष महत् ब्रह्मपद नहीं पाता, वेद जाननेवाले ब्राह्मण ही वेदोक्त कर्म्मोंके अनुष्ठानसे ब्रह्मपद प्राप्त किया करते हैं।

कपिलमुनि बोले, दर्शपौर्णमास, अग्निहोत्र और चातुर्म्मास यज्ञ बुद्धिमान् मनुष्योंको चित्त-शुद्धिके कारण हुए हैं; इसलिये उक्त यज्ञादि कर्म्मोंमें सनातन धर्म्म विद्यमान है, हिंसायुक्त पशुबध आदि कार्य्योंमें कोई धर्म्म नहीं है। जो यज्ञादिकोंका अनुष्ठान नहीं करते, वेही धैर्य्यशील हैं, इससे वेही राग आदि दोषोंसे रहित ब्रह्म शब्दके वाच्य होते हैं। वेही सन्यासी ब्रह्मदर्शनके जरिये अमृताभिलाषी देवर्षि और पितरोंकी तृप्तिसाधन किया करते हैं। जो सब भूतोंके आत्मभूत और सब प्राणियोंमें समदर्शी हैं, गुणाभिलाषी देवता लोग भी उस निर्गुण पुरुषके पदलाभ करनेमें मुग्ध हुआ करते हैं। बाहु, वाक्य, उदर और उपस्थ, ये चारों द्वारकी भांति जिसे आवरण कर रखते हैं; देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, ये चारों जिसके भोगसाधन सुखस्वरूप हैं, मनुष्य गुरूपदेशसे इस शरीरके भीतर स्थित सर्व्वमय पुरुषको विराट, सूत्र, अन्तर्य्यामी और शुद्ध-चैतन्य इन चारों भांतिसे जानता है। जो उसे जाननेकी इच्छा करे, वह दोनों भुजा, वचन, उदर और उपस्थकी उत्तम रीतिसे रक्षा करनेमें यत्नवान् होवे। बुद्धिमान पुरुष जुआ न खेले, दूसरेका वित्त न हरे, जिसके सङ्ग यौन-सम्बन्ध होनेकी सम्भावना नहीं है, उसे याजन न करे, क्रुद्ध होके किसीके ऊपर प्रहार न करे; जो लोग इस ही प्रकार व्यवहार करते हैं, उनके हाथ पांव उत्तम रीतिसे रक्षित होते हैं। आक्रोश

करनेकी इच्छा न करे, तथा वचन न कहे, खलता और लोगोंके अपवादको परित्याग करे; जो लोग सत्यव्रती, मितभाषी और प्रमाद रहित हैं, उनका वचनरूपी द्वार उत्तम रीतिसे रक्षित हुआ करता है। अनशन (उपवास) अवलम्बन न करे और अधिक भोजन भी न करना चाहिये, अलोलुप होकर साधुओंमें मिलित होवे, इस लोकमें देहयात्रा निबाहनेके लिये थोड़ासा आहार करे; जो लोग ऐसा आचरण करते हैं, उनके जठर द्वारकी उत्तम रीतिसे रक्षा हुआ करती है। यज्ञ सम्बन्धी पत्नीसे विभक्त न होवे, यथा विधि परिणीता पत्नीके रहते दूसरी पत्नी का पाणिग्रहण करके प्रथम परिणीता पत्नीको धर्म्म, अर्थ, काम विषयमें विभागवती न करे और ऋतुकालके अतिरिक्त दूसरे समयमें पत्नीको आह्वान न करे, स्वयं भार्य्याव्रत अर्थात् परस्त्री त्याग व्रत धारण करे; जो लोग ऐसा आचरण करते हैं, उनके उपस्थ द्वारको रक्षा हुआ करती है। जिस मनीषी पुरुषके उपस्थ, उदर, बाहु और वचन ये चारों द्वार पूर्ण रीतिसे रक्षित हुए हैं, वही ब्रह्मपदवाच्य होता है; और जिसके पहले कहे हुए सब द्वार रक्षित नहीं होते उसके सब कार्य्य ही निष्फल होते हैं, वैसे पुरुषको तपस्यासे क्या प्रयोजन है, यज्ञकी ही कौनसी आवश्यकता है, और धैर्य्यका ही क्या प्रयोजन है; जिसके उत्तरीय वस्त्र नहीं है, जो आस्तरणशून्य स्थानमें बाहुको तकिया रूपसे सिरसे नीचे रखके शयन किया करते हैं, उन दम गुणावलम्बी पुरुषोंको देवता लोग ब्राह्मण समझते हैं। जो मननशील होकर एकबारही सुख वा दुःखका अनुशीलन न करके सुख दुःख आदि सब विषयोंमें रत रहते हैं, देवता लोग उन्हें ब्राह्मण समझते हैं। किसी प्राणियोंसे जिन्हें भय नहीं है, और जिनसे सब प्राणियोंको भय नहीं होता; जो सब भूतोंके आत्मभूत हैं, देवता लोग उन्हें ब्राह्मण समझते हैं। दान और यज्ञादि क्रियाके फल चित्तशुद्धिके बिना मनुष्य ब्राह्मण्य क्या है, उसे नहीं जान सकते; मूढ़ लोग वह सब न जानके ही स्वर्गकी कामना किया करते हैं। जो सदाचार अवलम्बन करनेसे संचित आश्रमोंमें निज कर्म्मोंके सहित तपस्या अर्थात् वेदान्त श्रवणादि स्वरूप आलोचना संसारके मूल अज्ञानको जलाती है, वही अनादि है, मुमुक्षु पुरुषोंका नित्य अनुष्ठेय है, सत्य फलक और धर्म्म में ग्रथित सदाचार आचरण करनेमें असमर्थ मनुष्य प्रत्यक्ष फलमय नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि संज्ञक परम ऐश्वर्य्ययुक्त अविनाशी कर्म्मोंको अनैकान्तिक और निष्फल देखते हैं। आचार ही निरापद्धर्म्म है, उनमें प्रमाद नहीं है, और काम, क्रोध आदिका आक्रमण नहीं है। इस लोकमें यज्ञादि कार्य्य अत्यन्त दुर्ज्ञेय हैं; यद्यपि वे जाने जाते हैं, तौभी अत्यन्त दुष्कर हैं, यद्यपि उसका अनुष्ठान किया जाता है, तौभी उसका परिणाम क्षययुक्त हुआ करता है, इसे ही तुम आलोचना कर रहे हो।

स्यूमरश्मि बोले, हे भगवन्! कर्म्मकारी अथवा कर्म्म त्याग करो, इस ही प्रकार परस्पर विरुद्ध दोनों पक्षके उपदेश देनेवाले वेद वाक्यकी प्रमाणता जिस प्रकार सिद्ध होती है, और जिस प्रकार त्याग सफल हुआ करता है, ये दोनों पथ ही वेदमें वर्णित हैं; अतएव आप उनकी यथार्थता मेरे समीप वर्णन करिये।

कपिल बोले, आप ब्रह्म प्राप्तिके उपाय भूत योगमार्गमें स्थित होकर इस जीवदेहमें प्रत्यक्ष दर्शन करिये, आप कर्म्मठ होकर जो अभिलाष किया करते हैं, इस लोकमें उस सुख आदिका अनुभव स्वरूप प्रत्यक्ष क्या है?

स्यूमरश्मि बोले, हे ब्रह्मन्! मैं स्यूमरश्मि हूं, ज्ञान प्राप्तिके लिये इस गोशरीरमें प्रविष्ट

हुआ हूं; कल्याणकी इच्छा करके सरल भावसे प्रत्युत्तर देता हूं, और निज पक्षको समर्थ न करनेके लिये नहीं कहता हूं, मुझे यह घोर संशय है, आप उसे दूर करिये। आप सत्यमें निवास करते हुए इस शरीरमें प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं, इससे आप जिस प्रकार उपासना किया करते हैं, उसमें प्रत्यक्ष पदार्थ क्या है; प्रधान तर्क वेदविरोधी लोकायत, आर्हत, सौगत और कापालिक आदि सब शास्त्रोंको परित्याग करके यथावत् आगम शब्दका अर्थ मुझे विदित हुआ है। वेदवाक्य और वेदार्थनिर्णायक पूर्व्व मीमांसा, उत्तर-मीमांसा, सांख्य, पातञ्जल और तर्क शास्त्रोंका भी आगम कहा जाता है, इसलिये आश्रम धर्म्मोंको अतिक्रम न करके सब आगम शास्त्रोंकी उपासना करनेसे फल सिद्धि हुआ करती है। आगमोंके निश्चय निबन्धनसे गता-गति, दिव्य भोगोंको प्राप्ति आदि प्रत्यक्षरूपी सिद्धि दृष्टिगोचर होती है। जैसे एक नौकामें निबद्ध दूसरी नौका बन्धनके सहित नदीके प्रवा-हमें ह्रयमान् होकर किसी पुरुषको दूसरे किनारे पर नहीं पहुंचा सकती, हे विप्र! हम लोग उस ही प्रकार कर्म्म-नौकामें निबद्ध होकर पूर्व्व कर्म्म वासना-बन्धनसे जन्म, जरा, मृत्यु प्रवाहके पार होनेमें असमर्थ हैं। हे भगवन्! इसलिये मैं आपका शरणागत शिष्य हुआ हूं, आप मुझे इस प्रत्यक्ष पदार्थ ज्ञानकी शिक्षा दीजिये। इस संसारमें कोई पुरुष भी त्यागशील नहीं है, कोई सन्तुष्ट नहीं है, कोई पुरुष भी शोकहीन नहीं है, कोई मनुष्य रोग रहित नहीं है, कोई चिकित्सा शून्य नहीं है, कोई पुरुष आसक्तिहीन नहीं है, और जिसमें पारिपाट्य न हो, ऐसा पुरुष ही नहीं है। आप भी मेरी भांति प्रसन्न होते और शोक किया करते हैं, और आप लोगोंमें भी समस्त इन्द्रिय-विषय सब जीवोंके सहित समान ही हैं; इसलिये मैंने सुखाभिलाषी सब वर्णोंके सुखको अनुभव किया है। अब यदि सुखका निर्णय करना हो, तो अपचयहीन सुख कौनसा है, आप मुझे उसहीका उपदेश करिये।

कपिल मुनि बोले, सब वैदिक शास्त्र समस्त प्रवृत्तिके बीच जो मोक्ष विषयके अनु-ष्ठान करनेका उपदेश करते हैं, उस मोक्षका अनुष्ठान जिसमें है, वही अपचयरहित सुखका अवलम्ब है। जो पुरुष ज्ञानका अनुसरण करता है, उसके शम दम आदिके हेतुसे उत्पन्न हुआ ज्ञान समस्त संसारका विनाश किया करता है। ज्ञानके बिना जो वैदिक कर्म्ममें प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, वह प्रवृत्ति ही जन्म मरण प्रवाहरूपी क्लेशसे प्रजासमूहको पीड़ित करती है। आप ज्ञानी और सब तरहसे निरा-मय हैं; इसलिये आप लोगोंके बीच क्या किसीने कभी ऐकात्मा ज्ञान प्राप्त किया है। कोई कोई वितण्डावादी शास्त्रके यथार्थ मर्म्मको न जानके काम और क्रोधमें फंसनेसे अहङ्कारके वशमें हुआ करते हैं। शास्त्र-दस्यु पुरुष शास्त्रोंके अभिप्रायको न जानके स्वगत, स्वजा-तीय और विजातीय, इन तीनों परिच्छेदोंसे रहित ब्रह्मवस्तुका अपलाप करते हुए शम दम आदिके साधनमें उदासीनता अवलम्बन करके दम्भ और लोभके वशमें हुए हैं। वैसे मनुष्य केवल फलाभावको देखते हैं; ज्ञान, ऐश्वर्य्य आदि गुणोंको आत्मसंवेद्य समझके दूसरेमें योजना नहीं करते; उन तमोगुण प्रधान देहधारियोंके लिये तम ही परम अव-लम्ब है, जिस जन्तुकी जैसी प्रकृति है, वह वैसी ही प्रकृतिके वशवर्त्ती होता है, उसके काम, क्रोध, द्वेष, दम्भ, मिथ्या, मद आदि प्रकृतिसे उत्पन्न हुए गुणसमूह सदा ही वर्द्धित हुआ करते हैं। जो सिद्धान्त वाक्यमें निरत यतिलोग परमग-तिकी कामना किया करते हैं, वे ध्यानपूर्व्वक यह सब आलोचना करके शुभाशुभ परित्याग करें।

स्यूमरश्मि बोले, हे ब्रह्मन्! मैंने शास्त्रके अनुसार कर्म्मकी प्रशस्तता और सन्न्यास धर्म्मकी अप्रशस्तता वर्णन की है, शास्त्रके अर्थको बिना जाने वाक्यके बिलाससे प्रवृत्ति नहीं होती। न्यायके अनुगत जो कुछ व्यवहार है, वही शास्त्र और जो अन्यायके अनुगत है, वही अशास्त्र है, ऐसी ही जनश्रुति श्रुतिगोचर हुआ करती है। यह निश्चय है, कि शास्त्रके अतिरिक्त कोई प्रवृत्ति नहीं होती, वेदशास्त्रोंसे जो भिन्न है, वही अशास्त्र है, यह वेदमें प्रतिपन्न है। अविज्ञानके वशमें होकर हतप्रज्ञ हीनबुद्धि तमसे आवृत बहुतेरे पुरुष जो प्रत्यक्ष-सिद्ध पदार्थका ही मान्य किया करते हैं, वे लोग केवल इस लोकको ही देखते हैं, वे कृतहानि और अकृताभ्यागम आदि शास्त्रके दोषोंको नहीं देखते। जो अन्यान्य अवैदिक मतको अवलम्बन करके लोकायत नास्तिक लोग शोक किया करते हैं, हम लोग वैसे मतका आसरा करनेसे उन्हीं लोगोंको भांति शोकभाजन होंगे। शीत उष्ण आदि स्पर्श पशु, पामर और पण्डित आदि सबके पक्षमें समान हैं, हम लोग आत्माका अनुभव न कर सकनेसे स्वरूप निष्ठासे रहित हीनबिषयोंमें बुद्धियुक्त हैं, इस ही लिये अज्ञानसे छिपे हुए हैं। सिद्धान्त-विषयमें सब तरहसे उपापोह-कुशल होकर आपने अनन्त वाक्य प्रकाश करके एक मात्र सुखार्थी वर्ण और चारों आश्रमोंके प्रवृत्ति विषयमें हमारे चित्तकी शान्तिरूपी जलसे अभिषिक्त किया। केवल योगयुक्त सब तरहसे कृतकृत्य चित्त बिजयी पुरुष शरीर मात्रके सहारे धर्म्माचरण करने और वेदवाक्यको अवलम्बन करके "मोक्ष है," यह बचन कहनेमें समर्थ होता है, अर्थात् जो लोग सब तरहसे धर्म्माचरण कर सकते हैं, उन्हें ही "मोक्ष है,"—इस बचनका उल्लेख करना उचित है। जिस पुरुषने नीतिशास्त्रको अतिक्रम किया है, सब लोग ही उसकी निन्दा किया करते हैं, उसके पक्षमें कुटुम्बगण-संश्रित कर्म्म करना अत्यन्त दुष्कर है; दान, अध्ययन, यज्ञ, सन्तानोत्पत्ति और समस्त व्यवहार, यह सब करनेपर भी यदि किसीको मोक्ष न हो, तब उस कर्त्ता और कार्य्यको धिक्कार है और वैसा परिश्रम भी निरर्थक है। यदि वेदवाक्यका अमान्य करके कोई ऊपर कहे हुए कर्म्मोंको न करे, तो उसकी नास्तिकता प्रकाशित होती है। हे भगवन्! इसलिये मैं आपके समीप एक मोक्ष विषयका ही वृत्तान्त विस्तारके सहित शीघ्र सुननेकी अभिलाष करता हूं, आप उसे वर्णन करिये; मैं आपके निकट आया हूं आप मुझे शिक्षा दीजिये। हे ब्रह्मन्! आप मोक्षके विषयको जिस प्रकार जानते हैं, मैं वैसी ही शिक्षाकी इच्छा करता हूं।

२६८ अध्याय समाप्त।

कपिल मुनि बोले, वेद ही सब लोगोंके धर्म्म शिक्षामें प्रमाण है; इसलिये वेद वाक्यका अमान्य करना किसीको भी उचित नहीं है। सब वेदवाक्य दो भागोंमें बिभक्त हैं, पहला कर्म्मोपासना काण्ड, दूसरा ज्ञानकाण्ड, इन दोनों काण्डोंको ही सबको जानना योग्य है। जो लोग कर्म्मोपासना काण्डमें निपुण हुए हैं, वे परब्रह्मको जाननेके अधिकारी होते हैं। गर्भाधान आदि वैदिक संस्कारोंसे जो शरीर शुद्ध होता है, वैसे पवित्र शरीरवाले ब्राह्मण ब्रह्मविद्याके योग्य पात्र हुआ करते हैं। मोक्षके उपयोगी चित्त शुद्धि रूप कर्म्म फलोंकी सीमा नहीं है, इसे प्रत्यक्ष देखिये। यह फल अनुमान् वा ऐहिक प्रमाणके जरिये नहीं जाना जाता; यह इस लोकमें साक्षिक प्रत्यक्ष फल है। धन संग्रहसे रहित, लोभहीन, राग, द्वेष वर्ज्जित निष्काम पुरुष धर्म्म जाननेसे यज्ञ

किया करते हैं। सत्पात्रको दान करनेसेही धनकी सार्थकता होती है, जिन लोगोंने कभी पाप कर्म्मका सहारा नहीं लिया है, अग्निहोत्र आदि कर्म्मोंके अनुष्ठानमें सदा रत रहते हैं; जिनके मनके सङ्कल्प पूर्ण रीतिसे सिद्ध हुए हैं। पवित्र ज्ञानमें निश्चय हुआ है; जिन लोगोंमें क्रोध, असूया, अहङ्कार और मत्सरता नहीं है; ज्ञानके उपाय श्रवण, मनन और निदिध्यासनमें जिनकी निष्ठा है; जन्म, कर्म्म और विद्या, ये तीनों ही जिनके पवित्र हैं, जो सब प्राणियोंके हितमें रत हैं, वेही सत्पात्र हैं; उन्हें ही दान करनेसे धनकी सार्थकता हुआ करती है।

पहिले समयमें जनक आदि राजा और याज्ञवल्क्य आदि बहुतेरे ब्राह्मण गृहस्थ होके भी निज कर्म्मोंका समादर करते हुए बिधिपूर्व्वक योगके अनुष्ठानमें नियुक्त थे। वे सब भूतोंमें समदर्शी सरलतायुक्त, सन्तुष्ट और ज्ञाननिष्ठ थे, धर्म्म और धर्म्म फल सत्य सङ्कल्पत्व आदि उन लोगोंको प्रत्यक्ष दीखते थे। वे लोग पवित्र और निरुपाधिक ब्रह्ममें श्रद्धावान् थे; वे लोग पहिले चित्तशुद्धि करके व्रताचरण करते थे। कृच्छ्रकाल और दुर्गम स्थलमें भी सब कोई मिलके धर्म्मका अनुष्ठान करते थे, वही उन लोगोंका परम सुख था। उन लोगोंको किसी प्रकार प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं थी, वे लोग सत्य धर्म्मकी अवलम्बन करके अत्यन्त तेजस्वी हुए थे; विषय बोध करानेवाली बुद्धिसे अनुरुद्ध नहीं होते थे, धर्म्म छल, और वञ्चना आदि नहीं जानते थे; वे सब कोई इकट्ठे होकर अहिंसामय धर्म्मका अनुष्ठान करते थे, उन लोगोंके लिये कदाचित् कोई प्रायश्चित्त विहित नहीं था; क्यों कि जो लोग वैसी रीतिसे निवास करें, उनके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है; मैंने ऐसा सुना है कि दुर्ब्बल और असमर्थ पुरुषोंके ही लिये प्रायश्चित्त विहित हुआ है।

इस ही भांति अनेक प्रकारके यज्ञ करनेवाले प्राचीन ब्राह्मण तीनों वेदोंको अनुशीलन करते हुए वृद्ध हुए हैं, पवित्रता और सच्चरित्रताके सहारे यशस्वी हुए हैं, तथा नित्य यज्ञ करते हुए आशाबन्धन बिमोचन किये हैं, उन ज्ञानवान् ब्राह्मणोंके यज्ञ और वेदोक्त कर्म्म आगमके अनुसार निर्व्वाहित हुआ करते हैं; जिन लोगोंके काम क्रोध वशीभूत हुए हैं, वे दुष्कर कर्म्मोंको किया करते हैं, उनके सम्बन्धमें सब शास्त्र और समस्त सङ्कल्प यथा समय फलित होते हैं। जो लोग निज कर्म्मोंसे विख्यात् और स्वभावसे ही पवित्र चित्तवाले हैं, उन सरल, शमनिरत, निज कर्म्मोंको विधिपूर्व्वक करनेवाले योगियोंके सब कर्म्म अनन्त ब्रह्ममें अर्पित हुआ करते हैं, हमलोगोंकी शाश्वती श्रुति इसे प्रतिपादन करती है। वैसे अदीन स्वभाववाले दुष्कर कर्म्म शील निज कर्म्मसे सम्पूर्ण काम मनुष्योंकी तपस्या ही अविद्याको निवर्त्तन करनेमें समर्थ होती है। जो सदाचार साधुओंके आपद्धर्म्माचारसे विभिन्न है, सावधानतासे युक्त और काम क्रोधके जरिये अनभिभूत है, जिसके बीच पहिले समयमें सब वर्णोंकी समस्त जातियोंमें अपूज्य लोगोंका पूजन और पूजने योग्य पुरुषोंका अपूजन आदि कोई व्यतिक्रम नहीं था; ब्राह्मण लोग कहते हैं, सूक्ष्म धर्म्मके अनुष्ठानमें असमर्थ पुरुषोंके जरिये वह एक ही सदाचार चार प्रकारके रूपसे विभक्त होकर चारों आश्रमोंके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। उस अद्भुत, प्राचीन, नित्य, निश्चल सदाचारको बिधिपूर्व्वक अवलम्बन करनेसे साधु पुरुष गृहसे निकलके अर्थात् सन्न्यास धर्म्मके सहारे परम गति प्राप्त किया करते हैं। चारों आश्रमोंके बीच जो लोग ऊपर कही हुई बिधिसे सदाचार अवलम्बन करते हैं, उनको मोक्ष हुआ करता है। कोई कोई घरसे निकलके बनवासी होते हैं, कोई ब्रह्मचारी होके गृहस्थाश्रम अवलम्बन

करके अन्तमें जङ्गलका सहारा लेते हैं। उक्त सदाचारसे युक्त द्विजाति लोग मुक्त होकर ज्योतिर्म्मय शरीर धारण करके आकाशमण्डलमें निजस्थानपर स्थित तारा वा नक्षत्रोंकी भांति दीख पड़ते हैं। ज्ञानी पुरुष वैराग्यसे वेदविहित अनन्त ब्रह्मत्व पाते हैं, वैसे पुरुषोंको यदि फिर संसारमें आना पड़े तो वे प्रारब्ध-कर्म्मसे योनि-प्रवेशके निमित्त पापफल दुःखादिसे लिप्त नहीं होते। जिन लोगोंने इस ही प्रकार ब्रह्मचर्य्य करते हुए मुमुक्षु होकर आत्मनिश्चय किया है और योगयुक्त हैं, वेही यथार्थ ब्राह्मण हैं; उनसे अतिरिक्त ब्राह्मण विप्रकी आकृति मात्र अर्थात् काठके हाथीकी भांति केवल नाम धारी हैं; इस ही प्रकार शुभ वा अशुभ कर्म्म ही पुरुषके नामको प्रकाशित करते हैं। जिनकी चित्तवृत्ति शुद्ध हुई है, वे त्वं पदार्थका दर्शन और तत्वमसि वाक्यके अर्थको जाननेसे सब वस्तुओंको ही अनन्त ईश्वरमय समझते हैं, यही हम लोगोंकी शाश्वती श्रुति हैं। वासना-हीन, शुद्धस्वभाववाले मोक्षके अभिलाषी मनुष्योंकी जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्त्याभिमानी विश्व तैजस प्राज्ञोक्त चौथी अर्थात् परमात्म विषय-वाली जो उपनिषत विद्या है। उस ही निमित्त धर्म्म सब वर्ण और आश्रमोंके सम्बन्धमें साधारण हुआ करता है, अर्थात् सम, दम, उपरम, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधि स्वरूप धर्म्म वर्णाश्रम मात्रमें ही साधारण है। शुद्ध निरुद्धचित्तवाले ब्राह्मण तुरीय ब्रह्मको पाते हैं। सन्तोष मूल त्यागशाली पुरुषको ज्ञानका अधिष्ठान कहा जाता है; जिसमें अपवर्गप्रद, ब्रह्म साक्षात्काररूपिणी नित्यवृत्ति वर्त्तमान है, वही सम्प्रदाय परम्परासे प्रचलित यतिधर्म्म है। उक्त धर्म्म आश्रमान्तर धर्म्मसे मिश्रित हो, अथवा न हो वैराग्यके अनुसार आराध्य होता है। कल्याणके लिये परम पुरुषके समीप जो मनुष्य गमन करते हैं, उनके बीच दुर्ब्बल पुरुष भी अवसन्न नहीं होते, पवित्र पुरुष ब्रह्मपदकी कामना करके संसारसे मुक्त होते हैं।

स्यूमरश्मि बोले, हे ब्रह्मन्! जो लोग प्राप्त धनसे विषयसम्भोग; दान, यज्ञ और अध्ययन करते हैं, तथा जो लोग सन्न्यास धर्म्मको अवलम्बन करते हैं; परलोकमें उनके बीच कौन पुरुष स्वर्गविजयी होता है। मैं इसे ही पूछता हूं, आप मेरे समीप इस ही विषयको यथावत् वर्णन करिये।

कपिल मुनि बोले, सब दान ही शुभ और गुण युक्त हैं, परन्तु त्याग करनेसे जो सुख होता है, उसे दान करनेवाले अनुभव नहीं कर सकते। त्यागशील पुरुष अनेक दृष्ट सुख लाभ करते हैं, इसे तुम भी अनुभव करते हो।

स्यूमरश्मि बोले, आप गृहस्थ होके भी ज्ञाननिष्ठ हैं, कर्म्मकाण्ड विषयमें भी निश्चय किये हैं; परन्तु आश्रममात्रमें ही निष्पत्ति-कालमें एक ही मोक्ष फल वर्णित हुआ करता है। ज्ञान और कर्म्मकी तुल्य प्रधानता अथवा प्रधान और निकृष्ट भावसे कुछ विशेषता नहीं दीख पड़ती; इसलिये आप इस विषयको विधि पूर्व्वक मेरे निकट यथावत् वर्णन करिये।

कपिल मुनि बोले, कर्म्मसे स्थूल और सूक्ष्म शरीर शोधित हुआ करता है। ज्ञान ही मोक्षका साधन है, सब कर्म्मोंके सहारे चित्तके दोष दूर होनेपर ब्रह्मानन्द स्वरूप प्रोतिज्ञानमेंही निवास किया करती है। सब प्राणियोंमें दया-रूपी अनृशंसता क्षमा, शान्ति, अहिंसा, सत्य वचन, सरलता, अद्रोह, अनभिमान, लज्जा, तितिक्षा और कर्म्मसे उपरति, येही ब्रह्म प्राप्तिके उपाय हैं; ज्ञानी लोग इस ही उपायके सहारे परमपद पाते हैं। विद्वान् पुरुष मन ही मन इस ही प्रकार कर्म्म निश्चय मालूम करे; सब भांतिसे शान्त स्वभाव, पवित्र चित्त, ज्ञाननिष्ठ और सन्तोष युक्त ब्राह्मणोंकी जो गति मिलती है, उसे ही परमगति कहा जाता

है, जिसमें परम गतिका लक्षण निरूपित हुआ है, वही वेदोंसे जानने योग्य कर्म्म ब्रह्म-स्वरूप है, कर्म्मके अनुष्ठान और ब्रह्मज्ञान लाभ करके भी जो लोग निरहङ्काररूपसे दीखते हैं, पण्डित लोग उन्हें ही वेदज्ञ कहते हैं; उनके अतिरिक्त मनुष्य भाथी नामक चर्म्म कोष स्वरूप है, अर्थात् वे लोग केवल सांस लेते और छोड़ते हैं। वेदवित् पुरुष जानने योग्य सब विषयोंको ही जानते हैं, वेदमेंही समस्त ज्ञेय विषय प्रतिष्ठित हैं; वर्त्तमान, अतीत और अनागत, सब विषयोंकी ही निष्पत्ति वेदमें विहित हुई है। यह दृश्यमान् जगत् प्रतीति कालमें वर्त्तमान रहता है, और बाधकालमें इसका अभाव होता है, अर्थात् ज्ञानवान् मनुष्योंके निकट प्रतीयमान जगत् मायानगरकी भांति असत् है, और अज्ञानियोंके निकट यह यथार्थमें असत् होनेपर भी वज्रपिञ्जरकी भांति दृढ़ हुआ करता है। तत्त्वज्ञ पुरुषोंके समीपमें यह परिदृश्यमान् सब विषय ही सत्, असत् और निर्व्विशेष सविशेष लय स्थान सब शास्त्रोंमें ही यह निष्पत्ति निरूपित हुई है। क्षेत्र, आराम, गृह-पशु, पत्नी, गृह पुत्र, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहङ्कार पर्य्यन्त परित्यक्त होनेपर निर्व्विकल्प समाधि अवस्थामें पूर्णरीतिसे आत्मदर्शन हुआ करता है, यह वेदवाक्यसे निश्चित हुआ है। मनुष्योंके जो एक सौ आनन्द है, गन्धर्व्वोंका वह एक ही आनन्द है, इत्यादि क्रमसे सौगुणा बर्द्धमान् ब्रह्मानन्दमें अकामहत श्रोत्रियको जो आनन्द होता है, वही आनन्द स्वरूप सन्तोष अपवर्गोंके अनुगत और प्रतिष्ठित होरहा है, जो अबाधित सत्य स्वरूप अधिष्ठानत्व निबन्धन है, जो मूर्त्तामूर्त्त प्रपञ्चात्मक है, जो सबके आत्म स्वरूपसे विदित और स्थावर जङ्गम शरीरोंमें तदात्म-निबन्धनसे जानने योग्य है, जो दुःखरहित सुख स्वरूप है, जो सबसे श्रेष्ठ मङ्गलमय है, और जिससे अव्यक्तकी उत्पत्ति हुई है, वही अपरिणामी परब्रह्म है। तेज अर्थात् इन्द्रिय विजयकी सामर्थ क्षमा अर्थात् बुराई करनेवाले पुरुषके विषयमें भी क्रोध न करना, शान्ति अर्थात् निष्कामत्व निबन्धन सब कार्य्योंसे उपरति, ये तीनों ही शुभ और अनामय हैं अर्थात् दुःखसे रहित सुख प्राप्तिके हेतु हैं, जो लोग बुद्धिके सहारे देखते हैं, वेही बुद्धि नेत्रवाले पुरुषोंके उक्त क्षमा तेज और शान्तिके जरिये अज्ञान दूर होने पर आकाशकी भांति आसक्ति रहित अकृत्रिम जिस सनातन ब्रह्मको पाते हैं, ब्रह्मवित्से अभिन्न उस परब्रह्मको नमस्कार करता हूं।

२६८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत पितामह! वेदोंमें धर्म्म, अर्थ और काम, ये तीनों विषय वर्णित हैं, तिसके बीच कौनसे विषयका लाभ होना उत्तम है आप मेरे समीप उसे ही कहिये।

भीष्म बोले, पहले समयमें कुण्डधारने प्रीतिपूर्व्वक भक्तके निमित्त जो उपकार किया था, इस विषयमें वही इतिहास तुम्हारे समीप कहता हूं। किसी निर्द्धन ब्राह्मणने फलकी कामनासे "धर्म्म करूंगा" इस ही प्रकार चिन्ता की थी। अनन्तर धर्म्म भी धनसाध्य है, ऐसा विचार करके यज्ञके लिये धनकी इच्छासे घोर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुआ। अन्तमें वह दृढ़-निश्चय करके देवताओंकी पूजा करने लगा, परन्तु देवपूजा करके भी अभिलषित धन न पाया। अनन्तर उसने सोचा, कि ऐसा भी कोई देवता है, जो मनुष्योंसे जड़ीकृत न हुआ हो और जो शीघ्र ही मेरे ऊपर प्रसन्न हो सके। ब्राह्मण चित्त स्थिर करके इस ही प्रकार चिन्ता कर रहा था, उस ही समय देवताओंके अनुचर कुण्डधार नाम जलधरको अपने समीपमें स्थित देखा। उस महाबाहु कुण्डधारको देखते

ही उसे भक्ति उत्पन्न हुई, सोचा कि यही मेरे कल्याणका उपाय करेगा ; क्योंकि इसका रूप कल्याणकारी बोध होता है। ऐसा सोचके वह अकेला उस देवके निकट जाके बोला, यही मुझे शीघ्र ही बहुतसा धन दान करेगा। अनन्तर ब्राह्मण अनेक प्रकारसे माला, गन्ध और धूप आदि बहुतसी पूजाकी सामग्रियोंसे जलधरकी पूजा की। थोड़े ही समयके बीच जलधर सन्तुष्ट होकर ब्राह्मणके उपकारके विषयमें अत्यन्त तत्पर होकर यह वचन बोले, कि ब्रह्महत्या करनेवाले, मद्य पीनेवाले, चोर और भग्नव्रती पुरुषोंकी निष्कृतिके विषय साधुओंके जरिये विहित हुए हैं; परन्तु कृतघ्न पुरुषोंकी किसी प्रकार भी निष्कृति नहीं है। आशाका पुत्र धर्म्म, असूयाका पुत्र क्रोध और निष्कृतिके भी लोभ नामक पुत्र है; परन्तु कृतघ्न लोग पुत्रलाभके अधिकारी नहीं होते। अनन्तर उस ब्राह्मणने उस समय कुशकी शय्यापर सोनेसे कुण्डधारके प्रभावसे सब भूतोंको देखा; तपस्या इन्द्रियविजय और भक्तिवशसे भागवञ्चित वह शुद्धचित्तवाला ब्राह्मण रात्रिमें कुण्डधारके विषयमें भक्तिका निदर्शन देखा। हे युधिष्ठिर! उसने उस समय देखा कि "महाभाग महातेजस्वी माणिभद्र वहांपर देवआज्ञासे याचकोंको फल बांट रहे हैं"। उसने देखा, कि वेही देवता लोग शुभकर्म्म करनेवाले पुरुषोंको राज्य तथा धन आदि दान कर रहे हैं और अशुभ कर्म्म करनेवालोंसे पहलेके दिये हुए राज्य आदि प्रत्याहरण कर रहे हैं। हे भरतकुलतिलक! अनन्तर महातेजस्वी कुण्डधार यक्षोंके सम्मुख देवताओंके समीप पृथ्वीपर गिरे। देवताओंके वचनके अनुसार महात्मा माणिभद्र पृथ्वीपर गिरे हुए कुण्डधारसे बोले, हे कुण्डधार! क्या कामना करते हो?

कुण्डधार बोले, यह ब्राह्मण मेरे ऊपर अत्यन्त भक्तियुक्त हुआ है; इसलिये देवता लोग यदि मुझपर प्रसन्न हुए हों, तो इसके ऊपर कुछ कृपा करें, मैं यही कामना करता हूं, और उसके सिद्ध होनेसे मैं सुखी होऊंगा।

अनन्तर माणिभद्र देवताओंके वचनके अनुसार महातेजस्वी कुण्डधारसे फिर कहने लगे। माणिभद्र बोले, हे कुण्डधार! उठो, उठो तुम्हारा कल्याण हो; तुम कृतकृत्य और सुखी होगे, यह विप्र यदि धनार्थी हुआ हो, तो इसे धन दान करूं। यह ब्राह्मण तुम्हारा सखा है, इससे यह जितना धन मांगे, वह असंख्य होनेपर भी देवताओंकी आज्ञासे मैं इसे वही दूंगा, हे युधिष्ठिर! कुण्डधार मनुष्य जीवन अत्यन्त चञ्चल और अस्थिर हैं, ऐसा समझकर ब्राह्मणकी तपस्याके निमित्त मनोयोगी हुए।

कुण्डधार बोले, हे धन देनेवाले! मैंने ब्राह्मणके लिये धनकी प्रार्थना नहीं की है, मैंने अनुगत भक्तके ऊपर कृपा की है, इसलिये दूसरी प्रकारकी कुछ अभिलाष करता हूं, रत्नपूरित पृथ्वी अथवा बहुतसे रत्न सञ्चय को मैं भक्तके लिये इच्छा नहीं करता हूं, यह धार्म्मिक हो, यही मेरा अभिलाष है; इसकी बुद्धि धर्म्ममें रत हो, यह धर्म्मको उपजीव्य करके जीवनका समय बितावे और यह धर्म्मको ही प्रधान जानके धर्म्मात्मा हो, मेरा यह अनुग्रह सफल होवे।

माणिभद्र बोले, राज्य और विविध सुख ही धर्म्मके फल हैं, इससे यह शारीरिक क्लेशसे रहित होके सदा उन सब फलोंको भोग करे।

भीष्म बोले, महायशस्वी कुण्डधारने बार बार धर्म्महीके लिये प्रार्थना की, क्योंकि निष्काम धर्म्म ही काम और अर्थसे उत्तम है, अनन्तर देवता लोग उस कुण्डधारके ऊपर प्रसन्न हुए।

माणिभद्र बोले, हे कुण्डधार! सब देवता लोग तुम्हारे और इस ब्राह्मणके ऊपर प्रसन्न हुए हैं, यह ब्राह्मण धर्म्मात्मा होगा और

इसकी मति धर्म्ममें ही अविचलित भावसे स्थित रहेगी। हे युधिष्ठिर! अनन्तर जलधर दूसरे पुरुषके लिये अत्यन्त दुर्लभ इच्छानुसार वर पाके प्रसन्न और कृतकार्य्य हुए, द्विज सत्तम भी अपने समीपमें सूक्ष्म चीरवस्त्र देखकर निर्वेद-युक्त हुए।

ब्राह्मण बोला, मैं जब धर्म्मज्ञानसे अनभिज्ञ हूं, तब और कौन पुरुष धर्म्मज्ञ होगा। इस-लिये मैं धर्म्मके जरिये जीवन व्यतीत करनेके लिये वनमें गमन करूं, वही मेरे विषयमें कल्याणकारी है।

भीष्म बोले, हे महाराज! वह द्विजवर निर्वेद होकर देवताओंकी कृपासे उस समय वनमें जाके घोर तपस्या करने लगा; क्रमसे वायुभक्षी होकर अनेक वर्ष बिताया; तौभी उसका जीवन नष्ट न होनेसे वह अद्भुत बोध हुआ। बहुत समयतक धर्म्ममें श्रद्धावान् और उग्र तपस्यामें बर्त्तमान रहनेसे उसे दिव्य दृष्टि उत्पन्न हुई, ऐसी बुद्धि प्रकट होनेपर उसने बिचारा, कि अब मैं प्रसन्न होकर यदि किसीको धन दान करूं, तो मेरा बचन मिथ्या न होगा। अनन्तर वह प्रसन्न वदन होकर फिर तपस्या करने लगा। जो वह केवल अभि-मान किया करता था। सिद्ध होके बार बार उसहीकी चिन्ता करने लगा, कि मैं प्रसन्न होकर यदि किसी पुरुषको राज्य दान करूं, तो वह शीघ्र ही राजा होजाय, मेरा बचन कदापि मिथ्या न होगा। हे भारत! उस ब्राह्मणकी तपस्याके योगसे सुहृदतासे आक-र्षित होकर कुण्डधारने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया, अनन्तर द्विजवरने सहसा कुण्डधारको समागत देखके विस्मित होकर उन्हें आलिङ्गन कर विधिपूर्व्वक पूजा की। उस समय कुण्डधार बोले, हे द्विजवर! तुम्हें उत्तम दिव्य नेत्र प्राप्त हुआ है, इसलिये तुम इस ही नेत्रसे राजाओंकी गति और सब लोकोंको देखो, तब ब्राह्मण कुण्ड-धारके बचनके अनुसार दूरसे ही दिव्य नेत्रके सहारे सहस्रों राजाओंको नरकमें डूबते देखा।

कुण्डधार बोले, तुम इच्छानुसार मेरी पूजा करके यदि दुःख पाते हो, तब मैंने तुम्हारा क्या किया। तुम्हारे ऊपर मेरी कृपा ही क्या हुई; देखो देखो, तुम फिर विशेष रूपसे अव-लोकन करो, मनुष्य किस लिये अभिलषित वस्तुकी कामना करता है; स्वर्गका द्वार सबके ही लिये अवरुद्ध होरहा है, विशेष करके मनु-ष्यको वहां प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है।

भीष्म बोले, अनन्तर उस ब्राह्मणने काम, क्रोध, निद्रा, तन्द्रा, लोभ, मद और आलसको दूर करके कितने ही पुरुषोंको स्थित देखा। उस समय कुण्डधार बोले, इन्हीं सब लोगोंके जरिये स्वर्गका द्वार संरुद्ध होरहा है, क्योंकि मनुष्योंसे देवताओंको भय हुआ करता है। उक्त द्वारको रुद्ध करनेवाले दैव बाक्यके अनु-सार सब प्रकारसे विघ्न उत्पन्न करते हैं; देव-ताओंके जरिये बिना अनुज्ञात हुए कोई पुरुष धार्म्मिक नहीं होता, इस समय तुम तपस्याके सहारे राज्य और धनदान करनेमें समर्थ हुए हो।

भीष्म बोले, अनन्तर वह धर्म्मात्मा ब्राह्मण सिर झुकाके कुण्डधारके चरणपर गिरा और उनसे कहा, आपने मेरे ऊपर बहुत ही कृपा की है। पहले मैंने काम और लोभके वशमें होकर आपके स्नेहको न जानके जो असूया की है, आप मेरे उस अपराधको क्षमा करिये, कुण्डधारने उस द्विजवरसे "मैंने क्षमा किया," ऐसा कहके दोनों भुजाओंसे उसे आलिङ्गन करके उस ही स्थानमें अन्तर्हित हुए। ब्राह्मण भी उस समय कुण्डधारकी कृपासे तपस्याके जरिये सिद्धि प्राप्त करके सब लोकोंमें विचरने लगा। उसने आकाश मार्गमें गमन, सङ्कल्पित विषय सिद्धि और धर्म्म शक्ति तथा योगसे जो परमगति मिलती है, वह सब प्राप्त की थी। देवता, ब्राह्मण साधु लोग, यक्ष, मनुष्य और

चारण गण इस लोकमें धार्म्मिकोंका ही सत्कार किया करते हैं। धनवाले तथा भोगाभिलाषी लोगोंका कोई कभी भक्तिके सहित सत्कार नहीं करता। तुम्हारी बुद्धि जब धर्म्ममें रत हुई है, तब देवता लोग तुम्हारे ऊपर अवश्य ही भलीभांति प्रसन्न हैं, धनमें सुखका लेशमात्र नहीं है, धर्म्म ही परम सुख हुआ करता है।

२७० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! अनेक प्रकारके यज्ञ और तपस्याका फल चित्तशुद्धि अथवा ईश्वर प्रीति है, इसलिये धर्म्म वा स्वर्ग फलके निमित्त विनियुक्ति यज्ञ कैसा है।

भीष्म बोले, यज्ञके लिये जो उञ्छवृत्ति ब्राह्मणका प्राचीन इतिहास नारद मुनिके जरिये वर्णित हुआ था, इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप उसे ही वर्णन करता हूं।

नारदमुनि बोले, धर्म्म प्रधान विदर्भ राज्यमें उञ्छवृत्ति नाम कोई ब्राह्मण था; वह यज्ञरूपी भगवान् विष्णुकी पूजा करनेके लिये अत्यन्त समाहित हुआ। उस समय सावां धान्य भक्षणीय था, सूर्य्यपर्णी और सुवर्चला शाक स्वाभाविक तीते और विरस होनेपर भी उसके तपोप्रभावसे स्वादिष्ट हुए थे। हे शत्रु तापन! उसने वनके बीच सब प्राणियोंकी अहिंसाके जरिये सिद्धिलाभ करके फल मूलके सहारे स्वर्ग साधन यज्ञ किया था। पुष्करमालिनी नाम उसकी एक साध्वी भार्य्या थी; वह सदा व्रत करनेसे अत्यन्त कृषित हुई थी; पतिको हिंसामय यज्ञ करता हुआ जानके वह यज्ञकी कुछ भी अनुकूलता न करनेसे स्वामीके जरिये यज्ञपत्नी रूपसे यज्ञ स्थानमें लायी गई, उस समय पत्नी पतिके शापभयसे अत्यन्त डरकर उसके स्वभावकी अनुवर्त्तिनी हुई। स्वयं गलित मयूर पुच्छसे उसका वस्त्र विस्तारित था, यज्ञ कामना न रहनेपर भी पतिकी आज्ञाके वशमें होके उसने उस समय यज्ञ किया था; सदंशमें उत्पन्न होकर यदि कोई भार्य्याका अनादर कर स्वयं यज्ञ करे, तो वह अधार्म्मिक होता है, इस ही लिये उन्होंने सपत्निक होकर यज्ञ किया था। उस वनमें निकटमेंही सहवासिक नाम एक मृग था। वह उस उञ्छवृत्तिके निकट आके बोला तुमने अत्यन्त दुष्कर कर्म्म किया है, मन्त्र और अङ्गहीन होकर यदि यह यज्ञ विकृत हो, तो तुम मुझे अग्निमें डालकर आनन्दित होके स्वर्गमें जाओ। अनन्तर सवितृमण्डलकी अधिष्ठात्री देवी सावित्री उस यज्ञमें स्वयं प्रकट होकर "मेरे निमित्त इस पशुको अग्निमें होम करो" ऐसा वचन कहनेपर उस ऋषिने उन्हें उत्तर दिया; "मैं सहवासीका वध न कर सकूंगा" सावित्री ऐसा उत्तर पाके निवृत्त होकर यज्ञकी अग्निमें प्रविष्ट हुई। बोध होता है, यज्ञमें कुछ विघ्न है, वा नहीं, उसे जाननेके लिये उन्होंने रसातलमें प्रवेश किया। तब मृग फिर उस बद्धाञ्जलि सत्य संज्ञक उञ्छवृत्ति ऋषिके समीप अपनेको अग्निमें होम करनेकी प्रार्थना की। सत्य ऋषिने हरिनका शरीर स्पर्श करके उसे गमन करनेकी आज्ञा दी। हरिन उनकी आज्ञाके अनुसार आठ पग जाके फिर निवृत्त होके बोला, हे सत्य! तुम्हारा मङ्गल हो, तुम मेरी हिंसा करो, मैं मरके सद्गति पाऊंगा; मैं तुम्हें दिव्य नेत्र देता हूं। उससे तुम रमणीय अप्सराओं और महानुभाव गन्धर्व्वोंकी विचित्र विमानोंपर देखो। अनन्तर सत्य-संज्ञक ऋषि 'मुझे ऐसा ही सुख हो' इस ही प्रकार स्पृहयालु नेत्रसे पशुओंके सहित यजमानोंकी स्वर्ग-गतिको बहुत समय तक देखकर और हरिनको स्वर्गाभिलाषी समझके 'हिंसा करनेसे ही स्वर्गवास होगा,' ऐसा निश्चय किया। धर्म्मने किसी कारणसे अनेक

वर्षतक हरिनका रूप धरके उस बनमें वास किया था। उन्होंने उसकी ही निष्कृतिके लिये आत्माको मृगत्वसे मोचन किया, नहीं तो हिंसा कभी यज्ञकी समीचीन विधि नहीं है। "पशु वध करके स्वर्ग लाभ करूंगा।" ऋषिके ऐसे अभिप्रायसे ही महत् तपस्या पूर्ण रीतिसे नष्ट हुई; इसलिये हिंसा कदापि यज्ञ विषयमें हित कारिणी नहीं है। अनन्तर भगवान् धर्म्मने स्वयं उस ऋषिको यज्ञ याजन कराया, ऋषि भी तपस्याके सहारे हिंसामय यज्ञमें अनभिलाषिणी पुष्करधारिणी पत्नीके सहित परम समाधिको प्राप्त हुए; अहिंसामय धर्म्म ही सब फलोंको देनेवाला है, हिंसा-धर्म्म स्वर्गप्रद रूपसे हितकर मात्र है। ब्रह्मवादी पुरुष जिस धर्म्मका आचरण करते हैं, मैंने तुम्हारे निकट उस ही सत्य धर्म्मका विषय वर्णन किया।

२७१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मनुष्य किस प्रकार पापात्मा होता है। किस भांति धर्म्माचरण करता है। किससे निर्वेद लाभ करता है, और किस तरहसे ही मोक्ष लाभ किया करता है।

भीष्म बोले, हे भरत कुलतिलक! सब धर्म्म ही तुम्हें विदित है, इस केवल मर्य्यादाके निमित्त तुम प्रश्न करते हो; इसलिये निर्व्वेदके सहित मोक्ष, पाप और धर्म्मके विषयको सुनो। शब्दादि विषय-पञ्चकके अर्थको जानके मनुष्य इच्छानुसार उसमें प्रवृत्त होता है, उन सब विषयोंके प्राप्त होनेपर उसमें काम अथवा द्वेष उत्पन्न होता है। अनन्तर मनुष्य विषयके निमित्त यत्नवान् होकर महत् कर्म्म आरम्भ करता है, और अभिलषित रूप और गन्धोंको बार बार सेवन करनेकी इच्छा किया करता है। क्रम क्रमसे उसमें राग द्वेष और मोहकी उत्पत्ति होती है। जो पुरुष लोभ मोहमें अभिभूत और राग द्वेषमें आसक्त हुआ है; उसकी बुद्धि धर्म्ममें प्रवेश नहीं करती, वह छल पूर्व्वक धर्म्माचरण किया करता है, कपटताचरण पूर्व्वक धर्म्मानुष्ठान करता है, और कपटतासे ही धन प्राप्त करनेकी इच्छा किया करता है। हे कुरुनन्दन! कपटताके जरिये धनप्राप्ति सिद्ध होनेसे उसहीमें बुद्धि निवेश करता है; पण्डितों और सुहृदोंके निवारण करने पर भी पित्रादि द्रोहरूपी पापाचरण करनेकी इच्छा किया करता है; अहार और व्यवहार विषयमें लज्जा छोड़के सुखी होता है; इस ही प्रकार न्यायानुगत विधि बोधित उत्तर देनेमें लज्जित नहीं होता। हे भारत! वैसे मनुष्योंके राग मोह जनित कायिक वाचिक, और मानसिक तीनों प्रकारके अधर्म्म वर्द्धित हुआ करते हैं। वह सदा दूसरेके अनिष्टकी चिन्ता किया करता है, जिससे दूसरेका अनिष्ट हो, वैसा ही वचन कहता है, और दूसरोंकी बुराई किया करता है। साधु पुरुष उस अधर्म्ममें प्रवृत्त मनुष्यके दोषोंको देखते हैं, और उसके समान पापाचारी पुरुष वैसे मनुष्यके सहित बन्धुताबन्धन किया करते हैं; ऐसा पापाचारी पुरुष जब इस लोकमेंही सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, तब परलोकमें उसे सुख कहां है; यहांतक जो कुछ कहा, उसे पापात्माका लक्षण जानो। अब धर्म्मात्माका लक्षण कहता हूं, उसे मेरे समीपमें सुनो। जो लोग दूसरोंके हितकर कार्य्योंको धर्म्म समझते हैं, वह कल्याण लाभ करते और कल्याणकारी धर्म्मके सहारे अभिलषित गन्तव्य स्थानमें गमन किया करते हैं। जो लोग बुद्धिसे पहले ही ऊपर कहे हुए दोषोंको अवलोकन करते हैं, और सुख दुःखके विचारमें चतुर होकर साधुओंकी सेवा किया करते हैं; उन्हें साधु सदाचार और अभ्यास निबन्धनसे ज्ञान, बुद्धि तथा धर्म्ममे रति होती

है, और वे लोग धर्म्मको ही उपजीव्य करके जीवन व्यतीत किया करते हैं। अनन्तर वे धर्म्मसे धन प्राप्त करनेमें मन लगाते हैं और जिसमें सब गुण देखते हैं, उसहीका मूल सींचा करते हैं; इस ही प्रकार व्यवहार करनेसे मनुष्य धर्म्मात्मा होते और साधु मित्र लाभ करते हैं; वे लोग मित्र और धन लाभ निबन्धनसे इस लोक तथा परलोकमें आनन्दित होते हैं।

हे भारत! शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध विषयमें मनुष्य जो संकल्प सिद्धि लाभ करता है, उसे ही पण्डित लोग धर्म्मका फल कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! वैसे मनुष्य धर्म्म फल प्राप्त करके हर्षित नहीं होते, वह तृप्त न होकर ज्ञाननेत्रके सहारे वैराग्य लाभ करते हैं। प्रज्ञाचक्षु मनुष्य जिस समय काममें और शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्धमें अनुरक्त होते हैं, उस समय उनका चित्त चिन्ताके वशमें नहीं होता। वे कामसे रहित होते हैं। परन्तु धर्म्मको परित्याग नहीं करते। वे सब लोकोंको नाशमान देखके धर्म्मफल स्वर्गादिके परित्याग विषयमें यत्नवान् होते हैं। अनन्तर वे लोग उपायके अनुसार मोक्षके लिये अनुष्ठान करके धीरे धीरे निर्व्वेद लाभ करते और पापयुक्त कर्म्म परित्याग किया करते हैं। इस ही प्रकार मनुष्य धर्म्मात्मा होते और परम मोक्ष पाते हैं। हे तात भारत! तुमने जो पाप धर्म्म, मोक्ष और निर्व्वेदका विषय मुझसे पूछा था, वह सब मैंने तुम्हारे समीप कहा। हे युधिष्ठिर! इसलिये तुम सब अवस्थामें ही धर्म्ममें प्रवृत्त रहना। हे कौन्तेय! जो लोग धर्म्म-पथमें निवास करते हैं, उन लोगोंको शाश्वती सिद्धि प्राप्त होती है।

२७३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने कहा है, कि उपायके अनुसार मोक्ष होती है, अनुपायके जरिये मोक्ष नहीं होती; परन्तु वह कौनसा उपाय है, उसे मैं विधिपूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे पापरहित महाप्राज्ञ! तुम निपुण भावसे सदा जिस उपायके जरिये मोक्षकी खोज किया करते हो, तुममें ही उसका निदर्शन समुचित होता है, अर्थात् मोक्षके उपाय विषयमें निज बुद्धि ही साक्षी देती है। घट बनानेके समय जैसी बुद्धि होती है, घट उत्पन्न होने पर वह नहीं रहती अर्थात् साध्य विषयमें चिकिर्षा बुद्धि उत्पन्न होती है; परन्तु सिद्धवस्तु ब्रह्मविषयमें आवरणका अपगम होनेपर ज्ञानमात्र स्थित रहता है; इस लिये मोक्ष धर्म्म विषयमें प्रकाशकी भांति वस्तुतत्वके अभिव्यञ्जक शम दम आदि निवृत्ति धर्म्ममें दूसरे कोई प्रवृत्ति धर्म्म कारण नहीं होते। यज्ञ आदि कर्म्म निष्काम पुरुषोंकी चित्त शुद्धि करके निवृत्ति-धर्म्मके हेतुमात्र हुआ करते हैं। पूर्व्व-समुद्र-गामी पथ कभी पश्चिम समुद्रमें गमन नहीं करता; इसलिये तुम एकमात्र मोक्षके ही मार्गको विस्तारपूर्व्वक मेरे समीप सुनो। धीर पुरुष क्षमाके जरिये क्रोधको नष्ट करे, संकल्प वर्ज्जित होके कामको त्यागे और आलस त्यागके सात्विक धर्म्म भगवद्ध्यान आदिसे निद्राको नष्ट करनेमें समर्थ होवे; सावधानताके जरिये लोकापवाद भयकी रक्षा करे; 'त्वं' पदार्थके अनुशीलनसे श्वास निरोध करे और धैर्य्यसे इच्छा, द्वेष और वनिताभिलाषको निवृत्त रखे; तत्ववित् पुरुष तत्वाभ्यासके जरिये भ्रम, संमोह और अनेक कोटिके संशयोंको परित्याग करे और ज्ञान अभ्यासके सहारे निद्रा और प्रतिभा अर्थात् अननुसन्धान और अन्यानुसन्धान परिवर्ज्जित करे; दाह आदिसे अनुत्पादक हित, जीर्ण और परिमित भोजन आदिके जरिये श्लेष्म अजीर्ण प्रभृति उपद्रव तथा ज्वर वा अतीसार आदि रोगोंको जय करे; सन्तोष,

हेतु, लोभ, मोह और तत्वदर्शन अर्थात् सब विषयोंके अनर्थक रूप दर्शन निबन्धन विषयोंको जय करे, करुणासे अधर्म्म और प्रतिपालनके जरिये धर्म्मको जय करे। उत्तरकालके जरिये आशाको जीते और अभिलाष त्यागकर अर्थको जय करनेमें प्रवृत्त होवे। धीर पुरुष विषयोंकी अनित्यताके निमित्त स्नेह, वायु निग्रहके जरिये क्षुधा, करुणासे निज चित्तकी समुन्नति, परितोषसे तृष्णा, उद्योगसे आलस और वेदमें विश्वास करके विपरीत तर्कोंको जय करे। मौनावलम्बनसे बहुत बोलना और पराक्रमके जरिये भय परित्याग करे, बुद्धिसे वचन और मनको स्थिर करे; ज्ञाननेत्र अर्थात् शुद्ध 'त्वं' पदार्थके बोधसे उस बुद्धिको संयम करे। ज्ञान अर्थात् शुद्ध "त्वं" पदार्थको आत्मबोधके जरिये अर्थात् यह आत्मा ब्रह्म है ऐसे ज्ञानके जरिये संयत करे और बुद्धिवृत्तिको परम चैतन्य प्रकाशके जरिये नियमित करे, अर्थात् इन्द्रियोंको मनमें मनको बुद्धिमें बुद्धिको 'त्वं' पदार्थ में, त्वं पदार्थको ब्रह्माकार वृत्तिमें और उस वृत्तिको विशुद्ध आत्मामें क्रमसे लीन करके निज रूपमें निवास करे। ऋषि लोग जो पञ्चयोग दोषोंको जानते हैं, उन्हें नष्ट करके प्रशान्त और पवित्र कर्म्मवाले मनुष्योंको इसे अवश्य जानना चाहिये।

योग साधनके लिये यत-वाक्य होके काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न, इन पांचों दोषोंको त्यागके परमात्माकी सेवा करे; ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, वचन, लज्जा, सरलता, क्षमा, पवित्रता, अहारशुद्धि और इन्द्रिय-संयम, इन सबसे तेजकी वृद्धि तथा पापका नाश होता है। जो उक्त विधिके अनुसार आचरण करते हैं, उनके सब संकल्प सिद्ध होते और विज्ञानमें प्रवृत्ति हुआ करती है। वे पापरहित, तेजस्वी लघु भोजन करनेवाले जितेन्द्रिय मनुष्य काम क्रोधको वशमें करके ब्रह्मपदकी प्राप्तिके लिये अभिलाष करें। वेदान्त श्रवण आदि अभ्यास निबन्धनसे अमूढ़त्व, वैराग्यसे असङ्गत्व सन्तोष और क्षमाके जरिये दृढ़ता जनित काम क्रोधका त्याग परिपूर्ण कामनाके हेतु अदीनता, दर्प और अहंकारहीनता, निर्भयत्व निबन्धनसे अनुद्वेग और सदा किसी निर्द्दिष्ट स्थानमें अनवस्थिति, येही मोक्षके मार्ग हैं; ये मार्ग प्रसन्न निर्म्मल और पवित्र हैं, और कामना वा अकामनासे शरीर मन तथा वचनके नियमोंको भी मोक्षका मार्ग कहा जाता है। मोक्ष साधनमें प्रवृत्त पुरुषको निष्काम योग अवश्य करना चाहिये।

२७२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, असित देवल और नारदके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्राचीन लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं। बुद्धिमान् मनुष्योंमें मुख्य वृद्ध देवल मुनिको सुखसे बैठा हुआ जानकर नारद मुनिने जीवोंकी उत्पत्ति और लयका विषय पूछा।

नारदमुनि बोले, हे ब्रह्मन्! यह दृश्यमान् स्थावर जङ्गमात्मक जगत् किससे उत्पन्न हुआ है, और प्रलयके समय किसमें जाके लीन होता है। आप मेरे निकट उसे ही कहिये।

असित मुनि बोले, परमात्मा निखिल प्राणियोंकी बुद्धि-वासनासे प्रेरित होकर कर्म्मोद्भवके समय जो आकाश आदिकोंसे जरायुजादि जीवोंको उत्पन्न करता है भूतचिन्तक मनीषी लोग उन्हें ही पञ्चभूत कहा करते हैं। अधर्म्ममें रत, अधर्म्म त्यागनेकी इच्छा करनेवाले, धर्म्मारम्भी और धर्म्ममें रत, कलि, द्वापर, त्रेता तथा सत्य संज्ञक चतुर्युगात्मक काल बुद्धिसे प्रेरित होकर पञ्च महाभूतोंसे सब जीवोंको उत्पन्न करता है। यह काल, बुद्धि और पञ्चमहाभूत, चैतन्यस्वरूप ईश्वर तथा अचेतन

प्रकृति, इन सबसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु है,— जो लोग ऐसा कहते हैं, उनके वचन अत्यन्त अलीक हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे नारद! इन पञ्च महाभूतोंको नित्य निश्चल और स्थिर जानो, ये अत्यन्त महत् तेजराशि स्वरूप हैं, काल स्वभाविक ही इनमें षष्टमरूपसे कहा जाता है। आकाश, जल, पृथ्वी, वायु और अग्नि इन पञ्चभूतोंसे पृथक् दूसरा कोई पदार्थ नहीं था, इसमें सन्देह नहीं है। ऊपर कहे हुए पञ्चभूतोंसे पृथक् दूसरा कुछ भी नहीं है, जो लोग ऐसा कहते हैं, वे कोई प्रमाण वा युक्ति अवलम्बन नहीं करते,—यह निःसन्दिग्ध है। सब कार्य्योंके अनुगत उक्त पञ्चभूत और काल जिसके कार्य्य हैं, उसे ही असत् शब्द वाच्य जानो। पञ्च महाभूत, काल अर्थात् जीव, भावनापूर्व्वक संस्कार और अज्ञान ये अष्टभूत अनादि वा अखण्डरूपसे विद्यमान होरहे हैं; ये ही स्थावर जङ्गम सब भूतोंकी उत्पत्ति और लयके स्थान हैं। स्थावर जङ्गम सब जीव उक्त अष्टभूतोंसे उत्पन्न होकर उन्हींमें लीन होजाते हैं। उक्त भूतोंको अवलम्बन करके सब जन्तु पांच प्रकार विनष्ट हुआ करते हैं, जीवोंका शरीर भूमिमय है, कान आकाशमय है, नेत्र अग्निमय, है, वेग वायुमय है और रुधिर जलमय हुआ करता है। नेत्र, नासिका, कान, जिह्वा और त्वचा, ये पांचो इन्द्रियां इन्द्रिय विषय शब्द आदि ज्ञानके द्वारस्वरूप हैं ऐसा कवि लोग कहा करते हैं। देखना, सुनना, सूंघना, छूना और चखना; ये पांचो गुण पञ्च इन्द्रियोंमें युक्तिके अनुसार पांच प्रकारसे निवास करते हैं। रूप, गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द, ये पांचो गुण पञ्च इन्द्रियोंके द्वार हैं, पांच प्रकारसे इनकी प्राप्ति हुआ करती है इन्द्रियोंके सहारे रूप, गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द, ये सब गुण मालूम नहीं होते; परन्तु क्षेत्रज्ञ अर्थात् विज्ञानात्मा इन्द्रियोंके जरिये इन सब गुणोंका ज्ञान किया करता है। इन्द्रियोंसे चित्त श्रेष्ठ है, चित्तसे मन उत्तम है, मनसे बुद्धि उत्तम है और बुद्धिसे क्षेत्रज्ञ परम श्रेष्ठ है। जीव पहले इन्द्रियोंके जरिये सामान्य रीतिसे पृथक् पृथक् विषयोंका ज्ञान करता है; फिर मनसे उन विषयोंका विचार करके बुद्धिसे निश्चय किया करता है। अध्यात्मविचार करनेवाले महर्षि लोग चित्त, श्रोत्रादि पांचो इन्द्रिय, मन और बुद्धि, इन आठोंको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं; हाथ, पैर, गुदा, मेहन और मुख, इन पांचोंको कर्म्मेन्द्रिय कहा करते हैं, इसे सुनो। जल्पना और अहार साधनके निमित्त मुखको इन्द्रिय कहा जाता है, दोनों पांव गमनेन्द्रिय हैं, दोनों हाथ कार्य्य करनेकी इन्द्रिय हैं और गुदा तथा उपस्थ मल मूत्र और कामिक उत्सर्गके हेतु इन्द्रिय रूपसे वर्णित हुआ करती हैं। पञ्च इन्द्रियोंके बीच बल षष्टरूपसे माना जाता है; ज्ञान, चेष्टा और इन्द्रियोंके सब गुणोंको शास्त्रके अनुसार मैंने वर्णन किया।

जब इन्द्रियां श्रमके कारण निज कर्म्मोंसे विरक्त होती हैं, उस समय इन्द्रियोंके सम्यक रूपसे परित्याग निबन्धनसे मनुष्य निद्रित हुआ करते हैं; इन्द्रियोंके शान्त होनेपर यदि मन शान्त न होकर विषय सेवन करे, तो जानना चाहिये, कि उसे ही स्वप्न दर्शन कहा जाता है। जाग्रत समयके सात्विक, राजसिक और तामसिक भोगप्रद कर्म्मयुक्त कर्म्मोद्भावक सब भाव स्वप्नकालमें भी प्रकाशित हुआ करते हैं। आनन्द ऐश्वर्य्य, ज्ञान और परम वैराग्य, ये सब सात्विकी वृत्ति हैं, सतोगुण अवलम्बन करनेवाले पुरुषोंकी स्मृत वासना निमित्तीभूत उन आनन्द आदि भावोंकी स्वप्न समयमें भी अवलम्बन करती है, अर्थात् सात्विक पुरुष जाग्रद्वासनाके हेतु भूत आनन्द आदिको स्वप्नकालमें भी स्मरण किया करता है। कर्म्म गतिका-अनुसारिणी वासना सात्विक, राजसिक, और ताम-

सिक जीवोंके बीच जो कोई जीव जाग्रत अवस्थामें जिस भावसे संयित रहते हैं, स्वप्नकालमें भी उस ही भावको स्मरण करा देती है, अर्थात् जाग्रत अवस्थामें किये हुए कर्म्मोंके संस्कार जनित वासनाके प्रभावसे स्वप्नकालमें भी उक्त सब भाव आलोचित होते हैं; इसलिये जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थामें ही तुल्य भाव हैं परन्तु सुषुप्ति अवस्थामें मनके अभावसे समस्त कल्पनाका अभाव होता है, इससे उस अपुनरावृत्ति स्वभाव-नित्य सुषुप्तिको ही मुक्ति कहा जाता है।

पूर्व्वोक्त चौदह इन्द्रियों अर्थात् पञ्चकर्म्म इन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय बलात्मक प्राण, चित्त, मन, बुद्धि और सत्, रज, तमोगुण, इन सत्तरहोंको अवलम्बन करके भोक्ता जीव शरीरमें निवास करता है; अथवा शरीरधारियोंके ऊपर कहे हुए सब गुण शरीरके सहित संयित होते हैं; शरीरका वियोग होनेपर वे शरीरयुक्त नहीं रहते; पश्चान्तरसे यह पञ्चभौतिक शरीर पञ्चभूतोंकी समष्टिमात्र है; इसमें एकमात्र अनुभव और भोक्ता शरीरके सहित पूर्व्वोक्त अठारह गुण निवास करते हैं। उक्त उन्नीस गुण जठरानलके सहित बीस होकर पञ्चभौतिक शरीरके आश्रित रहते हैं। इन बीस गुणोंके अतिरिक्त इक्कीसवां कोई महान् पदार्थ प्राणके सहित इस शरीरको धारण करता है और उसहीके प्रभावसे शरीरका नाश हुआ करता है। जैसे घटनाशके विषयमें मुद्गर निमित्तमात्र है, पुरुष ही घट भेद किया करता है, वैसेही देह धारण वा देहनाशमें वायु निमित्त मात्र है, महान् पदार्थ ही उसका कर्त्तृपदवाच्य है। जैसे घट आदि वाह्य पदार्थ उत्पन्न होके कुछ समयके अनन्तर विनष्ट होते हैं, वैसेही जीव पुण्य पापोंके शेष होनेपर पञ्चत्वको प्राप्त होता है। कालक्रमसे फिर सञ्चित पुण्य पापके जरिये प्रेरित होकर कर्म्मसम्भव शरीरमें प्रवेश करता है। जैसे मनुष्य शीर्ण गृहसे गृहान्तरमें गमन करता है, वैसेही जीव काल प्रेरित होकर अविद्याकाम कर्म्मके जरिये देहान्तर सिद्ध करता हुआ एक शरीरको छोड़के दूसरा शरीर धारण किया करता है। कृतनिश्चय बुद्धिमान् लोग देह सम्बन्धी मरण आदिके विषयमें शोक नहीं करते, देह और पुत्रादिकोंके सहित आत्माका सम्बन्ध न रहने पर भी भ्रमवशसे सम्बन्ध देखनेवाले मूर्ख लोग मरन आदि निबन्धनसे शोक किया करते हैं। यह जीव किसीका भी नहीं है, और इसका भी कोई नहीं है; जीव सदा शरीरमें सुख दुःख भोगते हुए अकेला ही निवास करता है। जीवकी जन्म मृत्यु नहीं होती, कालक्रमसे तत्वज्ञानके जरिये कर्म्म-फल नष्ट होने पर भी देह परित्याग करनेसे मोक्ष प्राप्त हुआ करती है। जीव पुण्य पापमय शरीर व्यतीत करते हुए कर्म्म-क्षयनिबन्धनसे शरीर नष्ट होने पर फिर ब्रह्मभाव लाभ करता है। पुण्यपाप नाशके निमित्त सांख्य ज्ञान विहित हुआ करता है; इसलिये पुण्य-पाप नष्ट होनेपर पण्डितलोग जीवको ब्रह्मभावसे परमगति अवलोकन करते हैं।

२७४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मैं अत्यन्त पापशील और निठुर हूं; क्यों कि धनके लिये पिता, भ्रातापुत्र, पौत्र स्वजन और सुहृदोंका नाश किया है। अर्थसे जो तृष्णा उत्पन्न हुआ करती है, हमने उसके वशमें होकर पाप कार्य्य किया है, इस समय उस तृष्णाको किस प्रकार निवृत्त करूं।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें जिज्ञासु माण्डव्यके निकट विदेहराजके कहे हुए इस पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। विदेहराजने कहा था, मेरा कुछ भी

नहीं है, इसीसे मैं परम सुखसे जीवन व्यतीत करता हूं; सारी मिथिला नगरीके भस्म होने पर भी मेरा कुछ न जलेगा। ब्रह्मलोक पर्य्यन्त सब समृद्ध विषय विवेकियोंको अत्यन्तही दुःख स्वरूप है, समृद्धिशून्यता सदा अज्ञानी पुरुषोंको मोहित किया करती है। इस लोकमें जो कुछ कामसुख है, अथवा जो कुछ दिव्य महत् सुख देखा जाता है, वह तृष्णाक्षयजनित सुखके सोलह अंशका एक अंश भी नहीं है। काल-क्रमसे वर्द्धित गऊकी सींग जैसे वृद्धिको प्राप्त होती है, वैसेही बढ़ते हुए वित्तके सहित तृष्णाकी वृद्धि हुआ करती है। जिस समय जिस किसी वस्तुमें ममता उत्पन्न होती है, उसका नाश परितापका हेतु हुआ करता है। कामका अनुरोध कर्त्तव्य नहीं है, काममें रति होनी ही दुःखको मूल है; धर्म्म और अर्थ प्राप्त होने पर उसे उपभोग करना उचित है, और कामना उपस्थित होने पर उसे परित्याग करना चाहिये। विद्वान पुरुष सब भूतोंमें अपने सहित समान उपमा धारण करें और कृतकृत्य तथा शुद्ध चित्त होकर सर्व्वसङ्ग परित्याग कर-नेमें यत्नवान् हों। वे लोग सत्य, मिथ्या, शोक, हर्ष, प्रिय, अप्रिय, भय और अभय परित्याग करके प्रशान्त वा निरामय होवें। दुर्म्मति पुरु-षोंसे जो अत्यन्त दुस्त्यज है, पुरुषके जीर्ण होने पर भी जो जीर्ण नहीं होती, जो प्राणियोंकी प्राणान्तिक रोगरूपी है, उस तृष्णाको जो लोग परित्याग करते हैं, वेही सुखभागी होते हैं। धर्म्मात्मा पुरुष निज चरित्रको कलंकरहित चन्द्रमाकी भांति निरामय देखके इस लोक और परलोकमें परम सुखसे कीर्त्ति लाभ करते हैं, द्विजश्रेष्ठ माण्डव्य विदेहराजके ऊपर कहे हुए वचनको सुनके प्रसन्न हुए और उनके वच-नका सम्मान करके मोक्षपथ अवलम्बन किया।

२७५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! इस सब प्राणियोंके क्षय करनेवाले समयके बीतते रहने पर किस प्रकार कल्याणका आसरा करना उचित है, आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें पुराने लोग पिता-पुत्र सम्वादयुक्त जिस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं उसे सुनो। हे पृथापुत्र! वेदाध्ययनमें रत किसी ब्राह्मणके मेधावी नाम एक बुद्धिमान् पुत्र था, मोक्ष-धर्म्मकी व्याख्यामें निपुण, लोक तत्वको जानने वाला वह पुत्र वेदविहित कार्य्योंमें रत पितासे प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुआ।

पुत्र बोला, हे तात! मनुष्योंको परमायु शीघ्र नष्ट हुआ करती है, इसलिये धीर पुरुष किस विषयको मालूम करके कार्य्य करें? आप फल सम्बन्धको अतिक्रम न करके विस्तारपू-र्व्वक मेरे समीप उसे वर्णन करिये; जिसे सुनके मैं धर्म्माचरण करनेमें समर्थ हूंगा।

पिताने कहा, हे पुत्र! ब्रह्मचर्य्य अवलम्बनके जरिये सब वेदोंको पढ़कर पितृलोक पानेके लिये पुत्र कामना करे, अनन्तर विधिके अनुसार अग्नि स्थापित करके यज्ञकार्य्य पूर्ण करते हुए गमन करके मौनव्रती होनेके अभिलाषी होवे।

पुत्र बोला, हे पिता! लोकोंके इस प्रकार सब भांतिसे ताड़ित होने तथा घिरे रहने और निरन्तर अमोघापात होनेपर भी आप निर्व्वि-कार चित्तसे धीरकी तरह क्या कह रहे हैं।

पिताने कहा, हे पुत्र! सब लोक किस प्रकार ताड़ित तथा किससे घिरे हैं, और अमोघा क्या है, जो गिर रही है, क्या तुम मुझे भय दिखाते हो।

पुत्र बोला, सब लोक मृत्युसे ताड़ित और जरासे घिरे हुए हैं, और परमायु हरणके कारण अमोघारात्रि प्रतिदिन आती जाती है, इसलिये उसे आप क्यों नहीं जान सकते हैं। जब यह जानता हूं कि यद्यपि मृत्यु इस

स्थानमें उपस्थित नहीं है, परन्तु प्रति क्षण प्राणियोंको आक्रमण करती है; तब मैं ज्ञानावरणसे अनावृत होके किस प्रकार व्यवहार करते हुए समय व्यतीत करूंगा, जब कि प्रति रात्रिके बीतनेपर सवेरा होते ही आयुक्षीण होती है, तब बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि दिनको निष्फल समझे। कामनाओंके पूर्ण न होते ही मृत्यु मनुष्योंको आक्रमण करती है; इसलिये थोड़े जलमें रहनेवाली मछलियोंकी तरह मृत्युके आक्रमणके समयमें कौन पुरुष सुख करनेमें समर्थ होगा। फूल गूंथनेकी तरह जब मनुष्य लोग काम्य कर्म्मोंके भोगनेके निमित्त तत्पर होते हैं, तब जैसे बाघिन भेड़के बच्चोंको ग्रहण करके अनायास ही चली जाती है, वैसे ही मृत्यु उन्हें ग्रहण करके प्रस्थान करती है। जो कुछ कल्याणसाधक कर्म्म हैं, उसे आज ही समाप्त करना उचित है। यह समय जिसमें तुम्हें अतिक्रम न करे, कर्त्तव्य कार्य्योंके पूरा न होते ही मृत्यु मनुष्योंको आक्रमण किया करती है। जो कल्ह करना होगा उसे आज ही करना योग्य है, अपरान्हके कर्त्तव्य कर्म्मोंको पूर्व्वान्हमें ही करना चाहिये। मनुष्योंके कर्त्तव्य कर्म्म पूरे हुए हैं, वा नहीं; उसके लिये मृत्यु कभी उन्हें आक्रमण करनेमें उपेक्षा नहीं करती। मनुष्य युवा अवस्थामें ही धर्म्मशील होवे, क्यों कि जीवनका समय अत्यन्त अनित्य है; आज किसका मृत्यु काल उपस्थित होगा, इसे कौन कह सकता है। धर्म्म-कार्य्य करनेसे इसलोकमें कीर्त्ति और परलोकमें अनन्त सुख मिलता है।

मनुष्य लोग मोहमें फंसके पुत्र कलत्र आदिके लिये कर्त्तव्य वा अकर्त्तव्य कार्य्योंको करके उनका पालन करते हैं, जैसे शेर सोये हुए हरिनको पकड़के चल देता है, वैसे ही पुत्रवान् पशुओंसे युक्त संसारमें फंसे हुए मानस मनुष्योंको मृत्यु ग्रहण करती हुई प्रस्थान करती है। जो पुरुष काम भोगसे तृप्त नहीं हुआ और पुत्र कलत्र आदि परिवारोंकी अधिक कहांतक कहें, आत्माको भी वञ्चित करके धन सञ्चय किया करता है, उसे मृत्यु इस तरह आक्रमण करती है, जैसे शार्दूल भेड़के बच्चे पकड़ता है। 'यह कार्य्य किया है, इसे करना होगा और दूसरे कार्य्य पूरे नहीं हुए'—इस प्रकारके वासना सुखमें आसक्त पुरुषोंको मृत्यु ग्रास किया करती है। जिस पुरुषने क्षेत्र आपण और भवनमें आसक्त होके किये हुए सब कर्म्मोंका फल नहीं पाया है, उसे भी मृत्युके वशमें होना पड़ता है। क्या निर्ब्बल, क्या बलवान्, क्या मूढ़, क्या पण्डित, क्या कादर, क्या साहसी, कोई क्यों न हो; कामनाके सब विषयोंको प्राप्त न होते ही होते मृत्यु उन लोगोंको ग्रहण करके गमन करती है। जरा, मरन, व्याधि और अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुए दुःख जब शरीरमें उपस्थित होरहे हैं, तब आप किस प्रकार अरोगीकी तरह निवास करते हैं। देहधारी जीवोंके जन्मते ही जरा मृत्यु उनके नाशके लिये उनका अनुगमन करती है; इसलिये स्थावर जङ्गम आदि उत्पन्न होनेवाली वस्तु मात्र इन दोनोंसे आक्रान्त होरही हैं। गांवमें बास करनेके लिये लोगोंकी जो अनुराग हुआ करता है, वह मृत्युका सुख स्वरूप है और जो अरण्य कहके विख्यात् है, ऐसी जनश्रुति है, कि वही इन्द्रियोंका विविक्त बासस्थान है। ग्राममें निवास करनेवालोंको अनुराग बन्धन रस्सीरूपी है; सुकृतवान् लोग उसे काटके गमन करते हैं, पापी पुरुष उसे नहीं काट सकते। मन, बचन और शरीरसे जो कभी प्राणियोंकी हिंसा नहीं करते, वे जीते और अर्थमें बाधा करनेवाले हिंसक जीव तथा चोरोंसे हिंसित नहीं होते। जरा-व्याधिरूपी मृत्युकी सेना जब आगमन करती है तब सत्यके अतिरिक्त कोई कभी उसे निवारण नहीं

कर सकता। क्यों कि उस सत्यमें ही अमरण रूपी अमृत सदा स्थित रहता है; इसलिये मनुष्य ब्रह्म प्राप्तिके निमित्त यम-नियमरूपी सत्यव्रतका आचरण करते हुए चिदाभासरूपी जीवके ऐक्यसाधन, सत्ययोगमें रत, वेदवाक्यमें श्रद्धावान् और सदा जितेन्द्रिय होकर सत्यके जरियेही मृत्युको जीते। सत्य और मृत्यु, ये दोनों शरीरमें स्थित हैं, उसमेंसे मनुष्य मोहके कारण मृत्युके वशमें होते हैं; और सत्यसे अमृतत्व लाभ करते हैं; इसलिये मैं अहिंसामें रत और काम क्रोधसे रहित होके सुख दुःखको समान जानके सत्यार्थी और कुशली होकर अमर्त्तकी तरह मृत्युको त्यागूंगा,। उत्तरायण कालमें निवृत्ति माग अभ्यासरूपी शान्ति यज्ञमें रत, दान्त, उपनिषदोंके अर्थ विचाररूप ब्रह्म यज्ञके अनुष्ठानमें अनुरक्त मननशील, प्रणव जप-रूपी वाक् यज्ञ, परब्रह्मका मननरूपी मानस यज्ञ और स्नान, पवित्रता तथा गुरु सेवा आदि कर्म्मयज्ञोंका अनुष्ठान करूंगा। मेरे समान बुद्धिमान् पुरुष पिशाचके निष्फलक्षेत्र यज्ञकी तरह हिंसासाध्य पशु वधके जरिये किस प्रकार यज्ञ करनेमें समर्थ होंगे। जिनके बचन, मन, तपस्या त्याग और योग ये पांचो सदा परब्रह्ममें परिणत होते हैं, वे परम पद प्राप्त करते हैं। विद्याके समान नेत्र, सत्यके समान तपस्या, रागके समान दुःख और सन्न्यासके समान दूसरा सुख नहीं है। मैं अपुत्र होकर भी आत्माके जरिये आत्मजरूपके उत्पन्न और आत्मनिष्ठ होऊंगा; पुत्र मेरा उद्धार न करेगा। एकाकिता, समता, सत्यता, सच्चरित्रता, मर्य्यादा दण्डविधान, सरलता और सब कार्य्योंमें आसक्ति हीनता, इन सबके समान ब्राह्मणोंके विषयमें और कुछ भी धन नहीं है। हे ब्रह्मन्। आपको जब अवश्य ही कालके ग्रासमें पड़ना होगा, तब फिर आपको धन, बन्धु और पुत्र कलत्रोंसे क्या प्रयोजन है। अन्तःकरणसे निष्ठावान होके आत्माको प्राप्त करनेकी इच्छा करिये; आपके पिता और पितामह आदि कहां गये हैं, उसे विचारिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! पिताने पुत्रका बचन सुनके जैसा किया था, तुम भी सत्य धर्म्ममें तत्पर होके वैसा ही अनुष्ठान करो।

२७६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, मनुष्य किस प्रकारके स्वस्व-भाव, कैसा आचरण, कैसा ज्ञान और किसका अवलम्बन करनेसे निश्चल निर्व्विशेष ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।

भीष्म बोले, मोक्ष धर्म्ममें रत पथ्य परिमित और पवित्र अन्नादि भोजन करनेवाले मनुष्य निश्चल निर्व्विशेष परमधाम पाते हैं। विवेकी पुरुष निज गृहसे निकलके लाभ हानिमें राग द्वेषसे रहित और मननशील होकर उपस्थित काम्य वस्तुओंमें निरपेक्ष होते हुए प्रवज्याश्रम अवलम्बन करें, नेत्र, मन, और वचनसे किसीको भी दूषित न करे, तथ किसीके प्रत्यक्ष वा परोक्ष दोषोंको किसीसे न कहे; सब लोगोंके बीच किसीको भी हिंसा न करे; सूर्य्यकी भांति केवल एक ही दिन एक स्थानमें विचरे यह मनुष्य जीवन पाके किसीके सङ्ग शत्रुता न करे; लोक निन्दाको सहन करे; किसीको उद्देश्य करके अहङ्कार प्रकाश न करे, लोग उसके विषयमें आक्रोश प्रकाश करें, तो वह उन लोगोंसे प्रिय वचन कहे और क्रोधित होने पर भी अनुकूल बचन कहै; जन समाजमें अनुकूल वा प्रतिकूल आचरण न करे; विपद-ग्रस्त न होनेसे पहले निमन्त्रित होकर किसीके गृहपर भिक्षा ग्रहण न करे, मूढ़ पुरुषोंके धूलि फेंकने और धिक्कार देने पर भी वह चपलता रहित और निज धर्म्ममें निष्ठावान् होके उन्हें बचनमात्रसे भी अप्रिय वाक्य न कहै; वह

दयावान होवे और जिघांसु लोगोंके विषयमें क्रूरता न करे; निर्भय और आत्मश्लाघासे रहित हो अर्थात् 'मैं धन्य हूं' इस प्रकार अपनी बड़ाई न करे, मौनव्रत अवलम्बी सन्न्यासी जब देखे कि गृहस्थोंके गृह धूंएंसे रहित, मूषल शब्द बर्ज्जित अग्नि शून्य हुए हैं, गृहस्थ लोग भोजन कर चुके हैं, और हाथमें परिवेषण पात्र ग्रहण करनेवाले पुरुषोंका आना जाना बन्द हुआ है, उस समय भिक्षा पानेकी अभिलाष न करे; उदरपूर्त्ति करके भोजन लाभमें अनादर प्रदर्शित कर प्राण धारणके लिये जो कुछ भोज्य वस्तु आवश्यक हो, वही भोजन करे, भोज्य वस्तुओंके अभावमें किसीकी भी हिंसा न करे और प्राप्त होनेपर भी हर्षित न होवे; सबके योग्य स्रक चन्दन आदि साधारण लाभके लिये उत्सुक न होवे और अत्यन्त पूजित होके भी भोजन न करे; क्यों कि सम्मानके सहित अन्नादि लाभको वैसे पुरुष निन्दा किया करते हैं; अन्नके भूसी आदि दोषोंकी घोषणा न करे और किसी गुणके रहने पर भी उसकी प्रशंसा न करे; निर्ज्जन स्थानमें सोने और बैठनेकी अभिलाष करे; सूने स्थान, वृक्षके मूल, बन अथवा गुफा, इन सब स्थानोंके बीच दूसरेकी अजानकारीमें गमन करके उक्त स्थानोंमें वास करे; अचल अर्थात् उत्क्रान्ति गतिके जरिये गतिशून्य तथा कूटस्थ वा कूटकी भांति निर्व्विकार भावसे निवास करके योगके अनुरोध और सङ्ग त्याग विषयमें समदर्शी होवे, दया द्वेष आदिके जरिये सुकृत वा दुष्कृत दोनोंमेंसे किसीकी भी कामना न करे। जो नित्यतृप्त अत्यन्त सन्तुष्ट प्रसन्न बदन हैं, और जिनकी सब इन्द्रियां प्रसन्न हुई हैं; जो निर्भय, जपमें तत्पर हैं तथा मौनव्रत अवलम्बन किये हैं उन्होंने ही यथार्थ वैराग्य अवलम्बन किया है; जो बार बार जीवोंको संसारमें जाते आते देखकर निस्पृह और समदर्शी होके फल मूल आदि खाके जीवन बिताते हुए स्वभावसे ही शान्तचित्त, लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर बचन, मन, क्रोध, हिंसा, उदर और उपस्थके वेग, इत्यादि इन सब वेगोंको सहते हैं, वेही तपस्वी हैं, लोकनिन्दा उनके हृदयको दुःखित नहीं कर सकती। प्रशंसा और निन्दाके मध्यवर्त्ती वा समदर्शी होकर निवास करना परिव्राजक आश्रमका परम पवित्र पथ है।

महानुभाव परिव्राजक सब भांतिसे इन्द्रियोंको दमन कर और सबका सङ्ग परित्याग करके पहले कहे आश्रमके निवासस्थानसे विचरें और आप्तोंके सहित वार्त्तालाप न करके सबके प्रियदर्शन होकर गृहवासको त्यागके ध्याननिष्ठ होवें; वाणप्रस्थ और गृहस्थोंके गृहमें कदापि वास न करें; लोग यह न जान सकें, कि इन्हें भिक्षा लेनेकी इच्छा है। इस ही प्रकार भिक्षा पानेकी इच्छा करें, कभी हर्षित न होवें। ज्ञानियोंके निमित्त यही मोक्ष धर्म्म है और अज्ञानियोंको इस मार्गमें पदार्पण करना परिश्रम मात्र है; हारित मुनिने पण्डितमण्डलीके बीच यह सब मोक्षसाधक विषय कहे थे। जो लोग सब भूतोंको अभय दान करते हुए गृहसे निकलकर सन्न्यास धर्म्म ग्रहण करते हैं, वे अनन्तकालके लिये सत्यकाम और सत्यसङ्कल्प हुआ करते हैं।

२०७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोग हमें धन्य कहा करते हैं, परन्तु हमारे समान दुःखित पुरुष इस लोकमें कोई भी नहीं है। हे कुरुसत्तम! हम लोग धर्म्म आदि देवताओंसे मनुष्य जन्म पाके और लोकमें सम्मानित होके भी जो दुःखभागी हुए हैं, उस दुःख बिनाशी सन्न्यासधर्म्मको कब ग्रहण करेंगे; इस संसारमें शरीर धारण करना ही दुःखकर है, हे पिता-